श्रीसूक्त और स्तोत्रों का आलोचनात्मक अध्ययन

[SRI SOOKT AUR STOTRON KA ALOCHANATMAK ADDHYYAN]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशक
डा० हरिशङ्कर त्रिपाठी
रीडर संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयाग

प्रस्तुतकर्त्री
श्रीमती स्नेहलता दुबे
संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सन् १९९२

कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैः —
हस्तोत्क्षिप्त हिरण्यामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम् ।

बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्ब ललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

पुरोवाक्

श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया,
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ ।
ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी:,
ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरि चूडामणि रुचिः ।।

(सौन्दर्य लहरी श्लो० 83)

भूतभावन-देवाधिदेव, ज्ञान के अक्षय भण्डार भगवान् शंकर और त्रिलोक का सृजन-रक्षण-संहार का अक्षुण्ण विधान करने वाली उनकी प्रिय सहचरी भगवती की असीम अनुकम्पा से ही शोध-प्रबन्ध पूर्णकर विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे जो दिव्यानुभूति हो रही है, वह शतप्रतिशतवर्णनातीत है ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम०ए० के पश्चात् मैंने शोध करने का दृढ़ संकल्प लिया । "श्रीसूक्त और स्तोत्रों का आलोचनात्मक अध्ययन" मेरे अनुसन्धान का विषय 1982 ई० में डॉ० हरिशंकर त्रिपाठी जी के निर्देशन में निर्धारित हुआ, तथा उनकी छत्रछाया व प्रेरणा ने मेरा मार्गदर्शन किया । उनके पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन में ही शोधकार्य सम्पन्न हो सका है । मैं उनके प्रति श्रद्धानवत एवं आभारी हूँ ।

तदुपरान्त मैं विभागाध्यक्ष डॉ० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव जी की चिर कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे इस क्षेत्र में कार्य करने की अनुमति प्रदान किया ।

विश्वविद्यालयीय पुस्तकालय तथा गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के अधिकारीगण विशेषतः प्राचार्य डॉ० गयाचरण त्रिपाठी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझे विद्यापीठ पुस्तकालय में शोधाध्ययन की अनुमति प्रदान किया ।

कोई भी कार्य अनेक व्यक्तियों के सहयोग से ही सफल हो पाता है, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मेरे पूज्य सास श्वसुर एवं पति डॉ० दुबे जी के आशीर्वचनों का फल है, इनके चरणों में रहकर मुझे जो सहयोग प्राप्त हुआ उसका मूल्य आभार प्रदर्शन के कोरे शब्दों से नही चुकाया जा सकता । श्रद्धेय पिता जी, माता जी एवं मेरे भइया, बहनों का अविस्मरणीय सहयोग प्राप्त हुआ जिनकी प्रेरणा एवं उत्साहवर्धन से मैं दुरूह कार्य को पूर्ण कर सकी, धन्यवाद प्रकट करके मैं उनके इस महान कार्य की महत्ता को कम नही करना चाहती, अतः इस अवसर पर सभी को आभार भरित हृदय से स्मरण करती हूँ ।

डॉ० जगदेव प्रसाद द्विवेदी, डॉ०रमेशचन्द्र होता, डॉ०कृष्णमुरारी शुक्ल एवं डॉ०एल०पी०शुक्ला श्री राम निवास शुक्ल का सक्रिय योगदान रहा है, इन्होंने अपना अमूल्य समय देकर यथावसर कई आवश्यक सुझाव दिये, अतः मैं अपनी महती कृतज्ञता प्रकट करती हूँ । अत्यन्त स्वच्छता, स्पष्टता एवं शीघ्रता के लिए शोधप्रबन्ध टंकणकर्ता श्री जय सिंह तथा इनके अतिरिक्त जिन व्यक्तियों का अल्पाधिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग रहा है, वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं ।

अन्त मे मैं पुनः माता पिता का आभार ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझ पर आगत समस्त आपत्तियों से रक्षा कवच तद्वत् त्राण प्रदान किया । लेखन की उत्कृष्टता या त्रुटिपूर्णता का निर्णय सुधीजन करते हैं, लेकिन उसके लिये उन तक लिखित सामग्री को ग्रन्थ के रूप में पहुँचाना आवश्यक है । शोधप्रबन्ध गत त्रुटियों को बाल-बुद्धिजन्य मानते हुए विद्वद्गण क्षमा करेंगे, ऐसी अपेक्षा करती हूँ ।

विदुषामनुचरी

स्नेहलता दुबे

विषयानुक्रमणिका

विषय और विषय परिधि

संस्कृत वाड्•गमय में लक्ष्मी देवता को अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान प्राप्त है वैदिक काल से वर्तमान समय तक लक्ष्मी देवता भारतीय संस्कृति को निरन्तर प्रेरणा प्रदान करती रही है क्योंकि लक्ष्मी धन-पुत्र-समृद्धि, ऐश्वर्य, कृषि आदि की देवता के रूप में आज तक स्वीकार की गई है । धन तथा समृद्धि की देवताविकल्प में इनकी कल्पना अत्यन्त उदात्त है, जो उनके दुग्ध, धवल शुक्त वर्ण की भाँति ही निर्मल है वेदों में लक्ष्मी को धन-सुख-समृद्धि के रूप में माना गया है लक्ष्मी का विष्णु के साथ सम्बन्धित किया गया है वही लक्ष्मी नारायण कहा गया है, कहीं लक्ष्मी, -गणेश नाम से पूजा जाता है या जाना जाता है ।

सृष्टि की रचना के विषय में कुछ निश्चित रूप से कह पाना सम्भव नहीं है इसके विषय में मतभेद हैं कहीं वर्णन मिलता है विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ और उसी से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए ब्रह्मा जी सरस्वती के साथ मिलकर सृष्टि निर्माण किया । कहीं वर्णन मिलता है कि विष्णु ने लक्ष्मी के साथ मिलकर सृष्टि की रचना की ।

संस्कृत वाड्•गमय का स्तोत्र साहित्य बड़ा ही विशद सरस तथा हृदय स्पर्शी है । स्तोत्र साहित्य का प्रमुख आकर्षण भक्ति है भक्ति के माध्यम से भक्त अपने भक्ति रूप रस से आप्लावित हृदय की कोमलतम भावनाओं के अभिव्यक्तिकरण के साथ-साथ स्वोपास्य देव की अप्रतिम एवं अलौकिक महिमा का वर्णन करता है ।

"श्री" देवता पर लिया गया यह निबन्ध पांच अध्यायों में विभाजित है प्रथम अध्याय में हो भूमिका है जिसमें वैदिक धर्म, वैदिक देवों की उत्पत्तियाँ उनका वर्गीकरण तथा उनका स्वरूप वर्णित है। इसके पश्चात् वैदिक वाङ्गमय स्त्री देवताओं का स्वरूप तथा स्थिति, स्त्री देवताओं में लक्ष्मी के स्वरूप का विस्तृत विवेचना किया गया है। वैदिक साहित्य में श्री के स्वरूप का वर्णन किया है। श्री के विभिन्न रूप(समान) में वर्णन किया है। श्री या लक्ष्मी का अन्य देवताओं से क्या सम्बन्ध है। इसके विषय में भी वर्णित है।

ऋग्वेद के दशम् मण्डल के परिशिष्ट में "श्री सूक्त" वर्णित है जिसका विस्तृत विवेचन पन्चम अध्याय में है।

वेद में लक्ष्मी यत्र पूजन के लिए कुछ वैदिक प्रयोग उपलब्ध होते हैं।

लक्ष्मी देवता सम्बन्धित इस शोध-प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में पुराणों में लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है इसमें वैदिक स्वरूप का पौराणिक स्वरूप में परिवर्तन है। पौराणिक दृष्टि के तीन प्रकार बताये हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। विभिन्न पुराणों में लक्ष्मी की उत्पत्ति के विषय में वर्णन मिलता है। इनके उत्पत्ति के विषय में मतभेद है इसमें इनके विविध आयुध, वाहन, वस्त्र तथा आभूषण, तनु रंग प्रतिमा आदि का विशेष रूप से उल्लेख है। इसमें लक्ष्मी के रूप तथा प्रधान उपासक, लक्ष्मी देवता की सामान्य पूजा विधि के अतिरिक्त कुछ विशेष पूजन विधियों का वर्णन भी प्राप्त है तथा इनसे सम्बन्धित कुछ स्तोत्र और कवच भी पुराणों में प्राप्त होते हैं लक्ष्मी के स्वरूप और स्वरूप निरूपण, पुराणों में माता कमला और लक्ष्मी की नौ कलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। देवीतत्त्व दश महाविद्या की अवधारणा का भी वर्णन, संक्षेप में किया गया है। लक्ष्मी का अन्य देवताओं से सम्बन्ध के बारे में वर्णित है।

तृतीय अध्याय में रामायण, महाभारत, श्रीभागवत चरित में लक्ष्मी एवं श्री के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है रामायण में सीता को लक्ष्मी का ही अवतार माना गया तथा इनकी उत्पत्ति के विषय में भी मतभेद है महाभारत में द्रोपदी और रुक्मणी राधा को भी लक्ष्मी का अवतार मानते है। महाभारत के समय में श्री की उत्पत्ति नैसर्गिक रूप से हुई है जिनके स्वर्णिम रूप को देखकर सभी देवता गण आश्चर्य चकित हो गये कि ये देवी कौन है? इनका नाम क्या है? इनके आने का क्या प्रयोजन है आदि कैसे इनका देवता लोक में आगमन हुआ। इन्द्र देवता के पूछने पर लक्ष्मी जी ने अपने बारे में स्वयं बताया है। इनमें इनके भौतिक और दैविक दोनो रूप प्राप्त होते हैं।

चतुर्थ अध्याय में तन्त्र में लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है इस अध्याय में तंत्र शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ स्पष्ट करने के पश्चात् सम्प्रदायों और लक्ष्मी नाम निर्वचन, त्रिपुर रहस्य, श्रीचक्र श्रीमाता सृष्टि-प्रक्रिया का उल्लेख है तन्त्र में लक्ष्मी के तितपन का नाम बताये गये है लक्ष्मी के विभिन्न रूप, मंत्र, ध्यान, मंत्र न्यास विधि, पूजन विधि यंत्रों के साधारण प्रयोग तथा यौगिक प्रयोग का इस तंत्र अध्याय में ~~स्वरूप~~ वर्णित है। एकाक्षर, दशाक्षर, द्वादशाक्षर, सप्तविंशत्यक्षर आदि मंत्रों का न्यास मुद्रा एवं काम्य प्रयोग का वर्णन है, और इनसे सम्बन्धित यंत्र चित्र परिशिष्ट में दिये है।

पंचम अध्याय में श्रीसूक्त और स्तोत्रों का दार्शनिक विवेचन किया है इसके अन्तर्गत श्रीसूक्त, लक्ष्मी सूक्त का कनक धारा, वेदान्तदेशिक कृत श्रीस्तुति लक्ष्मीकवच लक्ष्मी अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र, लक्ष्मी सहस्रनाम स्तोत्र, लक्ष्मी हृदय लक्ष्मी लहरी आदि अन्य स्तोत्रों को दार्शनिक ढंग से वर्णन किया गया है तथा अन्त में अपना मत भी प्रकट किया है।

इन पाँच अध्यायों के अतिरिक्त परिशिष्ट भी दिये गये है जिसमें विभिन्न कोशों से प्राप्त "लक्ष्मी" "श्री" "कमला" को अर्थ व्युत्पत्ति का वर्णन किया गया है मूर्ति कला में लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन किया गया है फलक सूची यंत्र, फोटो भी संलग्न है अन्त में सहायक ग्रन्थ सूची भी दी गयी है । जिससे इस शोध प्रबन्ध को लिखने में सहायक ग्रन्थों के नाम उल्लिखित है ।

आवश्यकतानुसार विभिन्न मूर्तियों के चित्र शोध-प्रबन्ध के अन्त के परिशिष्ट में फलक पर दिये गये हैं ।

वेद में लक्ष्मी पूजन के लिए कुछ वैदिक प्रयोग उपलब्ध होते हैं जिनसे सम्बन्धित यंत्र भी प्राप्त होते हैं यंत्र, चित्र, परिशिष्ट में दिये गये हैं ।

शब्द संकेत-सूची

अ० पु०	-	अग्नि पुराण
अथ० सं०	-	अथर्ववेद संहिता
अ० रा०	-	अध्यात्म रामायण
अहि०सं०	-	अहिर्बुध्न्य संहिता
ऋ० सं०	-	ऋग्वेद संहिता
त०सि०सा०	-	तन्त्र सिद्धान्त और साधना
ता०वा०शा०दृ०	-	तान्त्रिक वाङ्‌मय में शाक्तदृष्टि
ब्र० पु०	-	ब्रह्मपुराण
ब्र०वै० पु०	-	ब्रह्मवैवर्त पुराण
मा०पु०	-	मार्कण्डेय पुराण
म० पु०	-	मत्स्य पुराण
य० सं०	-	यजुर्वेद संहिता
ल० तं०	-	लक्ष्मी तन्त्र
श० ब्रा०	-	शतपथ ब्राह्मण
शा० ति०	-	शारदा तिलक
शाक्त प्र०	-	शाक्त प्रमोद
ए०हि०आ०	-	एलिमेण्टस आफ हिन्दू इकोनोग्राफी
डे० हि० आ०	-	डेवलपमेन्टस आफ हिन्दू इकोनोग्राफी

प्रथम अध्याय

वैदिक वाङ्गमय की उपादेयता ।

वैदिक वाड्•गमय की उपादेयता -
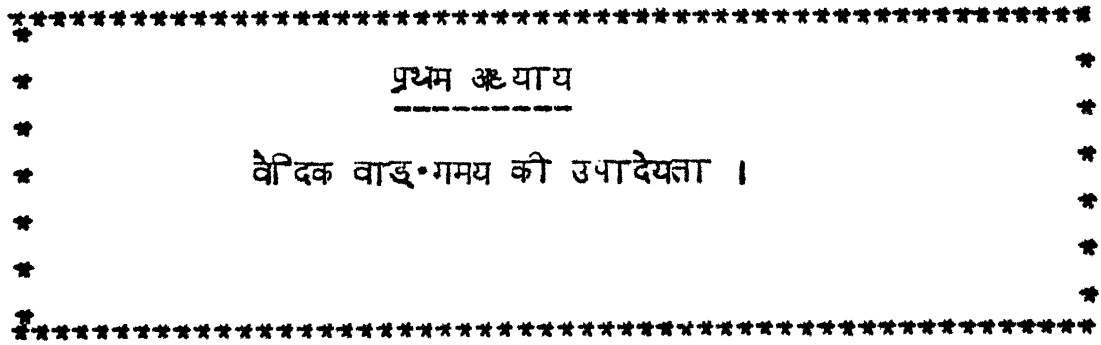
वैदिक वाड्•मय प्राचीनता, उत्कृष्टता एवं साहित्यिक तथा सांस्कृतिक वैभव की दृष्टि से न केवल भारतीय साहित्य का मूल आधार है, अपितु इसे विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि भी माना जाता है। वैदिक वाड्•मय को भारतीय प्रतिभा और पाण्डित्य का अनुपम महासागर कहा जा सकता है।

वेद भारतीयों का प्राचीनतम ग्रन्थ है। वेदों के अनुशीलन से जिस सभ्यता और संस्कृति का परिचय मिलता है वह इसी वैदिक युग की है।

वेद भारतीय ज्ञान गंगा के स्रोत हैं। इस राष्ट्र की आत्मा के वास्तविक दर्शन वेदों में ही किये जा सकते हैं। वेद इस देश के समुज्ज्वल अतीत के साक्षी हैं।

"वेद" सम्पूर्ण वाड्•मय का बोधक शब्द है। इस रूप में उसका प्रयोग भी होता आया है। "वेद" शब्द न तो किसी पुस्तक विशेष के परिमित अर्थ का द्योतक है और न एक देशीय है वह किसी शास्त्र विशेष का भी अभिव्यञ्जक नहीं है। उसमें तो ऐसे अखण्ड-अनन्त-अपरिमित ज्ञान का बोध होता है, जिसको ऋषियों ने हृदयङ्•गम् किया था।

"वेद" शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञानार्थक "विद्" धातु, विद् ज्ञाने, विद् विचारणे, विद्लृ - लाभे, विद् -सत्तायां धातु से हुई है। अतः वेद का एक अर्थ है "ज्ञान"। "ज्ञान" एक व्यापक अर्थ का वाचक शब्द है, जिसके अन्तर्गत इतिहास, भूगोल, गणित आदि शास्त्र शाखाओं के रूप में माने जा सकते हैं। किन्तु "वेद" शब्द से वह ज्ञान अभिप्रेत है जिसको ऋषि महर्षियों ने खोजा अथवा जिसका उन्होंने साक्षात्कार किया। परम्परा के अनुसार ऋषियों ने तपोबल से प्रथम बार वेदों का दर्शन किया। इसलिए

यास्काचार्य के "निरुक्त" §1/10§ में ऋषियों को मन्त्रदृष्टा § ऋषयो मन्त्रदृष्टारः§ कहा गया है ।

वैदिक साहित्य वेद विषयक समस्त वाड्•मय का द्योतक है, जिसके विस्तृत परिवेश में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद और वेदांग समाविष्ट हो जाते हैं ।

संहिता वैदिक साहित्य का वह भाग है जिसमें मुख्यतया स्तुतियाँ उपनिबद्ध है । ब्राह्मण ग्रन्थों में मन्त्रों के विधि भाग को व्याख्या है । आरण्यक ग्रन्थों में वीतराग गृहस्थों के कर्म विधान प्रतिपादित हैं । उपनिषदों में मन्त्रों की दार्शनिक व्याख्या की गयी है । इनके उपरान्त वेदों के षडंगों का स्थान है जिनके नाम हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ।
वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ।
उपवेद चार हैं - आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्पवेद और गन्धर्ववेद ।

वैदिक धर्म -

वैदिक धर्म के इतिहास के अध्ययन में वैदिक पुराकथाशास्त्र अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है । यद्यपि वैदिक पुराकथाशास्त्र का प्राचीनतम स्त्रोत उतना पुराना नहीं है, जितना इसे कभी स्वीकार कर लिया गया है,तथापि यह उतना पुरातन अवश्य है कि हम इसमें मूर्तीकरण को इस पद्धति को स्पष्टतः देख सकें जिससे प्राकृतिक घटनायें देवों के रूप में विकसित हो गयी ।

विस्तृततम अर्थ में धर्म के अन्तर्गत एक ओर तो दिव्य अथवा अलौकिक शक्तियों के प्रति मनुष्य की धारणायें आती हैं और दूसरी ओर इन शक्तियों पर निर्भर मानव कल्याण की वह भावना आती है जो विभिन्न उपासना-पद्धतियों में व्यक्त होती है ।

विभिन्न देवता एक ही दिव्य सत्ता के विविध रूप हैं । वैदिक कवि जिस देवता विशेष का आह्वान करते हैं,उसके स्तवनमें लीन हो जाते हैं, और उसके गुणों को पराकाष्ठा तक पहुँचा देते हैं । देवता को सर्वातिशायी दिव्य गुणों वाला देखने लगते हैं और उस समय उसे ही सर्वोच्च देवता मानने लगते हैं । कभी-कभी देवताओं का आह्वान युगलों में, त्रयी में और कभी-कभी इससे भी बड़े वृन्दों में उन्हें एकत्र मानकर किया गया है ।

देवताओं का शारीरिक ढाँचा मानवीय है किन्तु उनका यह रूप कुछ-कुछ नीहार सा छायात्मक सा है । बहुधा पता चलता है कि उनके शारीरिक अवयव प्रकृति के दृश्यों और पक्ष-विशेषों पर आधारित है ।

देवता लोग अपने हाथों दैत्यों को हरा करके अपने मैत्री स्वरूप को मानव-समुदाय के सम्मुख ख्याति स्थापित करते हैं । देवताओं की कृपा दृष्टि भी तो मनुष्यों की कृपा दृष्टि की तरह ही है ।

वैदिक देवताओं का चरित्र नैतिक है,सभी देवता धोखे से दूर रहते हैं, सत्यवादी होते हैं, कर्तव्यनिष्ठ हैं, हमेशा सच्चे मित्र के संरक्षक हैं, वे बुरे कर्म करने वालों पर देवता क्रोधित होते हैं । यहाँ तक कि वैदिक धर्म के अन्तर्गत, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदियों पेड़-पौधों तथा पशुओं का भी आह्वान किया गया है ।

वैदिक धर्म के विषय में मनु महराज ने जो सर्वप्रथम धर्म-शास्त्रकार है अपनी स्मृति में कहा है - "वेदोऽखिलोधर्ममूलम्"[1] अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नामक सम्पूर्ण वेद धर्म के मूल हैं और ये धर्म आचार या कर्तव्य के विषय में स्वतः प्रमाण हैं ।

प्रो० डॉ०एम० एडवर्ड[2] ने कहा भी है - "यदि धर्म का कोई विश्वसनीय और निश्चित रूप इन परिवर्तनों और विकास के बीच भी स्थिर न होता तो धर्म शब्द का कोई निर्दिष्ट करने योग्य अर्थ ही नहीं होते ।" सामान्यतया धर्म के दो रूप प्रकट होते है पहले में तो व्यक्तिगत धर्म जिसमें मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्तियाँ अपने लक्ष्य अर्थात् ईश्वर या आराध्य की ओर उन्मुख होती हैं और दूसरे में सात्त्विक धर्म जिसके अन्तर्गत धार्मिक उत्सव कर्मकाण्ड संस्कार इत्यादि पर विशेष बल दिया ।

वैदिक देवों की उत्पत्ति -

वैदिक देवों की उत्पत्ति में प्रकृति का बहुत बड़ा योगदान माना गया है । छान्दोग्य ब्राह्मण में एक विवरण यह व्यक्त करता है कि अस्तित्व रहित ही अस्तित्व युक्त हो गया है । इस अस्तित्व युक्त ने एक अण्डे का

1- वेदोऽखिलो धर्ममूलम् स्मृति शीले च तद्विदान ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ।। {मनुस्मृति-2·6}

2- दी फिलासफी आफ रिलीजन-
डॉ०एम० एडवर्ड पृ० 137-138

रूप ग्रहण किया जो कि एक वर्ष के पश्चात् पृथ्वी और आकाश बन गया जो कुछ भी उत्पन्न हुआ वह सूर्य था, जो कि ब्रह्म है[1]। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी देव गण की उत्पत्ति का प्रसंग है कि प्रारम्भ में सम्पूर्ण विश्व जलमय था, इससे सत्य, की उत्पत्ति हुई फिर उससे ब्रह्म उत्पन्न हुए, ब्रह्म से प्रजापति और प्रजापति से देवगण उत्पन्न हुए[2]। अथर्ववेद में कहा है कि देवताओं की उत्पत्ति असत् से हुई है[3]।

दार्शनिक सूक्तों में देवों की उत्पत्ति को अधिकतर जलतत्त्व से सम्बन्धित किया गया है। इसके अतिरिक्त इन लोगों को सामान्यतया आकाश और पृथिवी की सन्तान भी कहा गया है। एक स्थल पर प्रत्यक्षतः विश्व के तीन स्तरों के अनुरूप ही देवों की त्रिस्तरीय उत्पत्ति का भी वर्णन है जहाँ इन लोगों को "अदिति से उत्पन्न" और "पृथ्वी से उत्पन्न" कहा गया है। तथा "जल से उत्पन्न" भी कहा गया है। इस प्रकार वैदिक देवों की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित वैदिक देवताओं के स्वरूप पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वैदिक देवताओं का महत्त्व पर्याप्त

1- छान्दोग्य ब्राह्मण - 2-19

2- बृहदारण्यक उपनिषद् - 5-5-1·

3- अथर्ववेद - 10·7·25

वृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परिजज्ञिरे ।

एकं तदङ्ग स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ।।

क्षीण हो चुका है । यज्ञ की शक्ति के आगे उनकी सामर्थ्य कुछ भी नहीं है । यज्ञ के न मिलने पर वे क्षीण हो जाते हैं और असुरों को परास्त नहीं कर पाते । जो भी महत्त्व वे प्राप्त करते हैं वह सब यज्ञ के ही कारण है[1]।

देवताओं के उद्भव के सम्बन्ध में गृह्य सूत्रों में कुछ नहीं कहा गया । गृह्यसूत्रों के लेखक धार्मिक कृत्यों के वर्णन में ही इतने अधिक व्यस्त हैं कि देवताओं के स्वरूप पर स्वतन्त्र रूप से विचार करने का उन्हें अवकाश ही नहीं है ।

रामायण, महाभारत एवं पुराणों में आकर हम देवताओं के एक नवीन संसार में आ जाते हैं । संहिताओं में यद्यपि कई देवताओं की मानवीय एवं शारीरिक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है । किन्तु फिर भी उनका व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट नहीं है वैदिक काल में देवों की मूर्तियों के निर्माण का कोई उल्लेख नहीं मिलता[2]। किन्तु पौराणिक काल में प्रत्येक के अङ्ग-प्रत्यङ्ग एवं चरित्र का सजीव वर्णन है । वेदों में देवों के व्यक्तित्व की केवल बाह्य-रूप रेखा मात्र है । पौराणिक काल में विष्णु के श्यामल वर्ण, कोमल शरीर तथा चार भुजाओं का वर्णन है । इन चारों भुजाओं में वे शंख, चक्र, गदा, तथा पद्म धारण करते हैं । उनके शरीर पर पीताम्बर पड़ा रहता है और गले में वैजयन्ती माला तथा कौस्तुभ मणि सुशोभित होती रहती है उनके नेत्र नील-कमल के समान हैं तथा दृष्टि कारुण्यमयी है । गरुड़ उनका वाहन है तथा लक्ष्मी प्रियतमा जो

1- ओरिजिन् एण्ड डेवलपमेन्ट आफ् रिलीजन इन वैदिक लिटरेचर पृ0 351-370

2- प्रथम अध्याय, अनुभाग 4, पृ0 40-41 ।

सदा उनके चरण दबाया करती है । क्षीर सागर में उनका निवास स्थान है जिसे वैकुण्ठ कहते हैं । जय और विजय नामक दो द्वारपाल उनके प्रवेशद्वार के बाहर खड़े रहकर रखवाली करते हैं ।

<u>वैदिक देवों का वर्गीकरण -</u>

ऋग्वेद[1] और अथर्ववेद[2] और ब्राह्मण ग्रन्थों[3] में भी देवों की संख्या 33 अथवा त्रिभिः एकादश बताते हैं और इसी संख्या को अनेक स्थलों पर "ग्यारह का तीन गुना" के रूप में व्यक्त किया गया है[4]। एक स्थल पर ग्यारह को स्वर्ग में ग्यारह को पृथ्वी पर और ग्यारह को जल {वायु} में रहने वालों के रूप में सम्बोधित किया गया है[5]। इसी प्रकार अथर्ववेद भी देवों को स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर रहने वालों के रूप में वर्गीकृत करता है[6]। तैंतीस की संख्या को सदैव पर्याप्त नहीं माना जा सकता है क्योंकि कुछ स्थानों पर तैंतीस के अतिरिक्त भी अन्य देवों का उल्लेख प्राप्त होता है ।

1- ऋ0 - 3/6/9

2- अथर्व - 10/7/13

3- शतपथ ब्रा0-11/6/3/5

4- ऋ0 - 8•35•3

5- ऋ0- 1•134•11

6- अथर्व- 10•9•12

यास्क ने निरुक्त[1] में भी देवताओं का त्रिविध विभाजन किया है - पृथ्वी स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय और द्यु स्थानीय । लेकिन कुछ ऐसे मन्त्र भी वेदों में प्राप्त हुए हैं जिनमें देवों की संख्या 3339 बतायी गयी है।[2] फिर भी उनका विभाजन तीन भागों में ही किया गया है । इन्हें स्वर्ग, पृथ्वी और जल से सम्बद्ध बताया गया है । ब्राह्मण ग्रंथों में भी देवों की संख्या 33 बताते हैं, शतपथ ब्राह्मण,[3] ऐतरेय ब्राह्मण इन्हें तीन भागों में विभाजित एवं देवों की संख्या 33 बताते हैं ।

वैदिक देवों का उनकी सापेक्षिक महानता के अनुसार भी वर्गीकरण करने का प्रयास किया गया है । यह प्रायः निश्चित है कि जो देवता शक्ति की दृष्टि से प्रायः समान है वह अन्य की अपेक्षा प्रमुख रूप से आते हैं । जहाँ नैतिक और भौतिक जगत के सर्वोच्च विधानों की कल्पना की गई है[4]।

अनेक विद्वानों का मत है कि अपेक्षाकृत पहले के समय में वरुण और आदित्यगण ही सर्वोच्च देवता थे किन्तु बाद में वरुण और आदित्यगण ही नहीं वरन् इन्द्र ने इन सबका स्थान ले लिया ।

मैकडानल ने देवों को अष्ट भागों में विभक्त किया है द्यु-स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय, पृथ्वी, अमूर्त, देवियाँ, युगल देवता, देवगण, अवर देवता ।

1- अ- निरुक्त - 7·4
   ब- निरुक्त - 7/14-9/43
2- वाजसनेयि संहिता- 33·7
3- शतपथ ब्राह्मण - 4·5·7·2
4- वैदिक माइथोलोजी ए·ए·-मैक्डोनेल पृ035·

द्युस्थानीय देवता: -

इनमें द्यौ, वरुण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषन्, विष्णु, आदित्य, विवस्वान् उषस् और अश्विनौ प्रधान हैं ।

अन्तरिक्ष स्थानीय देवता: -

इन्द्र, त्रित, आप्त्य, अपांनपात्, रुद्र, मातरिश्वा, अहिर्बुध्न्य, अज एक पाद, रूप, वायु, वात, पर्जन्य आदि ।

पृथ्वी स्थानीय देवता -

अग्नि-बृहस्पति-सोम और विविध नदियाँ ।

अन्य देवी-देवता -

मन्यु, श्रद्धा, धाता, त्वष्टा, नाग, कुमार, गणपति, समुद्र, स्वास्तिक, महिष, सुमेरु आदि प्रमुख हैं ।

द्युस्थानीय देवताओं में सूर्य प्रमुख है । अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में इन्द्र और वायु-पृथ्वी स्थानीय देवताओं में अग्नि देवताका स्थान प्रमुख है -

तिस्र एवदेवता इति नैरुक्ता:

अग्नि पृथ्वी स्थानो वायुर्येन्द्रो वा अन्तरिक्ष स्थान

सूर्यो द्युस्थान ।[1]

1- निरुक्त - 7/5.

द्यु स्थानीय देवता -

(1) द्यौः -

द्युस्थानीय देवताओं में द्यौः सबसे प्राचीन व प्रधान है । द्यौः आकाश का मूर्त रूप है । द्यौः का मानवीय भाव द्युलोक के देवता के रूप में होता है । अतः यह पृथ्वी के साथ संयुक्त होकर द्विवचन में आता है जैसे कि द्यावा-पृथिवी । इसीलिए ये दोनों संसार के माता-पिता हैं । अलंकार रूप से वेद में द्यौः को एक ऐसा वृष (वृषभ) कहा गया है, जो नीचे की ओर मुख करके रम्भाता है ("अवेप्रियो वृषभः क्रदन्तु द्यौः"[1]

द्यौः शब्द की निष्पत्ति दिव् द्योतने (प्रकाशित होने) से धातु से है अतः इसका अर्थ है चमकने वाला" और इसका सम्बन्ध है देव शब्द के साथ ।

(2) वरुण -

द्यौः का ही एक रूप वरुण है । वरुणका उल्लेख प्रायः "मित्र" के साथ" मित्रा वरुणौ" के रूप में आता है । वरुण का व्यक्तित्व मानव रूप में शारीरिक पक्ष की अपेक्षा नैतिक पक्ष में अधिक विकसित हुआ । ऋग्वेद[2] के देवों में आदर एवं मान की दृष्टि से सम्राट वरुण सर्वोत्कृष्ट पद के भागी है - त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये न देवा असुर । ये च भर्ता[3]। ब्राह्मण ग्रन्थों में मित्रा

1- ऋ0 - 5/58/6

2- ऋ0 - 2/27/10

3- ऋ0 - 5/83/3

वरुणों का क्रमशः दिन और रात्रि से बार-बार सम्बन्ध बताया गया है। वरुण की क्रियाशीलता रात्रि तक को सीमित नहीं है। वे प्रमुखतः आकाश के ही देवता हैं। वरुण देवता के अभिषेक का भी वर्णन प्राप्त होता है[1]।

वरुण के निवास स्थान का भी ऋग्वेद में प्रायः वर्णन मिलता है उनका प्रासाद स्वर्णमय है। स्वर्णिम है। वरुण को स्वर्णिम देव कहा गया है और वह सर्वोच्च आकाश में बना हुआ है। वरुण सम्पूर्ण विश्व का शासक है। अतः वे पापियों तथा व्रतों का उल्लंघन करने वालों को कड़े दण्ड देते है, वरुण के पाश से पापी या अपराधी बच नहीं सकते। इसी द्युलोक में पितृगण वरुण की छवि निहारते हैं।

मित्र के साथ और कभी-कभी अकेले भी असुधा राजा बताया गया है। वे देवों और मनुष्यों के नहीं सकल सत्ता और समग्र जगत् के राजा हैं। उन्हें स्वतन्त्र शासक {स्वराज} की उपाधि भी मिली है, जो और जगह इन्द्र के लिए आई है। असुर विशेषण का प्रयोग इन्द्र और अग्नि की अपेक्षा वरुण के लिए अधिक बार हुआ है। इन देवताओं की निजी शेवधि इनका रहस्यमयी माया है। इसके सहारे सूर्य रूपी मापदण्ड से वरुण पृथिवी मापते हैं। वरुण और मित्र सूर्य को आकाश के पार ले जाते है। वृष्टि कराते हैं और उषाओं को प्रेरणा देते हैं। वरुण का ऋत पृथिवी और आकाश का निर्धारण करता है। तीनों स्वर्ग और तीनों पृथिवी उनके भीतर समाहित है। वरुण का

1- वरुणो वै देवानां राजा" शतपथ ब्राह्मण - 1-2,3,10,13

सम्बन्ध अन्तरिक्षस्थ जलों से है, यही कारण है कि निघण्टु में उन्हें द्यु-स्थानीय होने के साथ-साथ अन्तरिक्ष स्थानीय भी बताया गया है। पर अन्तरिक्ष स्थानीय देवता है ।

§3§ मित्र -

अथर्व वेद में एक जगह यह प्रार्थना की गयी है कि मित्र उस स्थान को अनावृत कर दे जिसे कि रात के समय वरुण ने आवृत कर दिया था -

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।[1]

§4§ उषस् -

यदि सूर्य का आधार प्रकाशार्थक है तो उषस् की व्युत्पत्ति दीप्त्यर्थक वश् कान्तौ धातु से हुई है फलतः उषा विभावरी है अन्तिवामा पोषा है जिसकी चितवन पर महफिलें झुक जाती है । वह द्यौस् की दुहिता है, और चन्द्र अर्थात् चमकने वाली किरणों की चुन्नी को ओढ़कर आसमान से उतरती है । वह विश्व की प्राणन है, जीवन है जो अपने द्युम्न §धनों§ से अर्थियों के आँचल भर देती है । उसकी चमकती हुई अर्चियों में सुपेशस् द्युम्न भरा रहता है । वह स्वयं अङ्गिरस्तमा है और अपने पास आने वाले को अङ्गिरस अर्थात् लाल बना देती है । उषस के सलोने रूप पर मोहित होकर वैदिक ऋषि अपने को विस्मृत कर देते हैं ।

1- अथर्ववेद - 13/3/13

और उसे न हटने वाले प्रेमी की तरह देखने लगा है । अथर्ववेद में उषा देवता के रूप में अधिक प्रतिष्ठित है, प्रकृति सुन्दरी के रूप में कम । इसमें प्रत्यक्ष उषा की अपेक्षा उषाकाल का महत्त्व अधिक मिलता है । ऋग्वेद[1] में उषा का स्वरूप कहीं अधिक आकर्षक और सहृदय है ।

उषा का केतु है प्रकाश । उसे लेकर जब उषा आती है, तो आधे अन्तरिक्ष या पृथ्वी के गोलार्द्ध को प्रकाशित करती है ।

उषा का स्वागत इसलिए किया जाता है कि वह सभी ज्योतियों में उत्कृष्टतम् है, यह अरुणोदय के समय की या प्रभात काल की देवता है । वे अपने शुभ्र वस्त्रों के कारण एक नर्तकी के समान लगती है[2] । सूर्य के उषा का अनुगमन करने के कारण वह इसका पति कहा गया है और उषा के सूर्य से पूर्व उदय होने के कारण उसे (उषा को) सूर्य की पत्नी कहा है । उषा के अनुगमन के कारण ही अश्विनी को भी उसका प्रेमी माना है । इसी प्रकार अग्नि को भी उषा का चाहने वाला कहा है । उषा सम्बन्धी सूक्त भारतीय स्तोत्रों में सबसे अधिक प्राचीन है और यज्ञपरक सूक्त है ।

(5) अर्यमा -

अर्यमा देवता के लिए ऋग्वेद में कोई सूक्त नहीं प्राप्त होता.

1- ऋ0 - 7/78/1.

2- ऋ0 - 1/92/10

पर आदित्यों के प्रसंग में उनका बहुधा उल्लेख किया गया है । इस शब्द का अर्थ है मित्र, साथी या परिचर और ऋग्वेद में प्रायः इस अर्थ में जातिवाचक संज्ञा के रूप में इसका प्रयोग भी हुआ है, अर्यमा शब्द से बना अर्यम्य शब्द मित्र शब्द से बनी भाववाचक संज्ञा "मित्र्य" के समान है और मैत्री का अर्थ रखता है ।

ब्राह्मण ग्रंथों में अर्यमा के विषय में इतना ही मिलता है कि वे सूर्य है । अर्यमा एवं सूर्य का पूर्ण तादात्म्य तै०सं०[1] तथा श०ब्रा०[2] में प्राप्त होता है ।

अथर्व वेद में भी अर्यमा कल्याण का देवता है[3]। विवाह के अधि-देवता के रूप में भी हमें उसका परिचय मिलता है । अर्यमा नाम का देव अंहस् या पाप से मुक्ति दिला सका है[4]। वस्तुतः अर्यमा उदार सबका सहायक, विशेषतः विवाह में कन्या के सहायक और सूर्य कुल को देवता है । माधुर्य उसका परिवेश है । प्रायः सभी प्रमुख देवों से उसकी मैत्री है । वह प्रायः उन सबके साथ देखा जाता है अकेले उसका दर्शन यदा-कदा ही होता है ।

(6) आदित्य -

आदित्यों का वर्ग कुछ अनिश्चित सा है । ऋग्वेद में उनके लिए छः पूर्ण और दो आंशिक सूक्त आये हैं । इनकी मौलिक संख्या कुछ अनिश्चित सी है।

1- तै०सं० 2/3/4
2- श० ब्रा० 5/3/1/2

3- अथर्ववेद - अयमायात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः - अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये । 6/60/1

4- तै० ब्रा०- 1/1/8/4

ऋग्वेद में केवल इन्हें एक बार और एक बार आठ बताया गया है । उनकी माता अदिति ने पहले सात आदित्य देवों को सौंपें, और आठवें मार्तण्ड बाद में आये । ऋग्वेद में सूर्य भी एक आदित्य है, जिन्हें सातवां माना जा सकता है, और मार्तण्ड नामक होने वाले सूर्य को आठवां । सबसे महान् आदित्य वरुण है फिर मित्र और अर्यमन् । यों तो अधिक व्यापक रूप में कई बार सभी देवताओं को आदित्य कहा गया है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि इस समुदाय का एकमात्र वैशिष्ट्य स्वर्ग के प्रकाश का देवता होना है । आदित्य असत्य से घृणा करते हैं और पाप के लिए दण्ड देते हैं वे अपने शत्रुओं को पाश में जकड़ते हैं । अदिति के पुत्र होने के कारण उन्हें आदित्य कहा जाता है[1] ।

आदित्य का अर्थ है अदिति का पुत्र, आदित्य द्युलोक के देवता हैं । जो संख्या में सात हैं । ऐसे महान् आदित्य की महिमा भी गाई जाती है -

"महस्ते सतो महिमा पनस्यते ।"

(7) सूर्य -

सूर्य में हमें उनके स्थूलतम एवं अत्यन्त प्रत्यक्ष रूप से दर्शन होते हैं । उनके लिए ऋग्वेद में दस सूक्त आते हैं वे द्यौस मित्र एवं वरुण के चक्षु हैं । वे दूरदर्शी है वे समग्र विश्व के द्रष्टा बनकर मनुजात के कर्मों का निरीक्षण करते हुए एवं उन्हें कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं वे एक आदित्य है, फिर भी उन्हें

1- शतपथ ब्राह्मण - 3/1/3/3.

आदित्यों से पृथक्‌ किया गया है अन्य देवों की भांति वे द्यौस्‌ के पुत्र है। अथर्ववेद का एक उत्तरकालीन आख्यान सूर्य को वृत्र से उत्पन्न दिवाकर जैसे चित्रित करता है।

अनेक देवता सूर्य से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं। उषाओं के उत्सङ्‌ग में से सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं। साथ ही वे उषा के जार भी है। पूषन्‌ उनका संदेशवाहक है। वरुण, मित्र, अर्यमा इनके पथ का निर्माण करते हैं। इन्द्र, विष्णु, सोम, धाता और अङ्‌गिरसो को उनका स्रष्टा बताया गया।

सूर्य का प्रमुख वीर-कृत्य देवताओं और मनुष्यों के लिए उनका प्रकाशित होना है वे अन्धकार का ध्वंस करते हैं[1] और अन्धकार की शक्तियों एवं भूत-चुडैलों पर विजय प्राप्त करते हैं वे देवताओं के दिव्य पुरोहित हैं उनसे उदित होने के समय प्रार्थना की जाती है।

सूर्य स्वयं एक सुदृशीक अश्व है कल्पसूत्रों में अश्व और चक्र सूर्य के प्रतीक बनकर उभरे हैं। सूर्य देव, भौतिक सूर्य के स्थूल रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं तो प्रेरक या नियोजक सविता सूर्य की प्रेरक शक्ति के प्रतिरूप बनकर उभरते हैं, जो शक्ति मनुष्यों को कर्तव्य करने की प्रेरणा देती है।

(8) <u>सविता</u> -

सविता एक स्वार्णिम देव है, और देवताओं में सविता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। महान्‌ कार्यों के लिए प्रेरणा देना सविता देवता का ही प्रमुख

1- ऋग्वेद - 1/50/5

कार्य है[1]। सब में जीवन तथा स्फूर्ति का संचार करने वाले हैं। वृहस्पति देवता जब प्रेरणा रहित हो जाते हैं तो सविता देवता के पास आते हैं[2]। यह शब्द "सू" धातु से बना है जिसके तीन अर्थ होते हैं - प्रेरित करना, उत्पन्न करना तथा रस निकलना। उनके नेत्र, हाथ, जिह्वा और भुजायें सब कुछ स्वर्णिम है। उनके बाल पीत है। वे पिशङ्ग वस्त्र पहनते और हिरण्मय रथ पर चलते हैं किंतु सूर्य के प्रतिकूल उनके रथ में सात नहीं प्रत्युत दो घोड़े जुड़ते हैं। उनका कार्य है मनुष्यों को उद्बुद्ध करने के लिए अपने पृथुप्राणियों को पसारना। इसके साथ अग्नि, बृहस्पति और उषाओं के कार्य की तुलना की गई है। वे वायु के मध्य में होकर निर्धूलि पथों पर यात्रा करते हैं दिवंगत आत्माओं को परिपूत मनुष्यों के आवास पर लाने के लिए उनसे भिन्नत की गई हैं। वे देवताओं और मनुष्यों को अमृतत्व प्रदान करते और ऋभुओं को अमर बनाते हैं। सूर्य की तरह वे दुरात्माओं और यातुविदों को दूर भगाते हैं। उनकी शक्ति की गरिमा का गान कभी-कभी फड़कते शब्दों में किया गया है। इतर देवों की भांति वे आकाश को धारण करते और पृथिवी को उर्वा बनाते हैं। यज्ञादि कर्मों में सविता की प्रेरणा या अनुमति तो प्रायः सर्वत्रप्राप्त ही की गई है (देवसवितः प्रसुवेति।/3/4) ऋग्वेद में इसे हिरण्यपाणि भी कहा गया है[3]।

1- शतपथ ब्राह्मण - सविता वै देवानां प्रसविता- 1/1/2/17

2- शतपथ ब्राह्मण - 1/7/4/8

3- शतपथ ब्राह्मण - 4/4/1/1 - 1/12/1/19

गायत्री मन्त्र में भी सविता देवता से यह प्रार्थना की गई है कि वे हमारी बुद्धि को प्रचोदित करें[1]।

(9) पूषन् -

पूषन् शब्द पुष धातु से बना है और इसका अर्थ है पोषक पुष्ट करने वाला। ऋग्वेद में यह देवता सूर्य का कल्याण-कारिणी एवं मनुष्यों को पुष्टि करने वाली शक्ति का प्रतीक है उनके पुष्टिम्भरतया पुरुवसु आदि विशेषण इस ओर संकेत करते हैं वे अत्यधिक धन के स्वामी हैं।

पूषन् एक अजीब एवं पेचीदा देवता है। उनके निमित्त आठ सूक्त कहे गये हैं। रुद्र की तरह उनके भी विन्यस्त केश और श्मश्रु है। वे न केवल शूल अपितु आरा और अङ्कुश भी धारण करते हैं। उनके रथ में अज जुड़ते है और उच्छिष्टान्नभोजी होने के कारण उनकी दन्तहीनता है।

पूषन् में देव-सुलभ शक्ति, ऐश्वर्य, प्रभा, दाक्षिण्य और अश्विनों की भी दस्त-कारिता है। वे केवल अग्नि के साथ नाराशंस विशेषण धारण करते हैं। उन्हें मनुष्यों द्वारा स्तुत माना जाता था। उनका भोजन इन्द्र के सोम से भिन्न है।

सूर्य से उनका सम्बन्ध ऋग्वेद में सर्वत्र प्राप्त होता है। महाकाव्यों तथा पुराणों में पूषन् का केवल नाममात्र शेष रह गया है। उनके स्वरूप का विकास बिल्कुल विपरीत दिशा में हो चला है। ऋग्वेद में उनका व्यक्तित्व सर्वाधिक पूर्ण है किन्तु पुराणों में अत्यधिक अस्पष्ट एवं अपूर्ण है।

1- ऋग्वेद - 3/62/10

वस्तुतः पूषन् का उल्लेख ऐसे ही स्थानों पर किया गया है जहाँ देवों के किसी सामूहिक कार्य का वर्णन है। पूषा का केवल एक ही पौराणिक कथा से सम्बंध है और वह है रुद्र के द्वारा दक्ष-यज्ञ के विध्वंस की। इस कथा में पूषा को रुद्र का विरोधी प्रदर्शित किया गया है। ऋ0[1] में "करम्भ" पूषा का प्रिय भोजन है। पूषन देवता को पशुओं तथा वनस्पतियों का देवता भी कहा गया है। सभी मार्गों को पूषन् देवता जानते हैं मार्गों में डाकू आदि से रक्षा करते हैं। पूषन् देवता के दो हाथ कहे गये हैं[2]।

(10) अश्विनौ -

वैदिक संहिताओं में "अश्विनौ" का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पीड़ित व्यक्तियों की सहायता हेतु सदा तत्पर रहने वाले, देवों के वैद्य, ये दो सुन्दर युवक ऋग्वेद के देवशास्त्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जितनी गाथाओं का उनसे सम्बन्ध है उतनी गाथायें किसी भी देवता के विषय में प्राप्त नहीं होती। उनकी स्तुति में कही गयी ऋचाओं की संख्या भी बहुत अधिक है। उनके आविर्भाव का समय प्रातः काल ब्राह्म वेला है जब रात्रि अपनी बहन उषा से विदाई लेकर रक्तवर्ण के सूर्य के लिए स्थान बनाकर जा रही होती है।

अश्विनौ के लिए तेज अथवा प्रकाश से सम्बन्धित अनेक विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। वे प्रकाशमान या शुभ्र हैं। उषः काल की सुनहली किरणों से

1- ऋ0 - 1/38/4

2- शतपथ ब्राह्मण - 4/3/3/6

सम्बन्ध होने के कारण अश्विनों के रथ को स्वर्णनिर्मित या हिरण्मय बताया गया है। इस रथ के चक्र उनकी नाभि, इसी प्रकार परिधि एवं रथ की रश्मियाँ भी सोने की बनी हुई हैं।

अश्विनौ देवता -

अश्विन देवता का सम्बन्ध सूर्य के साथ है। ये संयुक्त या युगल देवता हैं। इनका कार्य उषा और सूर्य के उदय के मध्यवर्ती काल में होता है, उषा द्वारा जब इन्हें जगाया जाता है - प्रबोधयोतो अश्विनौ[1] और वे अपने रथ पर बैठकर उषा का अनुसरण करते हैं[2]। वैदिक साहित्य में इस युगल देवता का बहुत विशाल रूप में वर्णन किया है च्यवन ऋषि को वृद्ध से जवान बनाया था।[3] द्यौ और वरुण के समान ही अश्विनौ देवता भी बहुत प्राचीन हैं। आर्य जाति की ग्रीक शाखा में भी ज्योस या जीवस के दो युगल पुत्र कल्पित किए गए थे जो अपने घोड़ों पर बैठकर आकाश के छोर तक जाते हैं[4]।

ऋग्वेद में अश्विनों का सम्बन्ध भी उल्लेखनीय है। वे स्वयं मधु के समान वर्ण वाले हैं। उनके रथ को खींचने वाले पक्षी मधुवर्ण है। ऋग्वेद के कुछ मंत्रों में सूर्या या उषा को अश्विनौ की पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है।

1- ऋग्वेद - 8/9/17.

2- ऋग्वेद - 8/5/2.

3- ऋग्वेद - 1/116/10.

4- प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग-डा०सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ०277.

अश्विन् सर्वगामी है । उनकी उपस्थिति स्वर्ग वायु, औषधि, गृह, पर्वत, श्रृंग, ऊपर और नीचे सभी जगह बतायी गयी है । अश्विनो का आविर्भाव यज्ञाग्नि के प्रज्वलन, उषा की उत्पत्ति और सूर्योदय इन सभी को समकालीन बताया गया है, किन्तु अश्विनौ का अपना काल उषा काल के बाद और सूर्योदय से पहले है ।

अश्विनो के जनक-जननी भी अनेक हैं । वे द्यौस् के पुत्र है किन्तु समुद्र उनकी माता है वे त्वष्टा की पुत्री सरण्यू और विवस्वन्त् के पुत्र हैं वे पूषन के जनक है और उषा उनकी बहन है ये दाम्पत्य प्रेम के रक्षक है । इनका मुख्य व्रत विपत्तिग्रस्तो की विपत्ति दूर करना है । मुक्त कण्ठ से मुकाबल में अश्विनों की सहायक शक्ति की प्रशंसा की गई है क्योंकि कोई भी दूसरा देवता सहायता करने में उन जैसा ~~नर्स्म है~~ । कर्तव्यनिष्ठ नहीं है ।

इस देव युग्म के तात्विक स्वरूप का प्रश्न एक पेचीदा बात हैं यद्यपि इनका स्वरूप धुंधला है तथापि सामग्री के पर्याप्त होने से इनके विवेचन में सरलता हो जाती है । इतना तो निश्चित है कि इनका स्वरूप आंशिक मात्रा में भारोपीय है ।

वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन कालके देवता होने के कारण स्वतः वैदिक ऋषियों को उनके उद्भव के विषय में स्पष्ट परिज्ञान नहीं था ।

(।।) विष्णु -

विष्णु देवता सम्पूर्ण लोक को अपने तीन पगों में ही नाप लेता है । विष्णु देवता के दो पग तो मनुष्यों को दिखाई देते हैं लेकिन जो तीसरा पग है, वह पक्षियों की उड़ान से भी बहुत आगे है -

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो भिख्याय मर्त्यो भुरण्यति:
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चनपतयन्त: पतत्रिण ।[1]

विष्णु का प्रधान कर्तव्य है कि वे अकेले ही तीनों लोकों को अपने पग से नाप डालते हैं -

य इदं दीर्घं प्रयत: सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदे ।[2]

शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मणों में भी विष्णु के इस वामन रूप का उल्लेख मिलता है -

वामनोह विष्णुरास[3]

स एतं विष्णु वामिनमपश्यत् ।[4]

ऋग्वेद में विष्णु देवता का जो स्वरूप मिलता है उसके अनुसार वे सबके रक्षक, पालन करने वाले और पृथिवी लोक, द्युलोक एवं सम्पूर्ण भुवन को धारण करने वाले हैं -

विष्णु गोपा परमं पाति पाथ: ।[5]

य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ।[6]

1- ऋग्वेद - 1/155/5.
2- ऋग्वेद - 8/12/27
3- शतपथ- 1/2/5/5
4- तैत्तिरीय संहिता-2/1/3/1
5- ऋग्वेद - 3/55/10
6- ऋग्वेद - 1/154/4

यह जो सम्पूर्ण विश्व सुस्थिर है, यह विष्णु देवता के कारण ही स्थिर है । ऋग्वेद में इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन है । वहाँ झरना बहता रहता है[1]। बहुत सी न थकने वाली गौएँ घूमती रहती हैं[2]। देवता वहाँ पर आनन्द पूर्वक रहते हैं[3]। यहीं पर इनका निवास स्थान है ।

यास्क ने निरुक्त[4] में विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति विश् (प्रवेश करना) अथवा वि + अश् (व्याप्त करना) धातु से मानी है वस्तुतः विष्णु के प्रारम्भिक तथा मूल स्वरूप की जितनी सुन्दर व्याख्या भारतीय परम्परा प्रस्तुत करती है उतनी किसी भी विदेशी विद्वान की नहीं ।

सूर्य ही विष्णु है और उनकी प्रभा लक्ष्मी है । एक ही तत्त्व आधिभौतिक दृष्टि से सूर्य और आधिदैविक दृष्टि से विष्णु है ।

विष्णु का इन्द्र के साथ निकट सम्बन्ध है । एक सूक्त इनके युग्म के लिए आता है । अपने चरित्र के एक दूसरे पक्ष में विष्णु गर्भ के रक्षक है, और गर्भाधान के निमित्त अन्य देवों के साथ आहूत हुए हैं ।

पशुओं का विष्णु से सम्बन्ध बहुत स्वाभाविक है । पुराणों में विष्णु के निवास स्थान को क्षीर सागर में अवस्थित बताया गया है इसी क्षीर

1- ऋग्वेद - 7/99/3

2- ऋग्वेद - 1/159/5.

3- ऋग्वेद - 1/154/6

4- निरुक्त - 12/18.

समुद्र के अन्दर उनका प्रिय वैकुण्ठ लोक है जहाँ वे शेषनाग पर शयन किया करते हैं। समुद्र से विष्णु का सम्बन्ध होने के कारण उनका नारायण से तादात्म्य भी है। नारायण शब्द वैदिक युग में विष्णु का विशेषण बन गया था। विष्णु का वाहन गरुड़ है विष्णु का प्रिय अस्त्र सुदर्शन-चक्र बताया गया है और यह उनका अपना विशेष आयुध बीज है। इस चक्र की कल्पना के वैदिक साहित्य में ही निहित है।

कालान्तर में जब विष्णु का व्यक्तित्व दैवीकरण की चरम सीमा पर पहुँच गया तो सुदर्शन चक्र केवल आयुध बनकर रह गया और जैसा कि स्वाभाविक था। उसका मूल विलुप्त हो गया। यहाँ से तो विष्णु का प्राचीन सम्बन्ध है ही।

§12§ विवस्वान् -

उनके विषय में सबसे महत्व की बात उनका मनु के साथ सम्बन्ध है। मनु मानव जाति के आदि पुरुष हैं। विवस्वन्त के सम्बन्ध से उन्हें वैवस्वत या पितृत्व मात्र के द्योतनार्थ विवस्वन्त ही कहा गया है। ब्राह्मण मनुष्य को भी विवस्वन्त् का अपत्य बताते हैं। ऋग्वेद में अन्य देवों की तरह विवस्वन्त् को भी देवताओं का जनक बताया गया है। त्वष्टा का पुत्री सरण्यू उनकी पत्नी है और वे अश्विनों के पिता हैं। उनके और मातरिश्वन् के समक्ष अग्नि सर्वप्रथम अविर्भूत हुए थे। मातरिश्वन् या अग्नि उनके सन्देश वाहक है। सोम विवस्वन्त के साथ रहते हैं और उनकी पुत्रियों द्वारा शोधे जाते हैं। विवस्वन्त् की स्तुति में इन्द्र आनन्द विभोर हो उठते हैं और उनके समक्ष अपनी औषधि को रख देते हैं।

विवस्वन्त् की सदस् एक ओत वस्तु है । यहाँ देवगण और इन्द्र आनन्द लूटते हैं नाभि-स्वरूप विवस्वन्त् में एक अभिनव सूक्त का निधान किया गया है । इस सूक्त का तात्पर्य निःसंदेह इसी सदस् से है ।

वेदोत्तर कालीन साहित्य में विवस्वन्त् सूर्य का नाम है किसी भी परिस्थित में विवस्वन्त् अपने मौलिक स्वरूप का अधिकांश खो बैठे दीख पड़ते हैं ।

यह शब्द प्रकाश मान होना या चमकना अर्थ का वस् धातु में "वि" उपसर्ग पूर्वक बना है "वस्" धातु उषा शब्द के मूल में भी है विवस्वन्त् शब्द का अर्थ है तेजस्वी । अतः यह तो निश्चित ही है कि इस शब्द का मूलतः सूर्य से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध था ।

(13) चन्द्रमा -

चन्द्रमा और सूर्य इन दोनों की समता शिशुओं से की गई है । चन्द्रमा के कारण ही मासों की गणना सम्भव होती है, और मासों के आधार पर ऋत्विक लोग यज्ञानुष्ठान आरम्भ करते हैं, चन्द्रमा घटता-बढ़ता रहता है । अतः सदा नवीन ही दिखाता है । चन्द्रमा उत्पन्न होने पर नया-नया सा लगता है उसके आने से ही शुक्ल और कृष्ण पक्ष बनते हैं जिनके आधार पर भिन्न-भिन्न देवों को उनका भाग (हविष्) मिलता है । चन्द्रमा शान्ति और विश्राम प्रदान कर आयु में वृद्धि करता है ।[1]

1- नवो नवोभवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्-भागं देवेभ्यो विदधात्यायन्-प्रचन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः । 7-86/2तथा ऋग्0-10-85-19 ।

चन्द्रमा के महत्त्व से सम्बद्ध मान्यता अत्यन्त अनिश्चित है। चन्द्रमा के महत्त्व के विषय में उपासना सम्बन्धी प्रमाण बहुमूल्य है, किन्तु यह धारणा निरर्थक है कि सभी धर्म समान प्रक्रिया में से होकर विकसित हुए हैं।

जब चन्द्रमा अंशु या एककलात्मक होता है तो देव उसे एक-एक कला प्रदान कर शुक्ल-पक्ष में संवर्धित किया करते हैं। वह क्षय रहित है अक्षित (मित्रादि) लोक उसका पान किया करते हैं[1]। चन्द्रमा स्कम्भरूप ज्येष्ठ ब्रह्मा का चक्षु है[2]। वह कोमल एवं दर्शनीय ही नहीं है।

देवों में परिगणित होने के कारण चन्द्रमा से भी बहुत प्रकार की सहायता के लिए प्रार्थना की गई है। चन्द्रमा भी सूर्य के समान सुपर्ण है जो द्यो में जलों या अन्तरिक्ष के बीच दौड़ता रहता है, किन्तु उसकी स्वर्णनेमि जैसी मनोरम गोल किरणें कुएं के भीतर नहीं पहुंच पातीं। चन्द्रमा भी तो प्रतिदिन रात को ही चमकता है।

(14) मित्रावरुणौ -

मित्र और वरुण दोनों का प्राकृतिक उद्भव लगभग समान अथवा परस्पर अविभाज्य रूप से सम्बन्धित था। वरुण के साथ मिल जाने पर मित्र का अपना व्यक्तित्व पूर्णतः लुप्त हो गया है और "मित्रावरुणौ" देवताओं में बिल्कुल

1- यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति। वही 6

2- अथर्व - 10/7/33

वे ही विशेषताएं है जो अकेले वरुण में ।

ब्राह्मण ग्रंथों में मित्र और वरुण के प्राकृतिक आधार पूर्णतः भुलाये जा चुके हैं । उनके केवल युग्मतत्व की भावना सुरक्षित रह गयी है । यज्ञिय कृत्यों में विभिन्न स्थलों पर दी जाने वाली मैत्रावरुण हवि की व्याख्या में ब्राह्मणों ने सर्वत्र पूर्ण स्वेच्छाचारिता से काम लिया है ।

दो पृथक्-पृथक् देवताओं के रूप में अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हुए भी मित्र और वरुण के व्यक्तित्वों का इस प्रकार जुड़ कर एक हो जाना परवर्ती हिन्दू देवशास्त्र में सुविख्यात उस प्रक्रिया की पूर्ण परिचित है जिसके अनुसार स्वरूप की दृष्टि से साम्य रखने वाले देवता परस्पर जुड़कर एक उच्चतर देवता की सृष्टि करते हैं ।

अन्तरिक्ष स्थानीय देवता -

(1) मरुद्गण -

"मरुत्" शब्द से ही स्पष्ट है कि यह झंझावात से सम्बन्धित अथवा तीव्रता से प्रवाहित वायु को सूचित करता है । मरुद्-गण दबद्‌ग इन्द्र के साहचर्य में आते हैं, वे रुद्र के पुत्र हैं, अतः उन्हें रुद्र या रुद्रिय संज्ञा दी गई है । उनकी माता पृश्नि या एक गाे है । अग्नि को भी उनका जनक कहा गया है और वे विद्युत के अट्टहास से उत्पन्न हुए हैं । रोदसी देवी उनकी वधू है और इन्द्राणी तथा सरस्वती देवियों के साथ उनका सम्बन्ध है ।

मरुतों का आवास तीनों स्वर्गों या तीनों लोकों में है द्युतिमत्ता उनकी विशेषता है, अतः उन्हें स्पष्ट रूप से अग्नि कहा गया है। वे पैरों में नूपुर और पाजेब पहनते हैं। छाती पर हिरण्मय आभरण और सिर पर सुनहले उष्णीष। उनके पास सोने की छुरी भी है। वे अपने रथ में अश्व रूपी पवनों को भी जोतते हैं उनका गान इन्द्र को वृत्र वध के लिए उकसाता है।

झंझावात से सम्बद्ध होने के कारण रुद्र से इनका सम्बन्ध अत्यन्त स्वाभाविक है।

मरुतों का पराक्रम असीम है ये कल्याणकारी है, उनकी शक्ति का अन्त आज तक किसी ने नहीं पाया। मरुत वृष्टि के देव इन्द्र के विशेष रूप से सहायक है मरुतों का प्रधान कार्य है वृत्रवध में इन्द्र की सहायता करना।

स्तोता को वे प्रजा तथा धन से समृद्ध करते हैं कृषि में भी कई स्थानों पर उनका सम्बन्ध स्थापित किया गया है। अश्वत्थ के वृक्ष से मरुतों का विशेष सम्बन्ध माना गया है वे उसमें निवास करते हैं।

(2) इन्द्र -

इन्द्र देव शक्ति का प्रतीक है। वह अपने दो अश्वों पर चलकर याजक को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ में आता है और वहाँ सोम का पानकर आनन्दित होता है।

यह उदात्त चरित्र के देवता वरुण को धकिया कर भारतीय आर्यों का सर्वेसर्वा बन बैठा था। प्रत्यक्ष है कि इन्द्र की व्युत्पत्ति दीप्त्यर्थक इन्द्र धातु से हुई है। फल इसका यह है कि इन्द्र के जीवन में प्रकाश ज्योति-तेजस् और ओजस्

का प्रमुख साध्य है, उनके वर्णन में जगह-जगह स्वर्ण-हिरण्य एवं तेजस् का उल्लेख आता है । वह जगह-जगह प्रकाश को सूर्य को उषस् एवं द्यावा-पृथिवी को अनावृत्त करता दिखाया गया है । निदान अङ्गिरसों की सहायता से ये गायें जीतकर इन्द्र को अर्पित कर दी जाती हैं । इस इन्द्र का वज्र लोहे का है । इसकी भुजाओं में ओज है और इसके तन में नाना प्रकार के वसु हैं ॥ 7/963 ॥ । जीवन में प्रकाश का हार्दिक आह्लाद का चमक-दमक का और शान-शौकत का देवता इन्द्र है । इन्द्र वृत्र जैसे दानवों का संहार कर, पचास हजार कृष्ण वर्ण के लोगों को नष्ट कर उनके पुरों, दुर्गों को ध्वंस कर दिया था ।

पञ्चाशत् कृष्णा निवयः सहस्रा त्कम् न पुरो जरिमा विदर्द ।[1]

इन्द्र देवता को दक्षिण दिशा का रक्षक कहा गया है । अग्नि तथा वरुण के साथ इन्द्र देवों का सेनापति है[2] ।

॥3॥ आपः -

अथर्व० में अग्नि के समान जल को भी बहुत महत्त्व दिया गया है । आपः ऐसा देवियां है जो अपने आप को प्राकृतिक जल से सुतरां निर्मुक्त नहीं कर पाई, किन्तु हमें ऐसे भी चरित्र मिल जाते हैं जो कि इस आधार से सुतरां निर्मुक्त हो गये हैं । जैसे कि अप्सराएं - ऋग्वेद में हम उन्हें विशुद्ध जल

1- ऋग्वेद - 4/16/13

2- शतपथ ब्राह्मण - 2/6/4-1-4.

हों की तरह व्यवहृत पाते हैं और उन्हें सोम में मिल जाने के लिए न्योता भी दिया गया है किन्तु उनका अपना निजरूप जल-युवतियों का है जो मन में आते ही अपने तत्व {जल} को त्याग देती और मर्त्यों में विहार करने लगती है और तब उनको वे विशेषताएं फड़क उठती है । जो उनको हंस-युवतियों और दूसरे धर्मों का ऐसी ही परियों को अहने स्थापित कर देती हैं । इन प्रेम प्रसङ्गों में प्राकृत आधार को ढूढना दुतरा व्यर्थ होगा । "आप:" वस्तुत: देवियां है, किन्तु वे साथ ही पाने में स्वास्थ्यकर भी है ।

सृष्टि के प्रारम्भ में आप: ही थी, उन्होंने पहले विश्व का संरक्षण किया । उन्हीं ने हिरण्यगर्भ को गर्भ में धारण किया । उन्हीं के भीतर देव स्थित था ।

आप: का प्रयोग जादू-टोनों तथा झाड़-फूंक आदि के लिए होता था ।

आप: का सर्वाधिक महत्त्व याज्ञिक कार्यों से है । वह अध्वर से सम्बन्धित लोगों की जामि{बन्धु} हैं[1] । आप: का व्यक्तित्व अत्यन्त झीना रह गया है । और उनकी भौतिकता प्राय: हर जगह जुड़ी रही है। अप्सराएं उनकी मानवाकृति है माताये वे और युवती सुन्दरियां है । वे देवताओं मित्र वरुण के सदस में निवास करती हैं । आप: का सम्बन्ध मधु के साथ है ।

1- अथर्व {पै० सं०} अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अह वरीयताम - पृञ्चतामधुना पय: । 1/4/1 ।

(4) रुद्र -

रुद्र शब्द /रुद् अश्रुविमोचने धातु से णिच् और रक् प्रत्यय का योग करने से सिद्ध होता है। रुद्र का अर्थ होता है, स्वयं रोने वाला और दूसरों को रुलाने वाला।

ऋग्वेद में रुद्र एक अप्रधान देवता है। ऋग्वेद के रुद्र सम्बन्धी सूक्तों में मुख्यतः उनके भयंकर दंड के प्रति भय तथा इनके क्रोध के लघु कारण की भावना व्यक्त हुई है। इनकी स्तुति इस भय से की गयी है कि क्रोध में आकर ये अपने स्तोता को ही नष्ट न कर दें। यजुर्वेद के एक मंत्र में रुद्र उनसे से प्रार्थना की गई है कि वे प्राणियों की हिंसा न करें। एक मंत्र में रुद्र देवता को ही नीलकंठ कहा गया है -

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहित।[1]

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।[2]

एक मन्त्र में कृत्तिवासा धर्म धारण करने वाला कहा गया है-

परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं।[3]

वसान आचर पिनाकं बिभ्रादागहि।

एक मंत्र में रुद्रदेवता को ही नीलकंठ कहा गया है। ऋग्वेद में रुद्र का चरित्र भयङ्कर है वे विद्युत और वज्र धारण करते हैं[4] और तीर चलाने में दक्ष हैं।

1- यजुर्वेद - 16/7
2- यजुर्वेद - 16/8
3- यजुर्वेद - 16/51
4- ऋग्वेद - 10/92/9

ऋग्वेद में रुद्र का महत्त्व विष्णु से कम नहीं है किन्तु परवर्ती साहित्य में यह महत्त्व बढ़ता गया है । रुद्र का निकट सम्बन्ध मरुतों के साथ है, जिनके वे पिता हैं । और जिन्हें प्रायः रुद्र या रुद्रिय कहा गया है ।

ब्राह्मणों में रुद्र की शक्ति अपने ज्वलन्त रूप में दिखती है । देवता भी डरते हैं कि कहीं रुद्र उन्हें मार न डालें ।

रुद्रों के गणों का परवर्ती साहित्य में बड़ा विचित्र तथा मनोरंजक वर्णन है ।

परवर्ती देव-शास्त्र में रुद्र की नृत्य सम्बन्धी विशेषताओं का कारण रुद्र के साथ एक वनस्पति देव का सम्मिश्रण है जिसे भारतीय डायोनिसस समझा जा सकता है ।

§5§ पर्जन्य -

वात की तरह पर्जन्य भी एक ऐसे देवता है जिसका प्राकृतिक आधार सुस्पष्ट है । पर्जन्य एक वृषभ है, जो गरजता है और धड़कते हुआ ओषधियों को गर्भित करता है । उसके छलछलाते सलिलाधार पृथिवी को रोमाञ्चित कर देते हैं । किंतु जलों की सामान्यतया स्त्री रूप में कल्पना होने के कारण अन्य स्थलों पर उन्हें "सुन्दर कोख वाला" भी कहा गया है । वे वृष्टि-दाता है और उनसे वृष्टि का भाव माँगा गई है । उनकी इन क्रियाओं के नियामक मित्र और वरुण है । वे गरजते है और तैश में आकर वृक्षों और पापियों को धराशायी कर देते हैं । उन्हें सार्वभौम एकाधिपति और सभी लोकों का शासक बताया गया है,जिनमें तीनों लोक और समस्त प्राणी व्यवस्थित है । दूसरी दृष्टि से वे तत्त्वतः पिता और यहाँ तक कि दिव्य पिता है ।

पर्जन्य का स्वरूप समग्र वैदिक साहित्य में सुरक्षित है और उत्तर-काल में भी वह अक्षुण्ण बना रहा है वे विशुद्ध एवं सहज रूप में वृष्टिदेव है

§6§ वायु और वात -

वायु एक ऐसे देवता है जिनकी धारणा का विकास अग्नि की भांति अत्यन्त स्थूल एवं सर्वत्र दृश्यमान भौतिक तत्त्व से हुआ है । ऋग्वेद में हवा के असली देवता वायु और वात है । किन्तु स्वरूप और महत्व में ये एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है, ये अन्तरिक्ष के प्रतिनिधि देवता है । इसलिए अन्तरिक्ष के सर्व-प्रमुख देवता इन्द्र से उनका प्रायः तादात्म्य किया गया है । और दोनों में से किसी को भी अन्तरिक्ष का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देवता मान लिया जाता है । वायु सुभग है । वे आकाश को छूते हैं और सहप्राण है । अपने मित्र इन्द्र के भांति वे सोम के शौकीन है । वे नार §आलिस§ सोम पीते और उनकी देखभाल करते हैं । अन्य देवों की तरह उनसे यश अपत्य एवं धन-जन की रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है किन्तु ये विशेषताएं गौण है ।

अपनी शक्ति की दृष्टि से वात वायु है जो धूल के अंबार उड़ाता हुआ, यहाँ तोड़ वहाँ फोड़ करता हुआ, प्रभञ्जन के रूप में सायं-सायं करता हुआ चलता है । वात विद्युत एवं सूर्योदय का सूचक है । अतः उसे लोहित प्रकाश का जनक और उषाओं का प्राजक बताया गया है । वायु के झोंके धरती को झाड-बुहार देते हैं । इसलिए उसे स्वास्थ्यकारी बताया गया है ।

वायु को दर्शनीय या सुन्दर तथा सबसे अधिक सौन्दर्यशाली भी कहा गया है । किसी को यह ज्ञात नहीं है कि वह कहाँ उत्पन्न होता है और

कहाँ से आता है । जहाँ इसकी इच्छा होती है वहाँ यह विचरण करता है (यथा वशं चरति देव एषः) इसका रूप किसी को नहीं दिखाई पड़ता । केवल घोष ही सुनाई पड़ता है ।

वायु अत्यन्त पुत्रवत्सल है । बालक हनुमान की वे हर प्रकार से रक्षा करते हैं ।

भौतिक एवं दैविक रूपों का यह विचित्र सम्मिश्रण ही वायु के पौराणिक स्वरूप की सर्वप्रमुख विशेषता है और इसके स्वरूप में यह अग्नि से भी अधिक स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष है ।

(7) मातरिश्वन् -

मातरिश्वा भी एक ऐसे देवता हैं, जिनका रूप अग्निमय है और जिनकी उत्पत्ति जल के द्वारा होती है । इस देवता से भी मेघ द्वारा उत्पन्न विद्युत अग्नि का ही बोध होता है ।

(8) अज एकपाद् -

जिन देवताओं के साथ उनका उल्लेख हुआ है वे हैं समुद्र, नदी, अन्तरिक्ष, गरजता हुआ जल-प्लावन और विश्वे-देवाः । एक अत्यन्त उत्तरकालीन भारतीय परम्परा उन्हें अग्नि या सूर्य का रूप बनाती है ।

(9) अहिर्बुध्न्य -

अहि बुध्न्य का नाम ऋग्वेद में केवल बारह बार आया है । "अज एकपाद" अपां" नपात्" और सविता के साथ इनका निकट सम्बन्ध है ।

अहि बुध्न्य का स्वरूप अत्यन्त धुंधला है । वैदिक कवियों का सबसे महान् अहि "वृत्र सर्प" है जो जलों को रोके रहता है । मोटे तौर पर यह माना जा सकता है कि वे धुंधराले मेघों के मानवीकरण हैं ।

वेदोत्तर-कालीन साहित्य में यह नाम शिवके विशेषण और रुद्र के एक पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

﴾10﴿ अपांनपात् -

एक ऐसे देवता हैं, जो मेघ से उत्पन्न होने वाली विद्युत अग्नि के रूप में प्रकट होते हैं और मेघों में अवरुद्ध जल को मुक्त करने में उनका भी हाथ रहता है । कर्म काण्ड तो अपांनपात् के जलीय पक्ष पर बल देता है ।

﴾11﴿ त्रितआप्त्य-

त्रित आप्त्य एक ऐसे देवता हैं जिनके कार्यों को देखने से इनके महान् देवता होने की सम्भावना बंध जाती है । त्रित के कार्य प्राय: इन्द्र के कार्यों के सदृश हैं ।

त्रित का अवेस्तिक रूप थ्रित है । ये तीसरे हओम-पेष्टा है उन्होंने असुर से 10,000 ओषधियां प्राप्त की थी जो हओम के चारों ओर उगी थी । त्रित नाम वस्तुत: तृतीय है और आप्त्य का सम्बन्ध अपस् से प्रतीत होता है । फलत: यह अपां नपात् के समकक्ष हो सकता है त्रित आप्त्य के आयस द्वारा एक राक्षस को मारा था ।[1]

1- ऋग्वेद - 10/8/8 ।

§12§ अम्बिका -

देवी की स्तुति के लिए शुक्लवेद संहिता के 21 वें अध्याय में इसका वर्णन है । उषा की कल्पना में लावण्य मनोरम तथा सौन्दर्य है, किन्तु प्रभाव नहीं । सरस्वती तथा उसके सूक्ष्मरूप "वाक् में अवश्य ऐसे तत्त्व हैं । ऋक् तथा अथर्ववेद संहिता में रात्रि, पृथ्वी तथा वाक् आदि के सूक्तों से सम्बन्धित है ।

मातृ शक्ति का सर्वप्रथम अम्बिका नाम से उल्लेख वा०सं०तथा श०ब्रा० में प्राप्त होता है और वे लोक विश्वास की जन कल्याण कारिणी तथा कन्याओं को पति एवं सौभाग्य प्रदान करने वाली मंगलमयी देवी जान पड़ती है देवी के जो कात्यायनी दुर्गा कन्याकुमारी, गिरिसुता तथा गौरी आदि विशेषण पुराण आदि में दिये गये हैं । वे सर्वतः शिव की पत्नी पार्वती के लिए प्रयुक्त होते हैं । इनके लिए भवानी, शर्वाणी रुद्राणी, उमा तथा ईशानी आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं ।

§13§ गणेश -

गणपति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋ० वे०[1] 2/23/1 में प्राप्त होता है । गणेश के वक्रतुण्ड, एकदन्त, हस्तिमुख, लम्बोदर, स्थूल तथा विघ्न आदि विशेषण दिये गये हैं ।

गणेश लोक विश्वास की उन अनिष्टकारी शक्तियों के अधिपति माने जाते हैं जिनका कार्य मनुष्य को हर प्रकार से परेशान करना है और इसीलिए

1- ऋ0- 2/23/1 गणानां गणपतिं हवामहे,

बृहस्पति सूक्त ।

प्रत्येक मांगलिक कार्य के आरम्भ में या अनिष्ट दूर करने के लिए उनका पूजन आवश्यक समझा जाता था । प्रारम्भ से ही इनकी कल्पना हाथी के समान मुख वाला, एक वामन एवं स्थूलकाय मानव आकृति के रूप में की जाती थी । क्योंकि लोक-विश्वास के अनुसार आज भी भूत,प्रेत, प्रमथ आदि पशुओं सा मुख रखते हैं ।

बाद में गणेश की उपासना एक सम्प्रदाय बन गया । अपने आराध्य देव गणेश को उनके उपासकों ने ब्रह्मा,विष्णु,शिव आदि का भी जनक सर्वोच्च परब्रह्म स्वीकार किया ।

§14§ <u>स्कन्द</u> -

शिव एवं पार्वती के पुत्र के रूप में ख्यात कार्तिकेय या स्कन्द भी ऐसे ही देवता हैं जिनका उद्गम ब्राह्मण धर्म से बाहर हुआ है गणेश के भाँति भी वे लोक-विश्वास के देवता थे ।

स्कन्द का शस्त्र शक्ति या बरछी है और उनका वाहन मयूर बताया गया है महाभारत में उन्हें महिषासुर का वध करते हुए भी वर्णित किया गया है । जिसका श्रेय बाद में उनकी माता दुर्गा को दिया गया ।

<u>महान् देवता</u>- <u>पृथिवी-स्थानीय</u> -

§1§ <u>अग्नि</u> -

यह पृथिवी-स्थानीय देवता है । अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति "अञ्चु व्यक्ति म्रक्षणकान्तिगतिषु" से हुई है फलतः अग्नि देवता में वे सभी गुण खिल उठे हैं,

जो ⁄ अन्च् धातु के अन्तर्गत है । इनमें प्रमुख है कान्ति, व्यक्ति और गति-अत, अग्नि देवता इन तीनों ही गुणों का अनुपम प्रतीक है दूसरे शब्दों में सारा ही वैदिक वाङ्मय अग्नि देवता के ओजस, तेजस एवं प्रकाश से खिला हुआ है और धधकती अग्नि की लपटों से उल्लसित हो रही है ऋग्वेद का तो आरम्भ ही अग्नि देवता की पूजा से होता है । ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि मंत्र है ।

अग्नि को अनेक स्थानों पर अङ्गिरस कहकर पुकारा गया है । अङ्गिरस की व्युत्पत्ति भी ⁄अन्च् धातु से हुई है - फलतः अङ्गिरसों का प्रमुख गुण भी चमक एवं उजाला है । इन्हीं अङ्गिरसों की सहायता से इन्द्र को उसकी गायें प्राप्त हो सकी थी । अङ्गिरसों की ज्वालामयता के कारण ही घोर अथर्ववेद [illegible] का एक नाम अङ्गिरस वेद भी पड़ गया है, और क्योंकि ज्वाला में धीरता का अंश छिपा रहता है, इसलिए शिव धीरता के आत्मभूत अङ्गिरस देवताओं ने अथर्ववेद के घोर अंश को अपने नाम से अलंकृत कर दिया है ।

अग्नि का अनीक सूर्य है और सूर्य शब्द का आधार स्वर है, स्वर का अर्थ है प्रकाश, फलतः स्वर सूर, सूर और सूर्य इन सभी शब्दों का सम्बन्ध प्रकाश से है । सूर्य (अथवा आदित्य) ऋतावा है, ऋत जात है और ऋता वृध है[1] सूर्य की पूजा में वैदिक ऋषियों की भारती किस तरह मुखरित हुई इसे बताने की आवश्यकता नहीं है । स्वयं गायत्री मंत्र ही का आधार सविता-सूर्य है जो उर्वरक एवं वयोविद् वाणी का प्रेरक है ।

अग्नि का एक नाम भृगु भी है भृगु शब्द की व्युत्पत्ति दीप्त्यर्थक ⁄ भ्राज् धातु से हुई है, फलतः भृगु देवता का आधार भी प्रकाश ही ठहरता है ।

1- ऋ0- 7/65/13 ।

(2) अग्नि के बृहस्पति एवं इतर रूप -

ऋग्वेद में बृहस्पति अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व के देवता हैं उनका स्वरूप स्पष्ट रूप से इतर देवों की क्रियाओं का सम्मिश्रण प्रतीत होता है । उसका विशेष आयुध ऋत-ज्या धनुष है, जिसका तात्पर्य यहाँ पवित्र विधान अथवा यज्ञ से है ।

बृहस्पति विशेषतः दिव्य पुरोहित हैं । यज्ञों में देवों के पुरोहित होने के साथ-साथ ब्राह्मण भी हैं, बृहस्पति सूक्तों का गान करते हैं, छन्द उन्हीं के हैं वेदोत्तर-कालीन साहित्य में वे बृहस्पति नक्षत्र के अधिदेवता बन गए हैं ।

वैदिक विद्वान इस नाम को √बृह धातु से निष्पन्न हुआ मानते थे । जिसका अर्थ प्रार्थना था, क्योंकि यह शब्द ब्रह्मणस्पति का समानान्तर है । अतः इस नाम का अर्थ प्रार्थना या उपासना का स्वामी है । बृहस्पति वनस्पतियों को प्रभावित करते हैं, यह तथ्य उन्हें चन्द्र देव बनाने के लिए अपर्याप्त है ।

बृहस्पति के साथ अग्नि का तादात्म्य देवता के चारित्रिक विकास के कारण धुंधला पड़ गया है । सूर्य की परिक्रमा करने वाले तेजस्वी पन्चम ग्रह को बृहस्पति रख दिया गया ।

इस प्रकार ऋग्वेद के ये अमूर्त देवता बृहस्पति जो वैदिक साहित्य में धार्मिक स्तोत्रों के अधिष्ठाता एवं आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न देवता के रूप में उपस्थित होते हैं । महाभारत एवं पुराणों में आकर एक सामान्य ब्राह्मण पुरोहित का रूप धारण कर लेते हैं अन्तर केवल इतना है कि देवराज इन्द्र के पुरोहित है, अन्यथा उनमें प्रायः वे ही दुर्बलताएँ है, जो एक साधारण मानव में पाई जाती है ।

(3) सोम देव -

ऋग्वेद की कविता का मुख्य विषय सोम याग है । सोम एक विशेष प्रकार की लता से निकाला जाने वाला आनन्ददायक, स्फूर्तिप्रदायक एवं बलवर्धक पेय है जिसको वैदिक आर्य दूध तथा मधु मिश्रित करके देवों को अर्पित करते थे और तदनन्तर स्वतः पान करते थे । देवों को प्रदान किये जाने वाले द्रव्यों इसका सर्वोत्कृष्ट स्थान है ।

सोम की व्युत्पत्ति /सु से है और इसका अर्थ है पीस कर निकाला हुआ रस । इसका समानान्तर शब्द अन्य किसी भी भारोपीय भाषा में नहीं मिलता; •

सोम-यागों का वैदिक कर्मकाण्ड में सर्वाधिक महत्त्व है । देवता रूप में सोम का मानवीकरण अत्यधिक अपूर्ण है । सम्भवतः अग्नि और वायु से कम । यद्यपि सोम पार्थिव है । और वह मुञ्जवान पर्वत पर उत्पन्न होता है किन्तु साथ ही उसे दिव्य भी कहा गया है । आकाश का पुत्र या दिवःशिशु

देवता के रूप में सोम का वर्णन करते समय उसका रसात्मक वैदिक तथा चन्द्र-बिम्बरूपी आधिभौतिक पक्ष सदा पौराणिक कवियों की दृष्टि में रहा है । शतपथ ब्राह्मण के सोम यज्ञों में यज्ञों में सोम देवता की अनिवार्यता कारण सोम देवता सर्वप्रमुख हैं[1]। वैदिक लोग यह समझते हैं कि इस रस को पी से देवों तथा मनुष्यों को अमृत्व की प्राप्ति होती है[2]। वनस्पति को सोम की प्रजा कहा गया है[3]। सोम ब्राह्मणों का राजा है[4]।

1- शतपथ ब्राह्मण
2- ऋग्वेद - 9/106/2
3- ऋग्वेद - 8/48/3
4- ऋग्वेद - 9/119/2

(4) नदियाँ -

नदियों में सबसे महत्वपूर्ण नदी सरस्वती है, जिसके लिए सब मिलाकर तीन सूक्त आते हैं। वे पर्वतों को विदीर्ण करके खिलखिलाकर बहती है। उनकी सात बहनें है। वे नदियों की माता है। वे पावीरवी विद्युत की पुत्री है और उनके एक पति है जिनका नाम सरस्वन्त है। वे दिव्य हैं। वे पितरों के साथ यज्ञ में आती हैं। उन्हें आकाश से अवतीर्ण हुई बताया गया है। यह गङ्गा के दिव्य जन्म के विषय में सामान्य भारतीयविश्वास का पूर्व रूप है। वे संतान धन और अमृत प्रदान करती है।

(5) पृथिवी -

पृथिवी देवी को ऋग्वेद में नगण्य स्थान प्राप्त हुआ है। उनके लिए केवल एक छोटा सा सूक्त आया है। अथर्ववेद में उनके लिए एक विशाल और रोचक सूक्त आता है। पृथिवी ऊंचाइयों से समृद्ध है। वे पर्वतों का भार वहन करती है। और अपने वक्ष में वन-वृक्षों की जड़ों को धारण करती है। वे उर्वी, भास्वती एवं दृढ़ है। मेघों से वृष्टि का जल बिखेर कर वे धरती को उर्वरा बनाती है। अन्त्येष्टि-सूक्त में उनसे प्रार्थना की गई है कि वे मृतक के साथ बच्चे जैसा मीठा व्यवहार करें, उन्हें उदार मातृभूमि भी कहा गया है। गृह्य सूत्रों में उनके भूमि रूप के लिए कुछ आहुतियों का विधान है।

(6) समुद्र -

उपलब्ध प्रमाणों से व्यक्त होता है कि वैदिक भारतीयों को समुद्र के विषय में नाम मात्र का ज्ञान था, और उनकी कोई भी शाखा समुद्र के किनारे नहीं बसी थी । उनका आह्वान, अज एकपाद, अहि-बुध्न्य और पृथिवी के साहचर्य में हुआ है । ये आहुतियां प्रधानतया अनेक देवताओं की परिगणना में दी जाती है जिससे समुद्र-देव के स्वरूप का धुंधलापन बना ही रह जाता है । यही सिद्धान्त परवर्ती साहित्य पर भी अक्षुण्ण है ।

(7) यम -

यम का स्थान सर्वोच्च आकाश में है । वहाँ मधुमय जल के स्त्रोत सदा बहते रहते हैं । उस स्थान में केवल यम और वरुण ये दो राजा निवास करते हैं । यम मनुष्यों के संग गमन करता है अर्थात् वे मनुष्यों को (प्रेतात्माओं) को एक स्थान पर एकत्र करते हैं वे प्रायः एक घने वृक्ष के नीचे बैठे रहते हैं । उनकी माता का नाम सरण्यू है जो एक यमज पुत्र-पुत्री उत्पन्न करने के पश्चात् चली गई थी।[1] यम एवं उनकी बहन यमी को मानव का आदि युग्म कहा गया है ।

यजुर्वेद में यम को केवल पितरों का स्वामी कहा गया है । यम की कल्पना एक काले एवं भयंकर शरीर वाले पुरुष के रूप में की गई है वे पीताम्बर तथा सोने के आभूषण धारण किये रहते हैं उनका वाहन महिष है तथा काल और मृत्यु नामक उनके दो परिचर हैं ।

1- ऋ0 - 10/10/2 यम-यमी संवाद

अमूर्त अथवा भावात्मक देवता

(1) प्रजापति -

वैविध्य में ऐक्य के दर्शन करना विकसित मानव बुद्धि का स्वभाव है ऋग्वेद के परवर्ती सूक्तों में ऋषियों का प्रवृत्ति ऐसे किसी एक पूर्णतः अमूर्त अथवा भावात्मक देवता की ओर जाती हुई दिखाई देती है । इस एक देवता को कभी वे निर्माण करने वाला (त्वष्टा) कहते हैं, कभी संसार का रचना करने वाला (विश्वकर्मा) और कभी प्राणियों का स्वामी (प्रजापति) ।

हिरण्यगर्भ प्रजापति का भौतिक कारण है । क्योंकि प्रजापति का उत्पत्ति हिरण्यगर्भ से होता है । हिरण्यगर्भ और प्रजापति एक ही तत्त्व के वाचक हैं ।

प्रजापति सभी देवताओं में सर्वाधिक तेजस्वी और शक्तिशाली हैं उनका स्वरूप स्पष्ट भी है और अस्पष्ट भी ये निस्सीम भी हैं और ससीम भी संसार के प्रत्येक वस्तु तथा सम्पूर्ण लोक प्रजापति के रूप ही है उन्हें "संसार का जनक" तथा सर्वोत्कृष्ट अमर तत्त्व कहा गया है ।

(2) अदिति -

वेदों के सर्वोत्कृष्ट देवों के समूह आदित्यगण की माता के रूप अदिति का ऋग्वेद में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । वह आठ आदित्यों की माता है । उसके पुत्र राजा है । वे श्रेष्ठ,शक्तिशाली तथा वीर है ।

ऋत के संस्थापक एवं व्रतों (नैतिक नियम) के अधिपति वरुण की माता होने के कारण अदिति को श्रेष्ठ व्रतों की महिमाशालिनी माता, ऋत की पत्नी भी

शक्तिशाली जटारहित अत्यन्त विस्तृत तथा कल्याणकारी कहा गया है ।

प्रकृति के छोटे देवता -

ऋभु और ऋतु, गन्धर्व, एवं अप्सराएँ वन वृक्ष और ओषधि-सत्व, चरागाह एवं पर्वतों के सत्व गृह देवता, दिव्य उपकरण, दिव्य-पशु, गणचिन्ह वाद, सामान्य प्रकृति, देवियाँ, नक्षत्र एवं काल ।

भावाकृति देवता और व्यक्तिक देव -

भावाकृति-देवों त्वष्टट एवं इतर कर्तृदेव, सृष्टिकर्ता देवता, मानस देवता, देवीकृत स्थितियाँ अथवा अवस्थाएँ ।

वैदिक वाङ्‌मय में स्त्री देवता का स्वरूप -

देवी की भावना का उदय वेद की देन है । वस्तुतः वैदिक युग में ही वैदिक देवीवाद की धारणा जन्म ले चुका था । वैदिक देवीवाद में देवी का अभिप्राय देवशक्ति था । इन्द्रादि वैदिक देव बिना शक्ति के देवाधिदेव की बात दूर रहे, देव भी नहीं माने जा सकते थे । देवी के कल्पना में शक्तिमान की भावना है और देवी की भावना में शक्ति की कल्पना है । यदि देव को अग्नि माने तो देवी को उसकी ज्वाला-ज्योति ही माना जायेगा, शक्ति और शक्तिमान की भांति देवी और देव में आविना भाव सम्बन्ध मानना अधिक युक्तियुक्त है ।

ऋग्वेद का प्रसिद्ध वागाम्भृणी[1] सूक्त भारतीय वाङ्मय का सर्वप्रथम और सर्वतोभद्र देवी सूक्त है । ऋग्वेद के इस सूक्त में ऋषि कवि की देवी- विषयक अनुभूति वाग्विषयक अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त हुई है ।

देवी देव का स्त्रीलिङ्ग रूप है । स्त्रीलिङ्ग देवता के लिए विशेषण प्रयुक्त हुआ है । अग्नि देवी है । विदथ में उसकी स्तुति की जाती है । वेद में देवताओं के अतिरिक्त देवियों की संख्या भी प्रचुर परिमाण में प्राप्त होती है । उषा रात्रि, पृथ्वी अग्नायी, वरुणानी आपः, वाग्, सरस्वती, श्रद्धा, अरमति धिषणा, पुरन्धि योषा इला, पृश्नि रोदसी राका, सिनीवाल गुङ्ग कुहु श्री आदि अप्सराओं का भी उल्लेख है, किन्तु इनके नाम बहुत अधिक नहीं आते । इनके विपरीत देवी सरस्वती तथा इनकी सजातीय देवियों को अपेक्षाकृत अधिक प्रामुख्य दिया गया है ।

पृथ्वी -

पृथ्वी को दयालु पृथ्वी माता कहा गया है तथा यह सम्पूर्ण विश्वास की देवता है ।

सरस्वती -

सरस्वती भी निम्नवर्गीय देवों के अन्तर्गत ही गण्य है ऋग्वेद में एक पूरा लम्बा सूक्त सरस्वती के लिए आता है[2] । यहाँ सरस्वती को नदी रूप में

1- ऋ0 10/125 वागाम्भृणी सूक्त ।

2- ऋ0-10-75.

भी माना गया है इस प्रकार इनका भौतिक रूप भी प्राप्त होता है । ऋ० में सरयू और सिन्धु के साथ सरस्वती का महान नदियों के रूप में आवाहन प्राप्त है,[1] नदियों के क्षेत्र में सरस्वती सबसे महत्वपूर्ण नदी है और कुल मिलाकर उससे सम्बन्धित तीन सूक्त आते हैं ।

वाग् -

वैदिक आधार को विकसित करने वाली देवी वाग् है इस मूर्तिकरण वाणी से सम्बन्धित भी एक सूक्त ऋग्वेद में प्राप्त है । इसको वाग् सूक्त कहा गया है[2] इस सूक्त वाग् को रुद्रों और वसुओं को तथा आदित्यों और विश्वदेवों को सहचारिणी कहा गया है । इसे मित्र-वरुण, इन्द्र-अग्नि तथा अश्विनी का धात्री भी बताया है[3] । समुद्र और जलों मे भी इसका स्थान है यह सभी प्राणियों को आवृत कर रखती है । ऋ० के अन्य स्थल पर इसे देवों की रानी और दिव्य कहा है[4] । निघण्टु[5] में इसकी गणना अन्तरिक्ष के देवों में की गई है और भाष्यकारों की शब्दावली में "माध्यमिका वाच" अर्थात् मध्यमा वाणी ।

1- ऋ० - 10 - 64-90

2- ऋ० - 10- 125.

3- ऋ०- अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवै ।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।।

ऋ० -10-125 ।

4- ऋ० - 8-89, 10-11

5- निघण्टु - 5.5

6- निरुक्त - 11.27.

अग्नायी, वरुणानी -

पृथिवी, अदिति और उषाओं को छोड़कर ऋग्वेद में उल्लिखित अधिकांश अन्य देवियों को बहुत कम महत्त्व दिया गया है अग्नायी वरुणानी अश्विनी और रोदसी[1]। क्रमशः अग्नि वरुण अश्विद्वय और रुद्र की पत्नियाँ है। इन देवियों का इतना कम महत्त्व बाद के पुराकथाशास्त्र में शिव और विष्णु की ओर विशेषतः शिव की पत्नी पार्वती को प्रदत्त प्रमुख स्थानों की तुलना में एक उल्लेखनीय अन्तर को व्यक्त करता है निर्ऋति विनाश की देवी है।

अरण्यानी -

अरण्यानी (निरुक्त में[2]) वनों के देवी है इसका ऋग्वेद[3] में प्रशस्ति है।

श्रद्धा -

तैत्तिरीय ब्राह्मण[4] में बताया गया है कि श्रद्धा के द्वारा देवता अपनी दिव्य प्रकृति करते हैं और दिव्य श्रद्धा ही संसार को धारण करती है इसमें अपने बछड़े के लिए काम (इच्छा की पूर्ति) है और अपने दूध के रूप में अमरत्व देती है। यही सर्वप्रथम यज्ञ से उत्पन्न होती है। और इससे उपासकों

1- सायण (1·167·5 पर) के अनुसार रोदसी "मरुत्-पत्नी विद्युत वा" है
2- निरुक्त -9·29·30
3- ऋग्वेद - 10·146
4- तैत्तिरीय ब्रा0- 3,12,31

को अमरत्व प्रदान करने के लिए कहा गया है ।

कुहू -

कुहू अमावस्या को कहते हैं जिसमें रात्रि को चन्द्र दिखाई नहीं देता । इसी दिन दर्श याग का अनुष्ठान किया जाता है । इस दृष्टि से यह तिथि महत्त्वपूर्ण है और इसे देवी नाम से सम्बोधित किया गया है । याजक स्तुति के द्वारा यज्ञ में बुलाते हैं कि वह आये और आकर रातदाय {अक्षुप्रद} उपथ {धन} विश्ववार रयि एवं वीर सन्तान प्रदान करे[1] । कुहू देवों के अमृत की पालिका या संरक्षिका है । यज्ञ की कामना करती है, और जिस याजक को जानती है उसे धन की समृद्धि {रायस्पोष} प्रदान करती है[2] ।

रात्रि -

मैक्डोनेल ने रात्रि की अन्धकार पूर्ण नहीं वरन तारों से प्रकाशमान रात्रि के रूप में इसकी कल्पना की है[3] । ऋ0 उषा की बहन और द्यौस के पुत्री के रूप में रात्रि की भी स्तुति करता है[4] । यहाँ भी रात्रि की कल्पना भास्वती, तारा-प्रभासित रजनी के रूप में की गई है जो घाटियों तथा सभी स्थानों को अपनी शान्ति से भर देती है ।

1- कुहूं देवी सुकृत विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि-सानोरयिं विश्ववारं नियच्छाद ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ।7/47/

2- वही

3- वैदिक माइथोलोजी {ए0ए0 मैक्डोनेल} हिन्दी अनुवाद राम कुमार राय।

4- ऋ0 - 10-127

रात्रि का आवाहन कई बार उषा के साथ युगल देवता के रूप में भी आता है इसे "उषासानक्ता" अथवा "नक्तोषसा" कहा गया है ।

पृश्नि -

पृश्नि को प्रकृति के साथ स्पष्टतः सम्बद्ध बताया है । ये मरुतों की माता कही गयी है[1]।

राका और सिनीवाली -

इनका स्वरूप यद्यपि ऋग्वेद में अनिश्चित है फिर भी परवर्ती साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों का देवियों के रूप में इनका वर्णन प्राप्त होता है। राका ऋ0 में दो बार समृद्ध एवं उदार देवी के रूप में उभरा है कीथ[2] ने अपनी धर्म और दर्शन नामक ग्रन्थ में ककुदमता, "सुबरता" एवं स्वङ्गुली सिनीवाली को देवताओं की बहन कहा है और उनसे सन्तान के लिए प्रार्थना की गई है उनका आवाहन "राका" "सरस्वती" और "गुङ्गु" के साथ किया गया है । परवर्ती संहिताओं में "राका" "पूर्णमासी" है और सिनीवली" अभिनव चन्द्रोदय" के पूर्व का दिन है। अथर्ववेद में सिनीवाली को विष्णु पत्नी के रूप में भी लिया है ।

1- वैदिक धर्म और दर्शन- बेरीडेल कीथ अनुवादक- सूर्यकान्त ।

2- वैदिक धर्म और दर्शन- बेरीडेल, कीथ अनुवादक- सूर्यकान्त ।

पुरंधि -

प्रज्ञा, बुद्धि, अन्तश्चक्षु, अन्तर्दृष्टि, वाक् रूप या सौन्दर्य आदि का वाची "पुरंधि" धीरे-धीरे स्पृहणीय वस्तुओं के अन्तर्गत एक नवधारी देवी का रूप ग्रहण करती है । जिसकी आकांक्षा हर सामाजिक प्राणी को होती है । यह समृद्धि की देवता कही गयी है और ऋग्वेद में प्रायः नौ बार नाम आया है इसका प्रायः सदैव भग के साथ तथा कभी कभी पूषन सविता और एक बार विष्णु और अग्नि के साथ भी उल्लेख मिलता है । हिलेब्रान्ट के अनुसार- पुरंधि क्रियाशीलता की देवी है ।

धिषणा -

ब्राह्मण ग्रन्थों में धिषणा शब्द का प्रयोग यज्ञीय प्रक्रिया के अन्तर्गत हुआ है यज्ञीय प्रक्रिया में वे वस्तुये भी धिषणा देवी के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है जिनके माध्यम से सबके धारक सोम का अभिषव किया जाता है । इसका ऋग्वेद मे एक दर्जन बार उल्लेख प्राप्त होता है । यह प्रचुरता का देवता कहा गया है । ऋ० के द्वितीय मण्डल में इडा का अग्नि सूक्त में उल्लेख है ।

इडा -

यजुर्वेद संहिता में तिस्रो देवी, के अन्तर्गत सरस्वती, भारती के साथ इडा का यज्ञ में आह्वान किया गया है । अथर्व वेद संहिता में मात्र एक सूक्त इडा को सम्बोधित है ब्राह्मणों ग्रंथों तक आते-आते इडा का तादात्म्य बहुधा पशुओं से दृष्टिगत होता है ।

इस प्रकार इडा के अनेक रूप प्रगट होते हैं। इन्हीं अनेक रूपों का देवीकरण ही इड़ा को एक देवी के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

श्री लक्ष्मी -

ऋग्वेद के दशम मण्डल के परिशिष्ट में "श्रीसूक्त" का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें 16 सूक्त श्री सूक्त शेष लक्ष्मी परक मंत्र हैं। जो जीवन का साधन तथा ऐश्वर्य है भारत की संस्कृति कृषि संस्कृति है, अतः लक्ष्मी शस्य की देवी अन्नपूर्णा तथा जीवन की सम्पन्नता है। यजुर्वेद वाजसनेयी में श्री और लक्ष्मी को पुरुष प्रजापति की पत्नी माना गया है[1]।

ऐश्वर्य प्रदान करने वाली, सर्वजनों में प्रिय लक्ष्मी देवी का उल्लेख अथर्ववेद में आता है। श्री सूक्त में लक्ष्मी के लिए हिरण्यवर्ण पद्म पद्मवर्णा, पद्म-मालिनी आदि विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं।

देवासुरों द्वारा समुद्र मन्थन के समय चन्द्रमा के बाद लक्ष्मी जी प्रकट हुई। इस अयोनिजा को विष्णु ने अर्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया। ब्रह्मा के पुत्र भृगु की कन्या के रूप में यही लक्ष्मी भूलोक में अवतीर्ण हुई, और इनका विवाह नारायण से हुआ। इस प्रकार विष्णु के प्रत्येक अवतार में लक्ष्मी उनके साथ आयी हैं। वामनावतार में कमलोद्भवा लक्ष्मी, कृष्णावतार में रुक्मणी और रामावतार में सीता हुयीं। लक्ष्मी की अर्चना द्विभुज और चतुर्भुज में भी होती है। द्विभुजों में वे अपना बायाँ हाथ कटि प्रदेश में या श्री फलयुक्त है और दाहिने में

1- यजुर्वेद वा0सं0 -31-22

कमल लिये हैं । किन्तु चतुर्भुज वैष्णवी शक्ति के रूप में शंख, चक्र, पद्म, तथा चौथा हाथ अभयमुद्रा में है ।

लक्ष्मी के पद्म स्थित रूप में एक अत्यन्त लोकप्रिय रूप गजलक्ष्मी का है जिसे प्रायः श्री कहा गया है जो वस्तुतः राज्य श्री रूप है । इस भव्य रूप में देवी को दो गजों द्वारा अभिषिक्त पद्मासीना, श्रीफल हस्ताएवं पद्मा-धारिणी कहा गया है[1] ।

श्रीः -

एक दूसरी प्रधान देवी श्री है । जिनकी लोक में सर्वाधिक प्रतिष्ठा है किन्तु जो साहित्य में बहुत देर बाद उभरती है । उनका साहित्यिक उल्लेख सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में आया है । बौद्ध कला के आरम्भिक नमूनों में प्राप्य उनके प्रतिरूपों से ज्ञात होता है कि वे भक्तों की दृष्टि में सही अर्थों में विग्रहवान देवी थी, भले ही भाषाकृति में उनका उद्गम संदिग्ध नही है । किंतु सम्भवतः वे पृथ्वी देवी में समाहित हो गयी थी, जिनका भूमि के रूप में सूत्रों में बहुलता से उल्लेख हुआ है । श्री सूत्र साहित्य में आती है । जहाँ विश्वेदेव सम्बन्धी आहुति के प्रसङ्ग में विधान किया गया है कि बिस्तर के छोर पर श्री पद को पाद पर भद्रकाली को और शौचकूप में सर्वान्न भूति को आहुति देनी चाहिए । भद्रकाली शिव की भयंकर पत्नी काली हैं और उनकी कल्पना हमें वैदिक विचार-धारा के अवसान-काल में ले आती है । क्योंकि काली का उल्लेख किसी भी वैदिक ग्रंथ में

1- वासुदेवशरण अग्रवाल- भारतीय कला पृ० 56.

नहीं मिलता । शेष दोनों देवी श्री और संवन्निभूति के क्षेत्र यद्यपि नियत किये गये हैं, तथापि उन्हें मूलतः भावाकृति से भिन्न नहीं माना जा सकता[1] क्योंकि श्री के लिए निर्दिष्ट आहुतियों की एक सूची में हुआ है वेदोत्तरकालीन देवशास्त्र में श्री अथवा लक्ष्मी विष्णु की पत्नी है, किन्तु वेद के अन्तिम भाग को छोड़कर अन्यत्र ये कल्पनाएं नहीं मिलती है[2] ।

श्री: वैदिक साहित्य में श्री का स्वरूप

इन्द्राणि 10•86•12

वेद में देवताओं के अतिरिक्त देवियों यथा इड़ा, अदिति, वाक्, सरस्वती इन्द्राणी[3], वरुणानी[4] आदि की संख्या भी प्रचुर मात्रा में पायी जाती है । इसी मातृ शक्ति की उपासना की श्रृंखला में "श्री" जो कि भाव का सूचक शब्द है । देवी विशेष का परिचय कराने में समर्थ है, किन्तु ऋ0 के प्रसंगों में यह परिचय अब तक अधिक स्पष्ट नहीं हो सका है ।

ऋ0 में श्रियं, श्रिये, श्रिया, श्रियाः, अभि श्री, सुश्राय, श्रीः, श्रीणाम् आदि समस्त प्रयोग "श्री" के ही बोधक हैं । ऋ0 के विभिन्न मंत्रों में "श्री" शब्द से अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति हुई है, इन अभिव्यक्त अर्थों में श्री शब्द भाग्य, सम्पदा,

---

1- इस प्रकार पार गृ सू0 17, 13 एवं आगे; गो गृ सू0 2•27 ।
2- इस प्रकार भारद्वाज जैसा सूत्र ग्रन्थ दोनों को अनुल्लिखित छोड़ देता है ।
3- वाज सं0 -31-22
4- तै0 3•5•12•1.

ऐश्वर्य, शोभा, समृद्धि श्रेष्ठता आदि का वाची है ।

ऋ0 में श्री शब्द अपने विभिन्न रूपों के साथ लगभग 85 बार प्रयुक्त हुआ है, सबसे अधिक प्रथम मण्डल में तथा सबसे कम नवम् मण्डल में इसका उल्लेख हुआ है ।

ऋग्वेदीय "श्री" शब्द किसी देवी का द्योतक नहीं है, केवल वाजसनेयि संहिता में श्री: तथा लक्ष्मी को भाष्यकार के अनुसार आदित्य की दो पत्नियाँ कहा गया है -

"श्रीश्च लक्ष्मीश्च ते पत्न्यौ अहोरात्रे पार्श्वे----"।

किन्तु यहाँ पर भी मानवीकरण अत्यधिक स्पष्ट नहीं है "श्री" स्पृहणीय स्थिति अथवा वस्तु का सूचक है जिसकी आकांक्षा प्रत्येक सामाजिक प्राणी के साथ-साथ देवों को भी होता है वैदिक देव तथा देवियाँ श्रीयुक्त हैं । वैदिक देव अग्नि "वर्षा के मेघों की विद्युत" तुल्य श्वेत व कृष्ण वर्ण की ज्वालाओं के रूप में श्री को धारण करते हैं -

"तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युत------"[1]

अग्नि समस्त प्रकार की श्री को धारण करने के साथ ही साथ,

"विश्वा अधि श्रियो दधे ----"[2]

देवताओं में अकेले ही समस्त श्री को स्थापित करता है[3]। यह श्री अमृत्व की

1- ऋ0 10•91•5

2- ऋ0 2•8•5

3- ऋ0 8•102•9

प्रापक है इससे देवगण अमृतत्व को प्राप्त करते हैं[1] । जहाँ अग्नि देवताओं में श्री को स्थापित करता है वहा देवगणों ने भी अग्नि में "सुश्री" को स्थापित किया-

"इह सुश्रिय दधु ----------"[2]

यहाँ अग्नि घर की भी शोभा है श्री के लिए अग्नि सुबह और शाम घरों में प्रज्वलित की जाती है[3] तथा प्रज्वलित होने के बाद अग्नि की शोभा हर गृह में दिखाई देती है -

"सदर्शिश्रीरतिथिर्गृहेगृहे ---------"[4]

इस प्रकार अग्नि को श्री का उद्गमपिता कहा गया है - "श्रीणामुदारो--"[5] तथा उसके श्री की वन्दना की जाती है -

"अग्ने वन्दे तव श्रियम् ------"[6]

सप्त संख्यक मरुद्गण् सप्त आयुधों, आभरणों के साथ सम्पूर्ण श्री को धारण करते हैं[7] । यह श्री उनके शरीर पर धारित होती है -

"श्रीरधि तनुषु पिपिशे -------"[8] ।

1- ऋ0 - 5•3•4

2- ऋ0 - 3•3•5

3- ऋ0 - 2•8•3

4- ऋ0 - 10•91•2

5- ऋ0 - 10•45•5

6- ऋ0 - 5•28•4

7- ऋ0 - 8•28•5

8- ऋ0 - 5•57•6

मरुद्गण अपने शरीर की शोभा के लिए आभरणों को धारण करते हैं -

"श्रिये मर्यासो अञ्जीर कृण्वत-------"[1]

साथ ही अलंकरणों के द्वारा भी वे अपने शरीर को श्रीयुक्त करते हैं।[2]
मरुद्गणों की सेनाओं के मुख पर जो श्री । जय सम्पदा । होती है वह मरुद्गणों का ही होती है।[3]

सोम से सम्बन्धित स्थलों में मात्र एक जगह श्री का प्रयोग धन के विशेषण के रूप में हुआ है जहाँ यह कहा गया है कि सोम शोभन धन का प्रदाता है-

"सुश्रियं रयिम् ------।"[4]

सोम अपने स्तोताओं को श्री प्रदान करता है यह श्री अमरत्व की प्रापक होती है। वह सोम श्री । संपदा । के लिए प्रादुर्भूत होता है तथा स्तोताओं के लिए श्री तथा अन्न अथवा जीवन प्रदान करता है -

"श्रिये जातः,श्रिय आ निरियाय,श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति श्रियं वसाना अमृतत्वमयान् -------।"[5]

1- ऋ० - 10•77•2

2- ऋ० - 8•7•25

3- ऋ० - 8•20•12

4- ऋ० - 9•43•4

5- ऋ० - 9•94•4

सोम से प्रार्थना की गई है कि वह श्री को प्रदान करे -

"अस्मे सोम श्रियमधि निधेहि ------"[1]

सोम की शोभा यज्ञ के द्वारा ही होती है । इसलिए श्री के लिए यज्ञ द्वारा उसे अलंकृत करते हैं -

"यज्ञैः परिभूषतश्रिये ---------"[2]

इन्द्र देव भी अपनी शक्ति रूपा श्री को प्रदर्शित करने के लिए दोनों हाथों में वज्र धारण करते हैं ।[3] इसके अतिरिक्त शारीरिक शोभा के लिए उर्ण को धारण करते हैं -

"श्रिये परूष्णीमुषमाण अर्णा------"[4]

एक अन्य स्थल में "क्षत्रश्री" शब्द का उल्लेख हुआ है जिसके भाष्य में सायण ने उसे क्षत्रश्री, नामक राजा कहा है जो प्रतर्दन का पुत्र है तथा शत्रुओं के वध के लिए श्रेष्ठ है ।[5] यहाँ सम्भवतः "क्षत्रश्री" शब्द "शासन शक्ति की श्री" अर्थ का ही द्योतक है ।

ऋग्वैदिक देवी उषा की छटा तथा तेज ने श्री के उस रूप को जन्म दिया है जो शोभा या सुन्दरता का परिचायक है । उषा देवी जगत् की शोभा के लिए प्रकाशित होती है ।[6] इसके साथ ही उषा सूर्य की श्री के द्वारा ही सुदृशी है-

---

1- ऋ0 1•43•7•

2- ऋ0 9•104•1

3- ऋ0 1•81•4

4- ऋ0 4•22•2

5- ऋ0 6•26•8

6- ऋ0 6•64•1

"सूर्यस्य श्रिया सुदृशी ---------[1]

सूर्य पुत्री उषा अपनी शोभा को प्रदर्शित करनेके लिए रथ पर आरूढ़ होती है ।

"अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्यरथं तस्थौ ------[2]

अश्विनो के रथ को सूर्या अपने श्री के साथ वरण करती है ।[3] तब अश्विनो भी श्रीयुक्त हो जाते हैं[4] श्री से युक्त शरीर से ही अश्विनो देदीप्यमान होते हैं -

"श्रिया तन्वा शुभाना -----[5]

अश्विनो के इस श्री को उषा वरण करती है -

"युवोः श्रियं परि योषावृणीत ----------."[6]

अश्विनो का पथ श्रीयुक्त है जिसका अनुगमन उषा करती है ।[7] अश्विनो सम्पूर्ण श्री से युक्त है । इसीलिए उनसे सुश्री(शोभन सम्पदा) के लिए प्रार्थना की गई है कि "हे अश्विनो हमें शोभन सम्पदा से युक्त करो "-

"कृत नः सुश्रियो नेत्मा:--------------"[8]

1- ऋ0 -1•122•2

2- ऋ0 - 6•63•5

3- ऋ0 - 1•117•13

4- ऋ0 - 1•116•17

5- ऋ0•- 7•72•1

6- ऋ0 - 7•69•4

7- ऋ0 - 1•46•14

8- ऋ0 - 8•8•17

वैदिक देव मित्रावरुण भी श्रीयुक्त है "मित्रावरुणयोरभिश्रा:"[1]
द्यावापृथिवी प्राणियों के अभिश्री -

"भुवनानामभिश्रियः --------"[2]

तथा वायुदेव स्ववाहनों के अभिश्री है -

"नियुतामभिश्रा:----------"[3]

रात्रि देवी भी सम्पूर्ण श्री से युक्त है प्रकाशमान नक्षत्रों से ही उनकी शोभा है ।[4] अन्य वैदिक देवियाँ भी श्रीयुक्त है तथा उनसे (भारती, इडा, सरस्वती) यह प्रार्थना की गई है कि वे श्री (सौभाग्य) को प्रेरक बनें । 37 देवपूजन भी श्री के प्रदाता है ।[5] देवगण अध्वरों के अभिश्री है -

"अध्वराणामभिश्रियः ----------"[6]

देवताओं तथा मानवों के अतिरिक्त गो भी श्रीयुक्त है । गायों की श्री उसकी श्री है[7] पृश्निवर्णा गो श्री (समृद्धि, श्रयण) के लिए होती है[8] तथा गो का दुग्ध

1- ऋ0 - 10·130·5

2- ऋ0 - 8·70·1

3- ऋ0 - 7·91·3

4- ऋ0 - 10·127·1

5- ऋ0 - 1·188·8

6- ऋ0 - 48·19

7- ऋ0 - 5·59·3

8- ऋ0 - 10·105·10

श्रीयुक्त होता है जिसको सोमरस में मिलाने से योग की शोभा बढ़ती है -

"श्रिये न गाव उप सोममस्थु -------"[1]

इस प्रकार श्री-युक्त गौ से भी प्रार्थना की गई है कि वह श्री के लिए होवे।[2]

उपरोक्त ऋग्वैदिक सन्दर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्री का अर्थ शोभा समृद्धि मात्र है। ऋग्वेद में इसका प्रयोग वैभव आदि के सामान्य अर्थ में ही वांछित है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के सीमित प्रसंगों में भी श्री शब्द का शोभा समृद्धि आदि अर्थ ही सुरक्षित है।

ऋग्वेद में "लक्ष्मी" शब्द केवल एक स्थान पर आया है। लक्ष्मी उस आशय में ऋग्वेद में नहीं मिलती जिसमें इसका बाद के पुराकथाशास्त्र में प्रयोग मिलता है, अर्थात् यह ऋग्वेद में सौभाग्य की देवी नहीं है फिर भी यह शब्द संभवतः वाक्सौष्ठव या भाग्य से मिलते जुलते आशय में ही प्रयुक्त हुआ है -

"भद्रा एषां लक्ष्मी निहिता अधि वाचि ------"[3]

अथर्ववेद में हमें एक सूक्त के चार मंत्रों में अनेक लक्ष्मियों कुछ लाभप्रद हानिप्रद का उल्लेख मिलता है यथा-

"हे पाप देवि। इस प्रदेश से प्रस्थान कर सुदूर देश में जा। (प्र पतेतः पापि लक्ष्मि।"[4] मनुष्य के जन्म के साथ एक सौ एक लक्ष्मी उत्पन्न

1- ऋ0- 4·81·8

2- ऋ0 - 10·105·10

3- ऋ0 - 10-71-2

4- अथर्व-वे0 7·115·1

होती है । उनमें से जो पापपूर्ण है उन्हें हम दूर करते हैं हे अग्ने । कल्याणमयी लक्ष्मियों को हममें स्थापित करो ।" { एक शतं लक्ष्म्यों मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाता: ।"[1]

वैदिक खिल सूक्तों के अन्तर्गत श्री सूक्त में श्री: और लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता । श्री सूक्त के देवता का निरूपण करते हुए कहा है कि सबके आधार रूप में स्थित विष्णु पत्नी सर्वसामर्थ्यसम्पन्ना ही इसकी देवता है-

"देवता सकलाधारा विष्णुपत्न्यहमीश्वरी-----[2]

अत: यह निश्चित है कि श्री सूक्तोक्त श्री लक्ष्मी है श्री सूक्त में लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन वस्तुत: नामों के माध्यम से किया गया है । इनकी संख्या 50 है । श्री-सूक्त में श्री का आह्वान जातवेदस अग्नि के माध्यम से किया गया है ।

संहिताओं के अनन्तर श्री अधिक स्पष्ट रूप में मूर्त होकर शतपथ ब्राह्मण में आती है । शतपथ-ब्राह्मण में भी अनेक स्थानों में प्रयुक्त यह श्री शब्द भाववाचक-संज्ञा में रूप में[3] किसी नवीन अर्थ का वाचक नहीं है । शतपथ ब्राह्मण में ही कहीं प्राणों को 'श्री' बतलाया गया है -

"अथ यत्प्राणा अश्रयन्त तस्मात्प्राणा: श्रिय:-----[4]

1- अथर्व0 7•115•3

2- खिल सूक्त - 50-2।

3- शत0 ब्रा0 2•1•4•9, 4•1•3•9; 10•1•4•14•11

4- शत0 ब्रा0 6•1•14•

तथा कहीं स्वर को --------" श्रीवेश्वर: ------------"[1]

एक अन्य स्थल पर रात्रि को ही कहा गया है - "रात्रिदेव श्रियाम्-------[2]

क्योंकि सभी प्राणी रात्रि में ही सुखपूर्वक रहते हैं । शतपथ-ब्राह्मण में ही श्री का मनोरम मानवीकरण प्राप्त होता है । शतपथ के आख्यान के अनुसार प्रजापति की साधना की मूल श्रुति के रूप में श्री उनके अन्तस से निकलकर स्वर्गिक, सौन्दर्यमयी और ओजोमयी देवी बनकर सामने उपस्थित हुई -

"प्रजापतिर्वै प्रजा: सृजमानोऽतप्यत् । तस्माच्छ्रान्तात्तेपानाच्छ्री -

रुदक्रामत् सा दीप्यमाना भ्राजमाना लेलायन्त्यतिष्ठत् । "[3]

शतपथ ब्राह्मण[4] में श्री की प्रजापति से उस समय उत्पत्ति हुई बताई गई है जब वह प्राणियों के सृजन अथवा सृष्टि रचना के लिए घोर तप कर रहे थे । प्रजापति के सृष्टि रचना से श्रान्त होने पर उनके शरीर से श्री उत्पन्न हुई, देदीप्यमान शरीर वाली वह कान्तिमती सुन्दरी भय से कांपती हुई खड़ी थी तभी देवों ने इसे देखकर इसके प्रति ईर्ष्या करते हुए प्रजापति से इसका वध कर उसके ऐश्वर्य को लेने की अनुमति मांगी । प्रजापति ने कहा कि पुरुष सामान्यतया स्त्री वध नहीं करते । अत: वे इसका वध किये बिना ही इसके ऐश्वर्य को ले सकते हैं । फलस्वरूप अग्नि में इससे खाद्यान्न, सोम ने राज्याधिकार, वरुण ने सम्राटत्व, मित्र ने युद्धात्मक

1- शत० ब्रा० - 11·4·2·10

2- शत० ब्रा० - 10·2·6·10

3- शत० ब्रा० - 21·4·3·1

4- शत० ब्रा० - 11·2·4·3·1

शक्ति, इन्द्र ने बल, बृहस्पति ने पुरोहितीय वैभव, सविता ने राष्ट्र, पूषा ने वैभव सरस्वती ने पुष्टि, और त्वष्टा ने रूपों को लिया । तब श्री ने प्रजापति से शिकायत की कि देवताओं ने उससे ये सभी वस्तुयें ले ली है तब प्रजापति ने उससे कहा कि यज्ञ द्वारा वह ये सब वस्तुएं पुनः प्राप्त कर सकती हैं -

"यज्ञेन एनान् पुनर् याचस्व -------"।

उपरोक्त आख्यान से स्पष्ट होता है कि श्री सभी प्रकार की विभूतियों के सम्मिलित तत्व का मानवीकरण थी और यहाँ हमें उसके परवर्ती रूप की झलक अवश्य प्राप्त हो जाती है ।

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम यह सकते हैं कि वैदिक श्रीः का स्वरूप भावात्मक अधिक है और संभवतः उनके स्वरूप का कोई भौतिक आधार नहीं है ।

श्री के विभिन्न रूप (समाज में)

भारतीय विचार धारा में जीवित व्यक्ति के वाचक नाम के साथ श्री इसलिए जोड़ते हैं, क्योंकि नाभि या वाच्य पञ्चभूत शरीर जीवनकाल में ही शोभा से युक्त माना जाता है, या स्मरण किया जाता है, या अनुभव किया जाता है ।

"श्री" का स्मरण एक व्यापक देश का स्मरण है, पूरे देश की कमलगन्ध का स्मरण है । जब मनुष्य ने सूर्योदय का परिणाम देखा, सहस्रदल कमल खिले देखें, उषा की नव परिणीता जैसी लजीली अरुणाई देखी वा गा उठा-

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे, ।

"श्री" का स्मरण इस उदार रमणीया पृथ्वी का स्मरण है। समुद्र वसना पृथिवी का स्मरण है । कमल की उत्फुल्लता की आमोदपूर्ण आनन्द और सूर्य के नए प्रकाश का चैतन्योदय दोनों को जोड़ने वाली अस्ति-सत्ता है -श्री । सबसे प्राचीनतम मूर्ति मिट्टी में या सोने में जो मिलती है, वह इसी श्री की है, श्री और पृथिवी अविभक्त है । आज भी जो पृथिवी की वंदना प्रातः शय्या के पश्चात् की जाती है-

"समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले

विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।"

हे विष्णु पत्नी देवि (भूमि) । समुद्र में वास करने वाली, पर्वतरूपी स्तन धारिणी मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, मेरे पाद-चालन अपराध को क्षमा करें ।

वह श्री (लक्ष्मी) और पृथिवी के अद्वैत का संकेत करता है । लक्ष्मी की साकारता बाद में अधिक उभरी, पर वह कमलवदना बनी रही, पृथिवी से उसका सम्बन्ध इस कमल के सूत्र से बना रहा । आज भी बालि-द्वीप में धान की फसल तैयार होने पर कृतज्ञता-ज्ञापन का उत्सव धूम-धाम से मनाया जाता है, इसे देवी "श्री" की पूजा का उत्सव कहते हैं । यह शरद-वसन्त दोनों ऋतु में मनाया जाता है । वैसे जब धान रोपा जाता है तब भी देवी "श्री" की पूजा होती है । यह पूजा क्या एक अद्भुत छन्द है, कुमारी कन्याएँ नहा धोकर, पुष्पों से सजकर देवी श्री" को चढ़ाने के लिए फूल की डाली लिए, वाद्य-वृंद बजाने वाले पुरुष, आदि सभी लोग एक साथ मिलकर जुलूस में खेत तक जाते हैं । नृत्य गीत के साथ पूजन शुरू हो जाता है । वस्तुतः देवी "श्री" की साक्षात् आकृति तो फली-फूली फसल है।

वहाँ भी यह देवी श्री विष्णुपत्नी है इसलिए माना जाता है यह रत्नगर्भा-वसुन्धरा से निकली हुई देवी है । पूजा के समस्त द्रव्य गाँव-घर की उपज ही थे ।

"श्री" की अपांग धवल दृष्टि उतनी सुन्दर नहीं दिखती, जितनी है। कमल-मूल को ही देखें, कितना मटमैला, कितना रंगहीन और कितना अनाकर्षक दिखता है, पर उसके भीतर एक ऐसा जीवन-सूत्र है जो कमल बनकर खिल उठता है ।

"श्री" की उपासना का अर्थ खेतिहर हिन्दुस्तान के लिए कर्मप्रधान जीवन का वरण था कष्ट और त्याग का वरण था । किसी भी ऐसे सुख के लिए उल्लास के लिए मंगल के लिए जो केवल अपना न हो सबका हो । खेती देखने में एकदम भौतिक व्यापार है " खेती करने वाला विधाता है, स्रष्टा है, विश्व-मंगल का विश्व शोभा का, इसलिए वह परिश्रम करता है । वह अपने गोधन की पूजा करता है, क्योंकि वह उसे अपने कर्मफल में साझादार मानता है ।

"श्री" इसीलिए सौष्ठव की देवी हं वह पानी वाली देवी है, जल सभी भारतीय संस्कृति में विशेष रूप से अव्यक्त आत्म-विस्तार का प्रतीक माना जाता है । जल से उद्भूत होने के कारण श्री-देवी आत्म-विस्तार की दुर्दम्य आकांक्षा है । श्री "एकोऽहं बहुस्याम्" की इच्छा का उद्भेद है । वह विष्णु की प्रिया है । विष्णु व्यापनशील सूर्य देवता है, वह तीन पग में समस्त लोक नाप लेते हैं, वह हाथ पसार कर सबसे सबका अभिमान लेने के लिए छोटे और बौने हो जाते हैं, और वह ही अछोर दिगन्त को आलोकित करने के लिए विराट बन जाते हैं । विष्णु-प्रिया होने के लिए श्री प्रकाशधर्मी है, विवेकपूर्ण आत्म-विस्तार की देवता है, आदमी आत्मा का सही अर्थ में विस्तार करे, दूसरे को पराभूत करके आत्म-विस्तार-अविवेक का मार्ग है । श्री विधा का मार्ग नहीं है ।

फैलाने के स्वभाव के कारण वह श्री है, वह शस्य के परिपाक को देखता है तो इसका एक ही अर्थ है वह नए बीजीकरण की भूमिका भी है, जीवन की निरंतरता, अखंडता और सामंजस्यता भी है ।

नवपरिणीता को घर की श्री के रूप में हम जानते हैं तो इसीलिए कि जैसे धान का पौधा नई दल-दल जमीन में रोपे जाने पर नमित होकर अपूर्व शोभा प्राप्त करता है, वैसे ही नारी भी परिणय-सूत्र में बंधकर अर्थात् विवाहिता होकर नवपरिणीता के रूप में एक अलग रूप में सौन्दर्य-भार से नमित होकर शोभायमान होती है । वह सृष्टि की वाहिका है । वह आत्मोत्सर्ग की ऐसी गहरी निष्ठा है, जो पुरुष शरीर में कभी पाई नहीं जा सकती है ।

"श्री" का निवास ऐसे परार्पित भाव में है, वह स्वयं विष्णु के लिए अर्जित है । विराट आलोक स्वरूप पुरुष के लिए वह अर्पित है । वह अपने इसी सौभाग्य के कारण सुन्दर है ।

विवाहित स्त्रियों के नाम से पहले "श्रीमती" शब्द का प्रयोग करते हैं । यहाँ पर "श्रीमती" का अर्थ है कि वह स्त्री विवाहित है । अविवाहित में स्त्री में श्रीमती शब्द का प्रयोग नहीं होता है अतः श्री शब्द का एक अर्थ है शोभा से युक्त । पुरुषों में "श्री" का प्रयोग सम्मान देने के लिए किया जाता है । जो प्राणी जीवित है उनके नाम के आगे "श्री" शब्द लगाते हैं, मृत प्राणी के नाम के आगे श्री शब्द का प्रयोग नहीं करते हैं ।

भारतीय परम्परा में स्त्रियों को लक्ष्मी के रूप में देखा जाता है । स्त्रियाँ स्वयं ही श्री युक्त हैं । इसलिए उनके नामों के आगे "श्री" नहीं लगाते हैं

मुख्यतया सौभाग्य या पूर्णता से युक्त स्त्री पति से युक्त होने पर "श्रीमती" उपाधि से विभूषित की जाती है। जैसे जड़ पदार्थ जो परार्थ या परार्पित होते हैं वे बिना चेतन स्वामी के अनाथ किम्वा निरर्थक माने जाते हैं किन्तु उनसे युक्त होने पर सार्थक सनाथ या पूर्णता अस्तित्व वाले माने जा सकते हैं। उसी प्रकार से स्त्री भी जो शक्ति की प्रतीक है वह भी पुरुष या शक्तिमान स्वामी के अभाव में सौभाग्य या पूर्णता से हीन मानी जाती है और उससे युक्त होने पर "श्रीमती" शब्द का प्रयोग होता है।

इस प्रकार की पूर्णता जो शक्ति और शक्तिमान् अथवा क्रिया और क्रियावान् अथवा जड़ और चेतन अथवा धन और धनवान के संघटन से सम्भव होती है। वह व्यक्ति जिसे सृष्टि का सार्थक इकाई माना गया है। भारतीय संस्कृति में जीव या ब्रह्म व्यष्टि या समष्टि की इस व्यक्ति किम्वा प्रकटन का स्वरूप या विशेषता ही व्यक्तित्व शब्द का मूल अर्थ है।

इस परिप्रेक्ष्य में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय संस्कृति में नारी शक्ति या स्त्री तत्व के अभाव में वैसे ही चेतन जीव या प्राणी को अपूर्ण या विपन्न और अकिन्चन या तुच्छ माना जाता है जैसे व्यवहारिक जगत में आदमी जिसके पास कएक फूटी कौडी भी न हो। इसलिए स्त्री का या लक्ष्मी का जिसको श्री के नाम से प्रधानतया जाना जाता है, का व्यापक और सार्वकालिक महत्त्व सहस्त्राब्दियों से स्थापित होता रहा है। श्री या स्त्री की पूजा किम्वा सत्कार स्वर्ग या सुख का एकमात्र आधार माना जाता है। इह लोक और परलोक ही नहीं आध्यात्मिक जगत् की सिद्धियाँ या चरम या परम पुरुषार्थ अर्थात् परमानन्द

या मोक्ष की प्राप्ति भी एकमात्र इस आदि शक्ति या श्री की उपासना या पूजा के द्वारा ही सम्भव है । इसीलिए तो सनातन या मानव धर्म नाम से प्रसिद्ध मनुस्मृति की व्यवस्था में या विधान के अन्तर्गत यह प्रतिपादित मिलता है कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" ।

ये भारतीय संस्कृति या ज्ञान या जीवन या परिचय या आचरण का जो उच्चतम या उत्तम मूल प्रासाद जिस आधार भूमि या नींव पर टिका हुआ है और आने वाले हजार वर्षों तक टिका रहेगा वह स्त्री ही है इसीलिए तो जब इस आदि-शक्ति के विभिन्न अनन्त मूर्तियों का या भावों का व्यवहारिक जगत में स्थूल उदाहरण देने की नितान्त आवश्यकता अनुभव हुई तब सुरभारती को मार्कण्डेय पुराण के शब्दों में यह कहना पड़ा है कि संसार की समस्त स्त्रियाँ भगवती का अङ्ग हैं अथवा भगवती की कला से युक्त हैं -

स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु ।

श्रीसूक्त का अन्य लक्ष्मी सूक्तों के साथ हम पंचम अध्याय में विस्तृत विवेचन करेंगे ।

लक्ष्मी यंत्र पूजन विधि
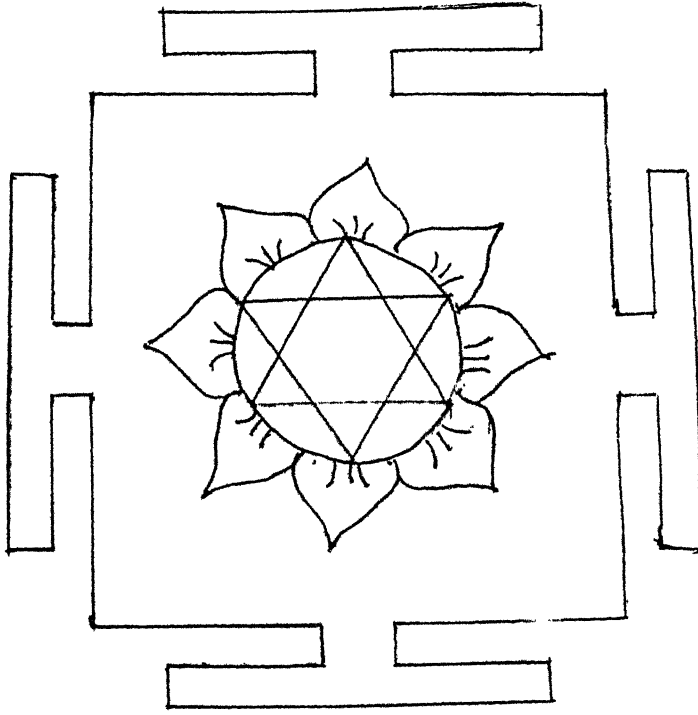
प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त होकर स्नान सन्ध्या कर्म समाप्त कर साधक पूजा गृह के द्वार पर स्थित द्वारपाल देवता से अनुमति प्राप्त कर पूजा गृह में प्रवेश करें। पश्चात् आसन पर विराजमान होने के पूर्व भूमिशोधन, आसन शोधन करने के पश्चात आसनस्थ हो पूर्वाभिमुख हो अपने शिर ब्रह्माण्ड में श्री गुरु का ध्यान करें। ध्यान करने के पश्चात् भूत अपसारण क्रिया सम्पन्न कर भूत शुद्धि करें। प्राणायाम करने के पश्चात अपने को और पूजा सामग्री को प्रोक्षित कर (शुद्धकर) मांगलिक श्लोकों का पाठ करें। पश्चात् इष्ट पूजन के लिए प्रधान संकल्प लेकर पूर्व कल्पित लक्ष्मी यन्त्र के पूजन हेतु अग्रसरित हो हाथ में रक्त वर्ण से रञ्जित चावल पुष्प लेकर दशों दिशाओं में पूर्वादि क्रम से "ओऽम् विभूत्यै नमः" ओऽम् उन्नत्यै नमः, कान्त्यै नमः, सृष्टयै नमः, कीर्त्यै नमः, सन्नत्यै नमः, वृष्ट्युष्ट्यै नमः, उत्कृष्टयै नमः, ऋद्ध्यै नमः,

पश्चात् कमलासनाय नमः कहकर बिखेरे । इसके पूर्व यन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द, शक्ति, बीज और कीलक का विनियोग कर न्यास कर लेवें । इसके पश्चात् ध्यान -

कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम् ।।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलाम्,
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ।। ।

ध्यान कर प्रधान देवता को आवाहित कर बिन्दु में कमलासन कर स्थापित करें । षोडशोपचार दशोपचार अथवा पंचोपचार अथवा यथा संकलित पूजा सामग्री से पूजन कर देवता से उसके परिवार्चन की अनुमति प्राप्त करना चाहिए । इस प्रकार प्रथम आवरण का पूजन सम्पन्न हो जाता है ।

अष्ट शक्तियाँ ब्राह्मी, इन्द्राणी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, लक्ष्मी कौमारी, महेश्वरी इनका पूजन करें, इनके पूजन के पश्चात् दूसरा आवरण समाप्त हो जाता है । तीसरे आवरण में केसरों के मध्य विभूतियादि पाठ देवियों का पूजन करना चाहिए । अब आगे आग्नेयी दिशा से श्रीहृदयाय नमः हृदि पीठं पूजयामि तर्पयामि इस प्रकार पूजन करते हुए सभी दिशाओं में ओऽम् वासुदेवाय नमः । श्री वासुदेवापीठं पूजयामि, तर्पयामि फिर संकर्षणाय नमः । श्री संकर्षण पीठंपूजयामि, तर्पयामि । श्री प्रद्युम्नाय नमः । श्री प्रद्युम्नाय पीठं पूजायामि, तर्पयामि । श्री अनिरुद्धाय नमः । श्री अनिरुद्ध पीठं पूजायामि, तर्पयामि ।

अब केसर के दलों में ओऽम् दमकाय नमः । श्रीदमक पीठं पूजयामि तर्पयामि । ओऽम सलिलाये नमः । श्री सलिल पीठं पूजयामि तर्पयामि । फिर ओऽम् गुग्गुलाय नमः । श्री गुग्गुल पीठं पूजयामि तर्पयामि । ओऽम् कुरण्टकाय नमः ।

श्री कुरण्टक पीठं पूजयामि तर्पयामि । इस प्रकार आवरण पूजा समाप्त करने के बाद देवी का दक्षिण भाग में ओऽम् शङ्खनिधये नमः । श्री शङ्खपीठं पूजयामि तर्पयामि ओऽम् वसुधाय नमः । श्री वसुधा पीठं पूजयामि,तर्पयामि । ओऽम् बाये पदम् निधये नमः । श्री पद्मनिधि पीठं पूजयामि तर्पयामि । ओऽम् वसुमत्ये नमः । ओऽम् वसुमति पीठं पूजयामि तर्पयामि कमल पत्रागत में पूर्वादिक्रम से ओऽम बाला-काय नमः । श्री बालाकापीठं पूजयामि, तर्पयामि । विमलाये नमः । श्री विमला पीठं पूजयामि तर्पयामि । श्री वन मालिका पीठं पूजयामि,तर्पयामि । ओऽम् विभीषिकाये नमः । श्री विभीषिकापीठं पूजयामि, तर्पयामि । तृतीयावरण पूजन के पश्चात् चतुर्थ आवरण का पूजन भूपुर के अंदर पूर्वादिक्रम से श्री इन्द्राय नमः । श्री इन्द्रपीठं पूज, तर्प रं आग्नेय नमः । श्री अग्निपीठं पूज0तर्प0 । यम यमाय नमः । श्री यमपीठं पूज0 तर्प0 । क्षां निऋते नमः । श्री नैऋति पीठं पूज0तर्प0 । ओऽम् वम वरुणाय नमः । श्री वरुण पीठं पूज0 तर्प0 । यं वायवे नमः । श्री वायुपीठं पूज0 तर्प0 । कुं कुबेराय नमः । श्री कुबेर पीठं पूज0 तर्प0 । ह्रां ईशानाय नमः । श्री ईशान पूज0 तर्प0 । आं ब्रह्मणे नमः श्री ब्रह्मपीठं पूज0 तर्प0। ह्रीं अन्नताये नमः। श्री अनन्त पीठं पूज0 तर्प0 । चतुर्थ आवरण पूजन समाप्त ।

पन्चम आवरण पूजन में पूर्वादिक्रम से वं वज्राय नमः । श्री वज्रपीठं पूज तर्प0 । शं शक्ति शक्तये नमः । श्री शक्ति पीठं पूज0 तर्प0 । दं दण्डाय नमः । श्री दण्ड पीठ पूज0 तर्प0 । खं खड्गाय नमः । श्रीखड्गपीठं पूज0 तर्प0 । पं0पाशाय नमः। श्री पाश पीठ पूज0 तर्प0 । अं अंकुशाय नमः । श्री अंकुशपीठं पूज0तर्प0 । गं गदाये नमः । श्री गदा पीठं पूज0तर्प0। शं शूलाये नमः । श्री शूल पीठं पूज0तर्प0 । पं0पद्मानाये नमः। श्री पद्म पीठं पूज0तर्प0 । चं चक्राये नमः । श्री चक्र पीठं पूज0तर्प0। इस प्रकार पन्चम आवरण पूजन करने के पश्चात् पूजन फल देवी को समर्पित करें ।

धूप दीप, नैवेद्य से पंचोपचार पूजन कर यथा सम्भव मन्त्र जप करे । फिर देवता का विसर्जन करना चाहिए ।

श्री और विष्णु का सम्बन्ध -

श्री सूक्त में लक्ष्मी और विष्णु की एकता के बहुत स्पष्ट सूत्र नहीं मिलते । हाँ लक्ष्मीतंत्र में अवश्य इस सम्बन्ध को विभिन्न प्रतीकों, आख्यानों, और सन्दर्भों के माध्यम से पुष्ट करने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है । पौराणिक युग में भी विष्णु-लक्ष्मी की एकता के साथ ही कुछ पृथकता भी बनी रही । श्री केदार ने भी साम्प्रदायिक साहित्य के सन्दर्भ में इस प्रकार का संकेत दिया है ।

विराट पुरुष और श्री का सम्बन्ध -

पुरुष सूक्त में जिस विराट पुरुष का प्रतिपादन है , श्री सूक्त में संस्तुत श्री का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है । लक्ष्मी तंत्र में कहा गया है - (लक्ष्मीतन्त्र 36·72·4 कि पुरुष का अभिप्राय दृष्टि से है - इसलिए पुरुष सूक्त और श्री सूक्त की रचना समकालीन है ।

अन्य वेदों के श्री सूक्त -

विष्णु धर्मोत्तरगत (2·12·8·2·6) एक वचन के अनुसार प्रस्तुत श्री सूक्त का सम्बन्ध ऋग्वेद से है यजुर्वेद (तै०ब्रा० 2·27) सामवेद एवं अथर्ववेद के सूक्त अन्य हैं । इस सम्बन्ध में यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि उक्त तथा कल्पित श्री सूक्तों में "श्री" शब्द का उल्लेख आज है । वस्तुतः उनसे लक्ष्मी के स्वरूप पर

कोई प्रकाश नहीं पड़ता । अग्निपुराणगत श्रीसूक्त का भी प्राकरणिक श्रीसूक्त का भी प्राकरणिक श्रीसूक्त से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

लक्ष्मी गणेश का सम्बन्ध -

दीपावली को लक्ष्मी गणेश का पूजन किया जाता है । लक्ष्मी तथा गणेश भी ऐसे ही देव प्रतीक हैं, जो आदिम युग से आधुनिक युग तक की हमारी संस्कृति कथा कहते हैं ।

श्री और विष्णु का सम्बन्ध -

भगवान का कभी न साथ छोड़ने वाली जगज्जननी लक्ष्मी जी नित्य है और जिस प्रकार श्री विष्णु भगवान सर्व-व्यापक हैं वैसे ये भी हैं ।

विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मी जी वाणी हैं, हरि न्याय तो ये नीति, भगवान विष्णु बोध हैं तो ये बुद्धि तथा वे धर्म हैं तो लक्ष्मी जी सत्क्रिया । भगवान् जगत् के स्रष्टा हैं तो लक्ष्मी जी सृष्टि; श्री हरि भूधर हैं तो लक्ष्मी जी भूमि; भगवान् सन्तोष हैं तो लक्ष्मी नित्य-तुष्टि । भगवान काम हैं तो लक्ष्मी जी इच्छा, वे यज्ञ हैं तो ये दक्षिणा ; श्री जनार्दन पुरोडाश है तो देवी लक्ष्मी जी आज्या(घृत) की आहुति ।[1]

1- इच्छा श्रीर्भगवान्कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम् ।
आज्याहुतिरसौ देवी पुरोडाशो जनार्दनः ।।

भगवान कुशा हैं तो लक्ष्मी जी समिधा । भगवान साम-स्वरूप हैं तो कमला देवी उद्गीति ; जगत्पति भगवान् वासुदेव अग्नि हैं तो लक्ष्मी जी स्वाहा । भगवान विष्णु शङ्कर हैं तो श्री लक्ष्मी जी गौरी । श्री विष्णु पितृ-गण हैं तो श्री कमला नित्य-पुष्टिदायिनी स्वधा ; विष्णु अति विस्तीर्ण सर्वात्मक आकाश हैं तो लक्ष्मी जी स्वर्ग लोक । भगवान् श्रीधर चन्द्रमा हैं तो लक्ष्मी जी अक्षय कान्ति; देवराज इन्द्र हैं तो लक्ष्मी इन्द्राणी । चक्र-पाणि भगवान् साक्षात् यम हैं तो श्री कमला यम-पत्नी -धमोर्णा । देवाधिदेव श्री विष्णु स्वयं कुबेर हैं तो लक्ष्मी जी साक्षात् ऋद्धि । श्री हरि देव-सेनापति स्वामी कार्तिकेय हैं तो श्री लक्ष्मी जी देव सेना । भगवान् गदाधर {शक्ति} के आधार हैं तो लक्ष्मी जी शक्ति भगवान् निमेष तो लक्ष्मी जी काष्ठा हैं; सर्वेश्वर सर्व-रूप श्री हरि दीपक हैं तो श्री लक्ष्मी जी ज्योति । श्री विष्णु वृक्ष रूप हैं तो जगन्माता श्री लक्ष्मी जी लता । श्री विष्णु दिन हैं तो लक्ष्मी जी रात्रि । श्री हरि वर हैं तो पद्म-निवासियों श्री लक्ष्मी जी वधू । कमल नयन भगवान् ध्वजा हैं तो कमलालया लक्ष्मी जी पताका? संक्षेप में यह कहना चाहिये कि देव, तिर्यक और मनुष्य आदि में पुरुषवाची तत्त्व श्री हरि हैं और स्त्री-वाची तत्त्व श्री लक्ष्मी, इनके परे और कोई नहीं हैं ।

लक्ष्मी-नारायण का सम्बन्ध है । लक्ष्मी पूजा में लक्ष्मी नारायण की और कुबेर इन तीनों की पूजा का विधान है ।

विष्णु का तुलसी {वृन्दा}से सम्बन्ध -

तुलसी को लक्ष्मी का ही अवतार माना जाता है । ऐसी कथा

प्रचलित है -

जलन्धरा की पत्नी वृन्दा थे देवताओं से युद्ध कर रहा था । उसी समय विष्णु ने छद्म वेश धारण कर उनका सतीत्व नष्ट किया था । तब उन्होंने शाप दिया था कि तुम पत्थर हो जाओ तब विष्णु भगवान ने उनको वचन दिया था कि तुम्हारा सतीत्व नष्ट हो गया, इसलिए तुम हमेशा मेरे पास रहोगी इसलिए वृन्दा तुलसी का रूप धारण कर उनके ऊपर चढ़ी रहती है । विष्णु भगवान् शालिकग्राम के रूप में हो गये । लक्ष्मी जी तुलसी का रूप धारण करके उन्हीं के पास हमेशा रहती हैं ।

द्वितीय अध्याय

पुराणों में लक्ष्मी का स्वरूप ।

पुराणों में लक्ष्मी का स्वरूप

वैदिक स्वरूप का पौराणिक स्वरूप में परिवर्तन -

वैदिक वाङ्मय में लक्ष्मी देवता का जो स्वरूप वर्णित है उसी का और विस्तार में पूर्ण विवरण पुराणों में उपलब्ध है वेद में उल्लिखित देवता के स्वरूप में जो भिन्नताप्रतीत होती है वह वास्तव में बाह्य भिन्नता ही है और यह भिन्नता मात्र मध्य काल में देवता के विकसित रूप का ही द्योतक है ।

पुराणों में इनका रौद्र रूप, सौम्य और ममतामयी रूप प्राप्त होता है ।

वेदों में धन, समृद्धि, ऐश्वर्य और कहीं-कहीं सुन्दरता के रूप में वर्णन प्राप्त होता है ।

वेद के सदृश ही पुराणों में भी लक्ष्मी के कुछ स्वरूप वर्णित हैं । पौराणिक दृष्टि के तीन प्रकार हैं -

1- आध्यात्मिक रूप

2- आधिभौतिक रूप

3- आधिदैविक रूप

1- आध्यात्मिक रूप -

बुद्धि तथा वायु को स्फुरित अथवा प्रेरित करने वाली तथा उनकी वर्धक देवता-धन-धान्य प्रसिद्धि, समृद्धि, ऐश्वर्य, कामनाओं को पूर्ण करने वाली देवता के रूप में इनका आध्यात्मिक रूप प्रकट होता है । यह दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ

स्पष्ट और अधिक सूक्ष्मदर्शी है इसकी परिकल्पना यह है कि जगत् के भिन्न-भिन्न भौतिक संघातों में जो भिन्न-भिन्न अधिदेव हैं -चेतन तत्त्व है, वे एक ही देव एक ही चेतन तत्त्व के अंश, प्रतिबिम्ब या आभास हैं। इन समस्त अधिदेवों-सम्पूर्ण चेतनांशों का एक ही केन्द्र है।

2- अधिभौतिक रूप -

अधिभौतिक दृष्टि वह है जो वस्तु के केवल बाह्य रूप को देखती है, जिसे प्रत्येक वस्तु के भीतर अवस्थित चेतन तत्त्व का दर्शन नहीं होता। उसके अनुसार सूर्य सचमुच तेज का एक गोलाकार पिण्डमात्र ही है। ऋषियों तथा कभी-कभी विष्णु और अन्य देवताओं द्वारा पूजित "लक्ष्मी देवता" के रूप में इनका भौतिक रूप स्पष्ट होता है।

3- अधिदैविक रूप -

अधिदैविक दृष्टि अधिभौतिक दृष्टि से भिन्न है। इसके अन्तर्गत देवियों के दैनिक कृत्य आते हैं। जिनमें सृजन-पालन-संहार निग्रह और अनुग्रह के तत्त्व संश्रृित रहते हैं। समय-समय पर यही स्वरूप कष्ट निवारणार्थ प्रकट होता है। देव-दानव-मानव सभी इस स्वरूप के आकांक्षी होते हैं।

पुराणों के अनुसार लक्ष्मी की उत्पत्ति -

लक्ष्मी के उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक विवरण प्राप्त होते हैं और वे सब विश्व सम्बन्धी अथवा मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रतीकात्मक लाक्षणिक

लोक कथाओं के रूप में है । इनमें से कुछ प्रमुख व्याख्यानों का उल्लेख निम्नवत् है-

ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्म खण्ड के अध्याय 32 में अनेक देवताओं की उत्पत्ति का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है, उसी प्रसंग में सरस्वती, महालक्ष्मी और दुर्गा त्रिदेवताओं की उत्पत्ति के बारे में भी कुछ प्रसङ्ग प्राप्त होता है । इसी प्रसङ्ग में इस पुराण का यह मत है कि लक्ष्मी की उत्पत्ति सृष्टि के आदि में परमात्मा कृष्ण की यह रास मण्डल में बामाङ्ग से उत्पन्न हुई थी ।[1]

ब्रह्मवैवर्त पुराण के ही अन्य स्थान पर तथा देवी भागवत् पुराण में लक्ष्मी की उत्पत्ति के लिए यह प्रसङ्ग उद्धृत है कि मूल प्रकृति दो रूपों में प्रकट हुई अर्थात् उसके वामाङ्गक से कमला और दक्षिणाङ्ग से राधा रूप हो गया ।[2] जो शुद्ध स्वरूपा है, उन्हीं को पद्मा कहते हैं वही सर्व सम्पत्तियों की अधिष्ठात्री है । वे सती महालक्ष्मी बैकुण्ठ में सदा पति सेवा परायणा रहती है । स्वर्ग में स्वर्ग लक्ष्मी और राजाओं की राजलक्ष्मी, मनुष्यों के गृहों में गृहलक्ष्मी, वहीं वे मनोहरा, कीर्तिरूपा और पुण्यवती है । दया-स्वरूपिणी भी वही है । उनके अभाव में ब्राह्मण भी मूक एवं मृतक तुल्य हो जाता है ।

1- श्रीकृष्णस्यात्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः ।
सावित्री यमसंवादे श्रुतं सुनिर्मलं यशः ।। 1 ।।

ब्रह्म वै०पु०अध्याय 32 पृ०सं०290

2- स्मितेन वाक्येनैव प्रेरणा वाऽनुनयेन च ।
तद्वामांसान्महालक्ष्मीर्दक्षिणांसाच्च राधिका ।। 9 ।।

देवी भा०पु०अध्याय 40-पृ०सं०689

ब्रह्मवैवर्त पुराण में ही अन्यत्र लक्ष्मी की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह वर्णित है कि वह सांख्य-सिद्धान्त को अपनाता है कि आत्मन् को शक्ति की मूल प्रकृति है आत्मन् आपने प्रारम्भिक अवस्था में स्थिर था किन्तु जब सृष्टि की उत्पत्ति की उसकी इच्छा हुई तब उसने अपने को दो भागों में बाँटा जिनमें से एक स्त्रीरूप व दूसरा पुरुष रूप था । यही स्त्री भाग प्रकृति था । श्रीकृष्ण की इच्छा से यह प्रकृति पाँच रूपों में बटी । जिनके नाम दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती व सावित्री थे । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लक्ष्मी को सृष्टि की रचना के समय उत्पन्न पाँच । प्रकृतियों मे से एक कह सकते हैं ।[1]

मत्स्य पुराण के ही दूसरे स्थान पर यह माना गया है लक्ष्मी को ब्रह्मा ने चार अन्य कन्याओं मरुत्वती, लक्ष्मी, साध्या और विश्वेशा के साथ जन्म दिया[2] यही विवरण पद्म पुराण में भी प्राप्त है[3] ।

वायु पुराण के मत के अनुसार-ब्रह्मा ने ध्यान लगाना प्रारम्भ किया और कोई निष्कर्ष न निकलता देख वे क्रोधित हुए उनके क्रोध से एक "पुरुष" की उत्पत्ति हुई वह सूर्य के सदृश कान्तिमान था तथा उसका आधा भाग पुरुष का व आधा भाग स्त्री का था । स्त्री भाग को दो भागों में बाँटा । पुरुष की अपेक्षा

1- गणेश जननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
सावित्री वैसृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ।।

ब्रह्म वै०पु० 2•2•1

2- मत्स्य पुराण- 20 अध्याय का 32-36

3- पद्मपुराण - 5 अध्याय का 37-79-80

स्त्री भाग अधिक विलक्षण था । उनका भी दायाँ भाग श्वेत व बायाँ भाग श्याम था । ब्रह्मा के कथनानुसार उनका श्वेत भाग स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती और गौरी इन रूपों में विभाजितहुआ । इस प्रकार इनमें से एक होने के कारण लक्ष्मी को प्रदर्शित करता है जो नारी रूप के श्वेत भाग से उत्पन्न हुई है।[1]

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार महाकाली ने एक युग्म को जन्म दिया जो स्त्री और पुरुष रूप में था । उन्हें प्रजनन के लिए सर्वप्रथम उन्होंने तीन अण्डे प्रदान किये, एक में से ब्रह्मा श्री के साथ उत्पन्न हुए, सरस्वती शिव के साथ और विष्णु अम्बिका के साथ उत्पन्न हुए । ये तीनों अण्डे मूलरूप में हिरण्यगर्भ प्रजापति के काल के प्रतीक हैं, और ये हिरण्यगर्भ प्रजापति भी स्त्रीशक्ति महाकाली के साथ सर्वोच्च शक्ति परमात्मन् के संयोग से उत्पन्न हुए थे । ये महालक्ष्मी सर्वोच्च देवी के रूप में सर्वोच्च शक्ति परमात्मन् के समानान्तर त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु महेश को जन्म देने वाली हैं । इसी प्रकार ये तीनों पौराणिक देवियाँ लक्ष्मी, सरस्वती और अम्बिका (दुर्गा) भी इसी सर्वोच्च शक्ति अर्थात् महालक्ष्मी से उत्पन्न कही जा सकती है[2] ।

1- वायु पुराण- 1·9·67 से 80 तक

2- इयमेव महालक्ष्मी ससृजाण्डत्रयं पुरा ।
परत्रयाणामावासं शक्तीनामिति सूणामपि ।
एकस्मादण्डतो जातावंबिकामुरुषोत्तमौ ।
त्रीविरिंचौ ततो न्यस्मादन्यास्माच्च गिराशिवौ ।
योजयामास मुकुन्देन महेश्वरौ ।
पार्वत्या परमेशानं सरस्वत्या पितामहम् ।

ब्रह्माण्ड पुराण-4·40·567 ।

इसी प्रकार का दूसरा उल्लेख दुर्गा सप्तशती में देवी महात्म्य के "प्राधानिक रहस्य" में भी प्राप्त होता है । ऐसा वर्णित है कि महालक्ष्मी ने तामसिक और सात्त्विक रूप धारण किया । उनके द्वारा धारण किया गया तामसिक रूप महाकाली और सात्त्विक रूप महासरस्वती कहलाया और राजसिक राय महालक्ष्मी तो था ही इन तीनों और राजसिक रूप महालक्ष्मी तो था ही । इन तीनों देवताओं महालक्ष्मी महाकाली और महासरस्वती की चार-चार भुजायें थी । प्रत्येक ने स्त्रीपुरुष के एक-एक युग्म उत्पन्न किये । महालक्ष्मी ने ब्रह्मा और श्री को महाकाली ने रुद्र और सरस्वती को तथा महासरस्वती ने विष्णु और उमा को जन्म दिया । महालक्ष्मी ने तब सरस्वती ब्रह्मा को,उमा रुद्र को और श्री वसुदेव को पत्नी के रूप में दी[1] ।

1- प्राधानिक रहस्य -{दुर्गा सप्तशती}

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी । {4पूर्व पंक्ति}
शून्य तदाखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी ।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेनहि ।। 7 ।।
महालक्ष्मी: स्वरूपमपरं नृप ।
सत्त्वाख्येनाति शुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ।। 14।।
अथोवाच महालक्ष्मी महाकाली सरस्वतीम् ।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपत: ।। 17 ।।
इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मी:ससर्ज मिथुनं स्वयं ।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ।। 18 ।।
ब्रह्मन-विधे विरिंचेतिधा धातरित्याह तं नरम् ।
श्री:पदमे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ।। 19।।
महाकाली-भारती च मिथुने सृजत: सह ।। 20 ।।{पूर्व पंक्ति}
नीलकंठ रक्तबाहु श्वेतांगं चन्द्रशेखरम् ।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितांस्त्रियम् ।। 21 ।।
स रुद्र: शङ्कर स्थाणु कपर्दी च त्रिलोचन: ।
त्रयी विद्या कामधेनु: सा स्त्रीभाषाक्षरा स्वरा।। 22 ।।
सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप ।
जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ।। 23 ।।
विष्णु: कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दन: ।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ।। 24 ।।

योगनिद्रां यदा विष्णु जगत्येकार्णवाकृते ।

आस्तीर्य शेषमभजत् कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।।

इस महामाया का आविर्भाव तब हुआ जब कल्पान्त में महाप्रलय के समय यह समस्त जगत् एक समुद्र के रूप में जलमय हो गया और उसमें भगवान् विष्णु शेष नाग के पर्यङ्क पर योग निद्रा में निद्रित हो गये ।

तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ।

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।।

भगवान् विष्णु के योगनिद्रा में निमग्न हो जाने पर दो भयानक विश्व विख्यात असुर जिन्हें मधु और कैटभ कहते हैं और जो भगवान विष्णु के ही कर्णमल अथवा कानों के खोंट में उत्पन्न माने जाते हैं, श्री विष्णु के ही नाभि कमल पर आसीन प्रजापति ब्रह्मा का वध करने पर उतारू हो गये ।

भगवान् विष्णु के नाभिकमल पर आसीन प्रजापति ब्रह्मा ने उन दोनों असुरों को उग्ररूप धारण किए देखा और जनार्दन श्री विष्णु को योगनिद्रामग्न देखा ।

ऐसा देखते हुए एकाग्रचित्त होकर ब्रह्मा ने श्री विष्णु भगवान् के नेत्रों में निवास करने वाली महामाया योगनिद्रा की स्तुति प्रारम्भ की, जिससे भगवान् की निद्रा टूटे और वे दोनों दैत्यों का वध कर सके ।

हे देवि आप जगन्मयी हैं, इस जगत् की उत्पत्ति में सृष्टि स्वरूपा, इस जगत् के पालन में स्थिति स्वरूपा और इस जगत् के संहार में संहृति स्वरूपा आप ही है ।

1- मार्कण्डेय पुराण- इक्कीसवां अध्याय ।

हे देवि ! आप महामाया है, क्योंकि आप ही "महाविद्या" अथवा प्रज्ञानघन ब्रह्म स्वरूपा है, आप ही "महाविद्या" अथवा अनिर्वचनीय अविद्या स्वरूपा है, आप ही "महाबुद्धि" है और आप ही "मह बुद्धि" है, आपही "महास्मृति" है और आप ही महाऽस्मृति है, आप ही "महामोहा" अथवा विश्वाहंकृति स्वरूपा है और आप ही "महाऽमोहा" परम-मोक्षलक्ष्मी स्वरूपा है - इस प्रकार आप सर्वैश्वर्यशालिनी हैं आप परमतेजोमयी है आप "महेश्वरी" अथवा सर्वव्यापिका है ।

प्रकृतिस्त्वञ्च सर्व्वस्य ----

हे देवि आप समस्त जगत् के लिए "प्रकृति" अथवा सत्व-रजस्-तमस् के गुणत्रय का विभाजन करने वाली "विकृति" है, आप समस्त जगत् का संहार करने वाली कालरात्रि है, आप प्रजापति ब्रह्मा के लिए महारात्रि है और आप ही दारुण मोहरात्रि है, जिसमें समस्त जीवमात्र अहंता, ममता की निद्रा में निमग्न रहता है ।

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।

लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।।

हे देवि ! आप ही "श्री" है क्योंकि समस्त विश्व और ब्रह्मा-विष्णु महेश रूप विश्वाधिपति आपके ही आश्रित है आप "ईश्वरी" है क्योंकि आप समस्त विश्वव्यापिनी है आप ही "ह्री" हैं; क्योंकि चराचर जगत् की आप ही प्राणरूपा है आप बुद्धि हैं क्योंकि समस्त वेदागम आपके ही रूप हैं और आप लज्जा है, पुष्टि है तुष्टि हैं, शान्ति है, और आप ही क्षान्ति भी है ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार देवगण चिरकाल में क्षीरोद सागर को चले गये थे । वहाँ मन्दर पर्वत को मन्थान बनाकर तथा कूर्म को भोजन और शेष को

मन्थन का पाश बनाकर उस सागर के मन्थन की क्रिया से उन्होंने खूब घर्षण किया था । उस समय में उन्होंने धन्वन्तरि अमृत अभीष्ट उच्चै श्रवा अश्व अनेक प्रकार के रत्न, हस्ति रत्न और लक्ष्मी के दर्शन प्राप्त किये थे[1]।

धर्म के वाम पार्श्व से एक कन्या का आविर्भाव हुआ । यह मूर्तिमती साक्षात् दूसरी कमला (लक्ष्मी) ही थी । इसके पश्चात् परमात्मा के मुख से एक शुक्लवर्ण वाली करों में वीणा और पुस्तक धारण किये हुए देवी प्रकट हुई ।

इसी तरह श्रीकृष्ण के विभिन्न अवयवों से महालक्ष्मी दुर्गा, सावित्री, कामदेव, रति, अग्नि, वरुण, वायु आदि देवी-देवगण हुए और सब उनकी स्तुति करके गोलोक की सभा में विराजमान हो गये । यह गोलोक "ब्रह्मवैवर्त" के मतानुसार नित्य है ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के[2] राधिकाख्यानम में कहा गया है । कि राधा के वामांश भाग से वह महालक्ष्मी हुई थी । वह शस्यों की अधिष्ठात्री देवी है । और वह गृह लक्ष्मी हुई थी । वह चार भुजा वाले देव की पत्नी थी जो कि वैकुंठ में निवास करती है । उसके अंश से राजलक्ष्मी हुई थी जो राज सम्पद् को प्रदान करने वाली थी ।

1- धन्वन्तरिञ्च पीयूषमुच्चैश्रवसमीप्सितम् ।
नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्म्याश्चदर्शनम् ।। 33 ।।
ब्रह्मवैवर्त महापुराण पृ०सं०-3 ।।

2- राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा ।
शस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीबभूव सा ।। 30 ।।

आयुध -

लक्ष्मी के आयुध निम्नवत् है - त्रिशूल, चक्र, गदा, धनुष बाण, कमल, कौस्तुभ मणि, पताका, शंख, पूर्णघट, तलवार, पाश, अंकुश, फरसा, धान्य, मुसल, शूल, घण्टा, हल, आदि।

वाहन -

लक्ष्मी का वाहन उलूक है जो अन्धकार का प्रतीक है। लक्ष्मी के कृपा होने पर सभी मदमस्त होकर निरङ्कुश और अमर्यादित हो जाते हैं, जिसके कारण शीघ्र ही पतित एवं निर्धन हो जाते हैं। इसी का द्योतक उलूक है जो कहता है कि लक्ष्मी (धन) के पीछे अन्धकार घनीभूत है जिसे मैं देखता हूँ (उलूक रात्रि में ही देख पाता है कि दिन में नहीं) यदि मेरा तरह से देखने की सामर्थ्य होगी तो लक्ष्मी स्थिर रहेंगी, अन्यथा दुर्दिन दूर नहीं।

लक्ष्मी को जल के ऊपर कमल के आसन पर आसीन रहने वाली कहा गया है और स्पन्दन उनका प्रिय पान है। कहीं कहीं पर वर्णन प्राप्त होता है कि शेष नाग शय्या पर विष्णु लेटे हैं, और लक्ष्मी जी उनके चरण दबाती हुई बताया गया है। देवी भागवत में ऐसा वर्णन मिलता है।

लक्ष्मी के वस्त्र और आभूषण -

लक्ष्मीलाल रंग के वस्त्र धारण करती है; क्योंकि लाल रंग का वस्त्र धारण करने से सारी अभिलाषायें नष्ट हो जाता है और व्यक्ति की अन्दर ही अन्दर सारी अभिलाषायें स्वत: जलती रहती है और इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

लक्ष्मी जी को श्रीनारायण का ला पीताम्बर उनको प्रिय है[1]। वहीं वर्णन मिलता है कि क्षौम वस्त्र धारण करती है।

आभूषणों में -केयूर, कटक, ग्रैवेय, हेमहार, कमल माला, कांची बाजूबन्द, माला (कौस्तुभ मणि की माला पहने हुए शोभायमान है।) कर्णफूलें, किरीट, कुण्डल मणि मेखला, कंकन, चूड़ी अगूठी, नूपुरादि अलंकार और पांव में मणि-रत्न-जटित आभूषणों से विभूषित है और मुकुट धारण करती है।

लक्ष्मी के तनु -

मत्स्य पुराण के आधार पर लक्ष्मी के आठ रूप या शक्तियाँ भी वर्णित की गई हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं - लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा और मति[2]।

कहीं पर लक्ष्मी को द्विभुजी कहीं चतुर्भुजी और कहीं अष्टभुजी के रूप में वर्णन है। वरदान, अंकुश, पाश, अभयदान इस प्रकार चार मुद्राओं को हस्त में धारण करने वाली है। इनको तीन नेत्रवाली बताया गया है। कमल-पुष्प जैसी धारिली विशाल इनकी आंखें हैं। गहरी और धूमली वाली जिनकी नाभि है। स्तन के भार से जो कुछ नम्र दिखाता है। हाथ में कमल धारण करती हैं कहीं-कहीं पर (दुर्गासप्तशती) में अठारह भुजाओं वाली महालक्ष्मी का वर्णन मिलता है।

1- श्रीमद्भागवत 8, 8, 15

2- लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टा प्रभामतिः।

एताभिः पाहि अष्टाभिः तनुभिर्मां सरस्वती ।। (म0पु0 64-9।)

3-

लक्ष्मी का प्रतिमा -

पुराणों में लक्ष्मी देवता की मूर्तियों के विषय में भी वर्णन प्राप्त होता है, और प्रतिमा निर्माण के अनुचित आदेश प्राप्त होते हैं।

स्कन्द पुराण के उल्लेख के अनुसार-गन्धमादन पर्वत पर लक्ष्मी तीर्थ नाम से विख्यात लक्ष्मीतीर्थ है जो ऐश्वर्य की प्राप्ति का एक ही कारण है। यह तीर्थ महान पुण्य वाला है और महान् दरिद्रय के विनाश को कर देने वाला है।

ब्रह्मपुराण के उल्लेख के अनुसार-एक तीर्थ का शुभ नाम लक्ष्मी-तीर्थ है। यह तीर्थ साक्षात् लक्ष्मी का वर्धन करने वाला है एवं अलक्ष्मी का विनाश करने वाला है।

पुराणों में ही ऐसा भी वर्णित है कि लक्ष्मी ने स्वयं को कुछ स्थानों पर प्रतिमा के रूप में स्थापित किया।

लक्ष्मी ने भी सौ दिव्य युगों तक पुष्कर क्षेत्र में जाकर आराधना की इसलिए वे सर्व सम्पत्तियों को देने वाली हुई।

लक्ष्मी देवता की पूजा -

पुराणों का प्रमुख उद्देश्य है कि विभिन्न आख्यानों द्वारा मनुष्य के हृदय में देवताओं के प्रति भक्ति भावना को भरना। पुराणों में अधिकांशतः ऐसे आख्यान ही प्राप्त होते हैं जो मनुष्य के हृदय को देवता के प्रति भक्ति से भर देते हैं।

स्वर्ग में देवताओं से लक्ष्मीपूजित हुई थीं, इसी कारण भारतवर्ष में भी लोग उनको पूजा करते हैं। पौष, चैत्र और भाद्र इन तीन महीनों में लक्ष्मी पूजा का

विधान है । विष्णु ने इसी समय लक्ष्मी की पूजा की थी, इस कारण से ये तीन मास लक्ष्मी-पूजा के लिए प्रशस्त हैं । इन तीन महीनों में तीन बार पूजा होती है । लक्ष्मी की पूजा करके उनके उद्देश्य से हविष्याशी हो, नियम का पालन करना होता है ।

लक्ष्मी का ध्यान उपासक जिस रूप में करता है जैसे खड़ी हुई, बैठी हुई, गजलक्ष्मी, सन्तान लक्ष्मी ऐश्वर्य लक्ष्मी, धान्य लक्ष्मी, की अर्थात् जिस रूप में का जिस किसी कामना के लिए ध्यान करता है । उस रूप में देवी के वस्त्र का रङ्ग अलग-अलग रङ्ग के होते हैं । उपासक को देवी उसी रूप में दिखाई पड़ती है । उनके वस्त्र आभूषण आदि कुछ अलग-अलग रूप आभासित होते हैं ।

काठ {लकड़ी} के एक बर्तन में करीब चार सेर धान भर कर उसे अनेक प्रकार के आभूषणों से सजाये । फिर सुगन्धित शुक्ल-पुष्पों द्वारा उसकी पूजा करे । पौष मास में पिष्टक, चैत्र-मास में परमान्न तथा भाद्र-मास में पिष्टक और परमान्न तथा नाना प्रकार के उपहारों द्वारा पूर्व की ओर मुंह करके पूजा करनी होगी ।

जो यथा-विधान यह लक्ष्मी-पूजा करते हैं, वे इस लोक में नाना प्रकार का सुख-सौभाग्य भोग कर अन्त-काल में विष्णु-लोक को जाते हैं । लक्ष्मी-देवी की पूजा स्त्रियों को करनी चाहिए, ऐसा विधान देखने में आता है । जहाँ लक्ष्मी-पूजा होगी, वहाँ घण्टा नहीं बजाना चाहिए । घण्टी और काञ्चन-पुष्प द्वारा लक्ष्मी पूजा न करें । पद्म {कमल-पुष्प} द्वारा लक्ष्मी-पूजा विशेष शुभ होती है

लक्ष्मी-पूजा में लक्ष्मी, नारायण और कुबेर इन तीनों की पूजा का विधान है । इनकी पूजा के पहले गणेश की पूजा होती है । लक्ष्मी-पूजा के दिन सरस्वती की पूजा तथा सरस्वती पूजा के दिन भी लक्ष्मी-पूजा होती है ।

आश्विन पूर्णिमा के दिन कोजागरी लक्ष्मी-पूजा और कार्तिकी अमावस्या के दिन दीपान्विता लक्ष्मी पूजा होती है ।

रङ्ग -

ब्रह्मवैवर्त पुराण[1] में लक्ष्मी देवी को श्वेत-वर्ण वर्णा बतलाया है यथा-

श्वेत-चम्पक-वर्णाभा शुभ्र-द्रुया मनोहरा ।

शरद्-पार्वण-कोटीन्दु-प्रभा प्रच्छादितानना ।।

किन्तु दूसरी जगह इन्हें गौर वर्णा कहा है । जिस ध्यान से लक्ष्मी-पूजा होती है, उस ध्यान के अनुसार ये गौर-वर्णा है । ध्यान -

पाशाक्ष- मालिकाम्भोज- सृणिभिर्यम्य-सौम्ययोः ।

पद्मासनस्था ध्यायेच्च श्रियं त्रैलोक्य-मातरम् ।।

गौर-वर्णां सु -रूपां च सर्वालङ्कार-भूषिताम् ।

रौक्म -पद्म- व्यग्र-करां वरदां दक्षिणेन तु ।।

स्कन्द पुराण के अनुसार लक्ष्मी जी का ध्यान -

हिरण्य-वर्णां हरिणीं सुवर्ण रजत स्रजम् ।

चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेद-समावहाम् ।।

गौर-वर्णां तु द्वि-भुजां सित-पद्मोपरि-स्थिताम् ।

विकृणोर्वक्षः स्थलस्थां च जगच्छोभा-प्रकाशिनीम् ।।

1- ब्रह्मवैवर्त पुराण- प्रकृति खण्ड, 35 अ0

लक्ष्मी के रूप -

लक्ष्मी जी के रूप नौ हैं ।

1- आदि लक्ष्मी 2- सन्तान लक्ष्मी 3- धान्य लक्ष्मी 4- गज लक्ष्मी
5- वीर लक्ष्मी 6- ऐश्वर्य लक्ष्मी 7- विजय लक्ष्मी 8- धनदा लक्ष्मी
9- मोक्ष लक्ष्मी ।

कहीं-कहीं पर अष्ट लक्ष्मियों के रूप मिलते हैं -

1- आद्य लक्ष्मी 2- सौभाग्य लक्ष्मी 3- विद्या लक्ष्मी 4- अमृत लक्ष्मी
5- कमला लक्ष्मी 6- सत्य लक्ष्मी 7- भोग लक्ष्मी 8- योग लक्ष्मी ।

हिन्दू धर्म के वैश्य समाज में -

सती का लक्ष्मी रूप वर्णन मिलता है । अधिकतर वैश्य परिवारों में कुल देवी के रूप अपने कुल की सती की जो पूजा परम्परागत रूप में प्रचलित है वह लक्ष्मी स्वरूप की है । महाराज श्री अग्रसेन की कुल देवी महालक्ष्मी ही थीं । उन्होंने लक्ष्मी जी से ही वरदान प्राप्त किया था । लक्ष्मी धन ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी है । उनके कर कमलों में केवल कमल के पुष्प हैं - कोई अन्य अस्त्रशस्त्र नहीं । इसलिए जो भक्त अपनी भावना के अनुसार उनकी आराधना अपनी कुल देवी के रूप में करते हैं वे त्रिशूल को प्रतीक रूप में वहाँ प्रतिष्ठित नहीं करते ।

लक्ष्मी के प्रधान उपासक -

राजा मंगल ने लक्ष्मी जी का सर्वप्रथम पूजन किया था । फिर तो तीनों लोकों में देवता मुनि और मनुष्य सभी इन्हें पूजने लगे । इन देवी की पूजा

पृथिवी पर भारतवर्ष में सर्वप्रथम राजा सुयज्ञ ने भगवान शङ्कर की आज्ञा से की थी । फिर तो ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में देवियों की पूजा होने लगी । भृगु, नारद, कृष्ण, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, लोपामुद्रा, अगस्त्य ने इनकी उपासना की ।

ब्रह्मा-विष्णु, महेशाना देवाना च विशेषतः ।

दुर्लभं पावनं पात्रं दास्यं प्रणमाम्यहम् ।।

अर्थात् भगवती "कमला" ब्रह्मा-महेश और अन्य सभी देवों द्वारा आराधिता है, उनकी कृपा का पात्र बनना सरल नहीं है ।

महालक्ष्मी देवी आदि में बैकुण्ठ धाम में नारायण के द्वारा पूजित हुई थी । फिर दूसरे ब्रह्मा के द्वारा भक्ति से और तीसरे शङ्कर के द्वारा समर्चित हुई थी । क्षीर सागर में वह भारत में वह विष्णु के द्वारा पूजी गई था । इनके अतिरिक्त स्वायम्भुव मनु सब और मानवेन्द्रों से ऋषीन्द्र, मुनीन्द्र, लक्ष्मीगण गन्धर्वादि नाग आदि के द्वारा पाताल में पूजित की गई थी ।

केदार नील और सुबल के द्वारा उनकी अर्चना की गयी थी । राजा उत्तान-पाद-ध्रुव-इन्द्र-बलि, कश्यप, दक्ष-मनु- विवस्वान्- प्रिय- व्रत- चन्द्र कुबेर- वायु - यम, अग्निदेव और वरुण देव के द्वारा इस देवी की समर्चना की गई थी ।

इस प्रकार से यह महालक्ष्मी देवी सर्वत्र सभी के द्वारा वन्दित और पूजित हुई है । यह देवी सब प्रकार के ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री देवी और सम्पूर्ण सम्पत्तियों के स्वरूप वाली है[1] ।

1- एवं सर्वत्र सर्वैश्च वन्दिता पूजिता सदा ।
सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ।। 34

ब्रह्मवैवर्त पुराण 32 अध्याय 50-295

लक्ष्मी के कवच तथा स्तोत्र-

पुराणों में लक्ष्मी उपासना के सन्दर्भ में कतिपय कवच, स्तोत्र, मंत्र, शतनाम, सहस्रनाम आदि प्राप्त हैं । कवच पाठ का उद्देश्य शरीर रक्षा की दृष्टि से होता है । लक्ष्मी देवता का कवच ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित है । यह कवच मंत्रात्मक है । इसमें 39 श्लोक हैं ।

"आविर्भूय हरिस्तस्मै-----" से प्रारम्भ होकर"-------सार्द्धतदाज्ञया।।" पर समाप्त होता है। इन श्लोकों में प्रत्येक अंग की रक्षा के लिए किसी न किसी मंत्र का प्रयोग अवश्य किया गया है । इस प्रकार यह कवच अतीव अद्भुत, प्रभावकारी और मंत्रों का आगार है । इस कवच के मंत्रों में "श्री" "ह्रीं", क्लीं" और ऐं,बीजों का प्रयोग हुआ है ।

यह कवच सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है, सुनने में सुखकर है, श्रुतिसार है, श्रुत्युक्त तथा श्रुति द्वारा पूजित है । यह कवच गोपनीय है कल्पवृक्ष

1- आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ ।
महालक्ष्मयाश्च लक्ष्मीशस्तस्मै ब्रूहि तपोधन ।। । ।। 2•3•4•5•6।।
इदं स्तोत्रं महापुण्य पूजाकाले यथः पठेत् ।
महालक्ष्मीर्गृहंतस्यनजहाति कदाचन ।। 32
इत्युक्त्वा श्री हरिस्तन्त्रत्रैवन्तरधीयत ।।
देवो जगामक्षीरोदंसुरैः सार्द्धतदाज्ञया ।। 39 ।।
ब्रह्मवैवर्त पु० प्र०भा०प्र०सं०764-766,अध्याय 22
" भा०3 "" "" 192-193

के सदृश सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है[1]। लक्ष्मी देवता की पूजा के द्वारा इनकी कृपा प्राप्त कर मनुष्य स्वाभाविक रूप से ज्ञान बुद्धि धन समृद्धि ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकता है ।

स्वरूप निरूपण -

महामाया भोगलक्ष्मी और मोक्षलक्ष्मी-दोनों की स्वामिनी है, यही विष्णुमाया है, जो कि देवी का प्रथम रूप है ।

मार्कण्डेय पुराण में उन्मीलित देवी की दूसरी रूप रेखा का नाम "चेतना" है । चेतना का वास्तविक अभिप्राय निर्विकल्पक ज्ञान अथवा संवित्ति है । चेतनाबुद्धि से भिन्न तत्त्व है, क्योंकि बुद्धि सविकल्प ज्ञान अथवा संविदना है ।

देवी का तृतीय रूप समस्त जीव वर्ग में व्याप्त "बुद्धि" है, बुद्धि स्व-प्रकाश ज्ञान स्वभाव वाली होती है, और इसलिए दर्शनकारों द्वारा सविकल्प ज्ञान के रूप में मान्य है ।

देवी का चतुर्थ रूप "निद्रा" है, जिस अवस्था में समस्त जीव जन्तु सभी इन्द्रिय व्यापारों से विरत होकर श्वासोच्छ्वास की क्रिया में निश्चिन्त सुख का अनुभव करते हैं ।

1- शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम् ।
अतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ।।
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने ।
अतीव गोपनीयं चकल्पवृक्षसमं परम् ।
अपनुताद्भुतमंत्राणां समूहैश्च समन्वितम्।।

ब्र0वै0पु0-2-4

"क्षुधा" अर्थात् बुभुक्षा अथवा भूख के रूप में मार्कण्डेय पुराण में देवी के पाँचवे रूप का दर्शन कराया है । बिना क्षुधा के प्राणियों को सुख कहाँ ? लोक सुलभ खान-पान से जब वह शान्त होती है, तब प्राणिमात्र को सुख कहाँ ? लोक सुलभ खान-पान से जब वह शान्त होती है, तब प्राणिमात्र को लोक-जीवन में सुखानुभव का सौभाग्य देती है ।

देवी का छठा रूप "छाया" है, जो किसी भी प्राणी का संग नहीं छोड़ती और उसका प्रतिबिम्ब बना यावज्जीवन उसके साथ रहती है लोक-जीवन के ताप संताप को छिन्न-भिन्न करने के कारण भी देवी का "छाया" रूप धारणा ध्यान का विषय है ।

"शक्ति" देवी का सातवां रूप है, जिसे प्रत्येक वस्तु के स्वभाव सिद्ध धर्म के रूप में देखा जा सकता है । बिना शक्ति के कोई भी प्राणी कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकता है बिना शक्ति के कोई भी प्राणी कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकता । इस दृष्टि से उसे पदार्थों का कार्य-सामर्थ्य भी कहा गया है,

"तृष्णा" देवी की अष्टमी भावना-मूर्ति है, तृष्णा का तात्पर्य लौकिक-पारलौकिक सुख के भोग की अभिलाषा है, जो कि समस्त शरीर धारी जीवों के हृदय में विराजमान रहती है ।

"क्षान्ति" अथवा क्षमा देवी की नवमी भावनागम्य मूर्ति का नाम है, इस रूप में देवी का माहात्म्य-दर्शन अपने आप में एक बड़ी साधना है, संसार में रहते पर कृत अपकार पर उदासीन रहना अथवा दुःखद अनुभवों के प्रति उपेक्षा दृष्टि रखना सहनशीलता की एक सिद्धि है ।

"जाति" देवी की दशमी रूपरेखा है, जो समस्त भूत-भौतिक तथा चित्र-चैतसिक पदार्थों में अन्तर्व्याप्त है। और जिसके कारण पदार्थों का वैशिष्ट्य बुद्धिगम्य होता है।

"लज्जा" के रूप में देवी का ध्यान किया गया है जो कि देवी की ग्यारहवीं भावना मूर्ति है। "लज्जा" कर्तव्य-कर्म के न करने अथवा अकर्म के आचरण करने अथवा स्वभावतः संकोच की अवस्था है, जिसका अनुभव संसार में ज्ञानी और अज्ञानी सबको होता है, यह एक चित्तवृत्ति है और चेतना की ही एक अभिव्यक्ति है। "लज्जा" के रूप में देवी समस्त संसार में व्याप्त है।

"शान्ति" देवी की बारहवीं अथवा देवी की भावना-मूर्ति है। काम-क्रोध तथा राग-द्वेष के अभाव में हृदय का जो स्वाभाविक आह्लाद है, उसमें इसका अनुभव होता है, वैषयिक क्षणिक सुखभोगों से चित्त की आवृत्ति में भी शान्ति का आनन्द मिलता है। शान्त हृदय के मन्दिर में देवी की जैसी उपासना सम्भव है, वैसी हृदय के अशान्त होने पर देवालय में षोडशोपचार पूर्वक देवी-पूजन में सम्भव नहीं।

"श्रद्धा" देवी का तेरहवीं भावना मूर्ति है। श्रद्धा की महिमा के गान निगम और आगम दोनों गाते हैं, श्रद्धा पराकाष्ठा प्राप्त भक्ति है। लोक-जीवन में जो आस्तिक्य बुद्धि है अथवा आस्तिकता की भावना है, वह भी श्रद्धा की ही एक अभिव्यक्ति है। देवी की श्रद्धा मूर्ति का ध्यान कितना आह्लाददायक हो सकता है, इसे श्रद्धामय हृदय वाले लोग स्वयं जानते हैं।

"कान्ति" देवी की चौदहवीं रूपरेखा है। जहाँ-जहाँ कान्ति का दर्शन हो वहाँ-वहाँ देवी का दर्शन एक मानवोचित धर्म है। कहीं यह कान्ति

प्रज्वलित ज्योति के रूप में दिखाई देती है, और कहीं शीतल ज्योत्स्ना के रूप में। पदार्थों की रमणीयता में "कान्ति" का ही आविर्भाव है, और ऐसे आविर्भाव में देवी के आविर्भाव का अनुभव एक परमसुखदायी अनुभव है।

"लक्ष्मी" देवी की पन्द्रहवीं भावनागम्य मूर्ति है, लक्ष्मी" के रूप में वैदिक ऋषियों मुनियों ने देवी की पूजा प्रतिष्ठा की परम्परा भले ही न चलायी हो, किन्तु भगवान् विष्णु और लक्ष्मी के अर्द्धनारीश्वर भाव की भावना अवश्य की है। मार्कण्डेय पुराण में जो 18 महापुराणों में सातवां महापुराण माना गया है, देवी की "लक्ष्मी" रूप में भावना वैदिक परम्परा का ही अनुसरण है "लक्ष्मी" इह लोक की विभूति या शोभा का भी रूप है और साथ ही साथ परलोककी विभूति और शोभा का भी रूप है।

"धृति" देवी की सोलहवी भाव मूर्ति है, "धृति" का अभिप्राय जगदाधारक शक्ति है और साथ ही साथ सुख-सन्तुष्टि भी "धृति" की ही अभिव्यक्ति है।

"वृत्ति" देवी की सत्तरहवीं" झलक है, वृत्ति से ही त्रिभुवन के निवासी जीवन धारण करते हैं "वृत्ति के बिना लोक-जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जीविका को वृत्ति कहते हैं, किन्तु यह वृत्ति का सर्व सुलभ स्थूल अर्थ है देवी के रूप में "वृत्ति" की कल्पना लोक जीवन की संचालिका शक्ति की कल्पना है।

"स्मृति" देवी का अठारहवां रूप की झलक है "भावना" नामक संस्कार के कारण पूर्वानुभूत पदार्थ के ज्ञान विशेष का नाम "स्मृति" है अनुभव की भांति स्मृति भी प्रमाण है। मानव से यदि स्मृति का कोई सम्बन्ध न रहे तो मानव जीवन की यात्रा असम्भव हो जाय। यही भगवती की कृपा है कि वह स्मृति के रूप में प्रत्येक जीव में अन्तर्व्याप्त है।

"दया" देवी की उन्नीसवीं झलक के रूप में है देवी साक्षात् दया स्वरूपा है दया के अभाव में देवी की अनुग्रह शक्ति का स्फुरण नहीं हो सकता। दूसरे के दुःख दूर करने की इच्छा को दया कहा जाता है, साथ ही साथ दूसरे के दुःख में दुःखी होना दया का ही प्रकाशन है देवी इस चराचर जगत् में "दया" रूप में सर्वत्र विराजमान है देवी की इस उपासना का परिणाम यदि दयार्द्रहृदयता के रूप में नहीं निकलता तो यही समझना चाहिए कि देवी की उपासना में श्रद्धा भक्ति की अपेक्षा बाहरी औपचारिकता का अधिक हाथ है।

"नीति" को देवी की बीसवीं रूप रेखा कहा गया है "नीति" शब्द के गर्भ में अनेक अभिप्राय छिपे हैं देवी धर्मनीति भी है और कूटनीति भी है। लोक जीवन का संचालन धर्म-नीति से ही सुचारु रूप से होता है। कूटनीति की भी आवश्यकता होती है किन्तु यह आवश्यकता धर्मनीति के रास्ते के रोड़े हटाने के लिए होती है। जैसे पेड़-पौधों को सुरक्षित रखने के लिए चारों ओर काँटे लगा दिये जाते हैं, वैसे ही धर्म नीति की लता की सुरक्षा के लिए कूटनीति के काँटे यदा-कदा आवश्यक हो जाते हैं, नीति के रूप में देवी का दर्शन करने वाला अपने आपको कुमार्ग गमन से दूर करता है, "नीति" के रूप में देवी का दर्शन लोक जीवन में भी सुलभ है।

"तुष्टि" देवी का इक्कीसवाँ रूप है। "तुष्टि" का तात्पर्य सांसारिक सुख-भोग के प्राप्त होने पर भी उसके प्रति अनासक्ति का भाव है ऐहिक और आमुष्मिक सुख की प्राप्ति भी तुष्टि का ही रूप है।

"पुष्टि" देवी का बाईसवाँ रूप झलकता है "पुष्टि" रूपा देवीकी दया के अभाव में लोक-जीवन की लता-मुरझा कर सूख जायेगी।

"मातृ" रूप में देवी का तेइसवें रूप झलकता है यही विष्णुमाताया, जो महामाया कही गयी है। विविध रूपों में अपना अस्तित्व प्रकाशित करती रहतीहै।

यह देवी या भगवती महामाया जगत् की माता है क्योंकि समस्त जगत के गर्भ में अवस्थित है इसी से उसकी उत्पत्ति होती है मातृ नाम की अष्टविध आधा शक्तियाँ जिसके ब्राह्मी, माहेश्वरी, ऐन्द्री, वाराही, वैष्णवी तथा कौमारी प्रभृति नाम है, समस्त भूत भौतिक सृष्टि की कारण है। मातृरूप में देवी की महिमा का दर्शन देवी की साधना का एक दिव्यरूप है।

"भ्रान्ति" देवी का अन्तिम भावना भक्ति चित्र है। भ्रान्ति का दूसरा नाम अविद्या है। महामाया के स्वरूप में विद्या और अविद्या दोनों अन्तर्भूत है। देवी माहात्म्य के प्रथम अध्याय[1] (मार्कण्डेय पुराण अध्याय 81) में विष्णुमाया या महामाया को मुक्तिदायिनी विद्या कहा गया है और संसार बन्ध हेतु अविद्या भी कहा गया है।

पुराणों में माता कमला -

श्री कमला माता जगत् की माता हैं। इन्हें संसार में वही स्थान प्राप्त है, जिस स्थान के लिए प्राणी मात्र सदा चिन्तित रहता है। सांसारिक प्राणियों का लक्ष्य यद्यपि चतुर्वर्ग प्राप्ति (धर्म, अर्थ, काम-मोक्ष की प्राप्ति) है तथापि इनमें से तीन को छोड़कर लोग अर्थ की ओर अधिक झुकते हैं। इसका कारण यह है कि माता कमला अर्थ की अधिष्ठात्री देवी है। इनकी आकर्षण-शक्ति ऐसी है कि प्राणी उस चुम्बक शक्ति के सामने स्वतः खींचा आता है। यह मातृ-शक्ति का भी गुण है कि वह अपने सहज स्वाभाविक वात्सल्य-प्रेम के पाश से अपने प्रिय पुत्र को बांध देती है।

1- मार्कडेय पुराण अध्याय-81 देवी सूक्त- दु०स०श०05 अध्याय।

सभी दोषों को हरने वाली लक्ष्मी -

माता कमला को जो संसार के नाम से विख्यात है कि सभी दोषों को हरने वाली लक्ष्मी है । अर्थात् माता कमला के सान्निध्य में आने पर किसी भी प्राणी का कोई भी दोष रह नहीं पाता । यही कारण है कि भगवान् विष्णु इन्हें एक क्षण के लिए भी छोड़ना नहीं चाहते । एक पल मात्र के लिए भी यदि कमला भगवान् विष्णु से अलग हो जाती है, तो उनमें भी दोष आने का भय बना रहता है । मत्स्य पुराण में कहा है कि -

यथा न कमला देहात् प्रयाति तव केशव ।

तथा ममापि देवेश । शरीरे स्वे कुरू प्रभो ।।

अर्थात् हे केशव (विष्णु) जिस तरह तुम्हारी देह से कमला (लक्ष्मी) अलग नहीं होती, उसी तरह तुम भी मेरे शरीर में सदा के लिए निवास करो ।

विष्णु के भक्त जानते है, कि हमारे शरीर में आत्मा में सदा निवास करने लग जायेंगे, तो माता कमला (लक्ष्मी) का निवास स्वयं ही होने लग जायगा। परिणामस्वरूप बिना प्रयास ही माता लक्ष्मी मेरे सभी दोषों को दूर कर डालेगी।

माता कमला से भक्त अनुरोध करते हैं कि हे मां आप ही मुझे दुःख के सागर से निकाल सकती है । हे देवि: भगवान् देवेश आपको छोड़कर जिस तरह नहीं जाते हैं (सुखी) जीवन व्यतीत करते हैं) उसी तरह तुम भी सम्पूर्ण दुःखो के समुद्र से मेरा उद्धार करो और मेरा जीवन सुखी बनाओ ।

माता कमला जगत् के प्राणियों के लिए सर्व-शक्ति प्रदायिनी कही जाती है और साधारण जन इन्हें लक्ष्मी कहते हैं । कमला (लक्ष्मी) सर्वत्र प्रधान है, इनके बिना जगत् का कल्याण नहीं होगा इसलिए जगत् के प्राणियों को इनका चिन्तन मनन सभी अवस्थाओं में और सभी देवी देवताओं के पूजन ध्यान में करना ही चाहिए ।

पुराणों में ऐसा उपदेश, इनका नाम अक्षय है।

धर्म के तेरह पत्नियाँ हैं। इनसे जो सन्तानें संसार में उत्पन्न हुई हैं, उनके नाम हैं -

श्रद्धा से शुभ, मैत्री से प्रसाद, दया से अभय, शान्ति से सुख, तुष्टि से मुद {प्रसन्नता}, पुष्टि से स्मय {मुस्कान}, क्रिया से योग, उन्नति से दर्प, बुद्धि से अर्थ, मेधा {धारणा-शक्ति} से स्मृति {स्मरण रखने की शक्ति} तितिक्षा से क्षेम, ह्री से प्रश्रय और श्री मूर्ति से नर-नारायण।

इनमें अन्तिम "श्री मूर्ति" माता से नर-नारायण का जन्म हुआ है। इसलिए उन्हें छोड़कर शेष हमारी बारह मातायें आज अपने विभिन्न नामों से जगत् का कल्याण करती हैं। उसका नाम कहीं-कहीं गङ्गा माता को गङ्गा, जान्हवी, जन्हुसुता, सुरसरि, भागीरथी आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है।

मेरी माता कमला अनेक नामों से मेरा कल्याण-साधन कर रही है। जहाँ मेरी बुद्धि नहीं जा पाती, वहाँ वह बुद्धि बनकर मेरी कामना पूरी करती है, जहाँ मेरा बल बेकार पड़ जाता है, वहाँ विजया बनकर विजय श्री मेरे गले पहनाती है; कहीं लक्ष्मी, कहीं सरस्वती, तो कहीं चण्डी के रूप में जगज्जननी का रूप प्रकट कर जगत् का कल्याण करती हैं।

लक्ष्मी की कलायें -

लक्ष्मी की नौ कलायें हैं। "विभूति" लक्ष्मी निवास की पहली शक्ति है, लक्ष्मी के निवास का स्थान विभूति-हीन नहीं होता।

दूसरी शक्ति "नम्रता" है। यह छोटे से बड़ा बनाने में बड़ी चतुर है। "नम्रता" लक्ष्मी की द्वितीय पीठाधिष्ठात्री देवता है। "विभूति" और "नम्रता" ये दोनों कलाये जिनके पास आ जाती है, वह लक्ष्मी की तृतीय कला "कान्ति"

का पात्र हो जाता है । लक्ष्मी की तीन कलाओं की प्रीति होने पर "तुष्टि" चतुर्थ कला अपने आप आ जाती है और वह कभी अपुत्र नहीं होता ।

पाँचवी शक्ति "कीर्ति" है । कीर्ति की साधना से लक्ष्मी की "सन्नति" नामक छठी कला लोगों पर मुग्ध होती है । सन्नति-प्राप्त पुरुष "पुष्टि" नामक लक्ष्मी की सातवीं पीठाधिष्ठात्री का पात्र होता है ।

आठवीं "उत्कृष्टि" नामक कला प्राप्त होती है और उसकी क्षय-वृद्धि का लोप हो जाता है ।

नवीं "ऋद्धि" नाम की शक्ति आपने आप आने को उत्सुक हो जाती है ।

इन नौ कलाओं से हीन पुरुष के पास लक्ष्मी सहसा नहीं आती । इन नौ पीठिकाओं का आधार एक "दया" है जो कि हर एक पुरुष के हृदय में विराजती है । इन नौ सखियों के साथ स्वयं महालक्ष्मी विराजमान होने में सकुचाती नहीं ।

दया का साधन कठिन है, जिसके गर्भ में महालक्ष्मी और विष्णु-पद विराजमान हैं । इसके लिए संसार में घोर-तप परिश्रम करने पड़ते हैं ।

जो व्यक्ति आपत्ति झेलने में, कष्टों को भोगने में सहनशील नहीं । उस पर भगवती प्रसन्न नहीं होतीं । मार्कण्डेय पुराण में विद्या की आश्रित निधियों का विस्तृत वर्णन किया गया है जो संक्षेप में इस प्रकार है -

पद्मिनी विद्या ही देवी लक्ष्मी है । उसकी आश्रित निधियाँ आठ हैं जो पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शंख नाम से प्रसिद्ध हैं । पद्म एक सात्विक निधि है और यह सात्विक मनुष्यों को महान् भोगों को सुलभ करती है, इससे सोना, चाँदी आदि धातुओं की प्राप्ति और उनके क्रय-विक्रय से सम्पत्ति की वृद्धि होती है[1] । इस निधि से युक्त मनुष्य यज्ञ, दक्षिणा, धर्मोत्सव

1- मार्कण्डेय पुराण-अरसठवाँ अध्याय ।

तथा देवमन्दिर-निर्माण आदि कार्य कराता है । महापद्म भी सात्विक निधि है यह अतिशय सात्विक पुरुषों को प्राप्त होती है । इससे पद्मराग आदि रत्न मोती और मूँगे की प्राप्ति और उनके क्रय-विक्रय से सम्पत्ति की वृद्धि होती है । इस निधि से युक्त मनुष्य योग और योगियों का प्रेमी होता है । मकर यह तामस निधि है । यह तमोगुणी मनुष्य को प्राप्त होती है इससे युक्त मनुष्य अस्त्रों का व्यवसाय करता है और राजा तथा राज्याधिकारियों से स्नेह करता है । इसकी सम्पत्ति वंशानुगामिनी नहीं होती । इसे चोर,डाकू तथा युद्ध से हानि उठाना पड़ती है । कच्छप- यह भी तामस निधि है और तमोगुणी को प्राप्त होती है। इस निधि से युक्त मनुष्य तामसी प्रकृति का होता हुआ भी पुण्यवान लोगों से व्यवहार करना पसन्द करता है । यह किसी किसी का विश्वास नहीं करता, कृपण स्वभाव का होता है, सम्पत्ति को छिपाकर रखने में इसे आनन्द मिलता है । मुकुन्द- यह राजस निधि है, इससे युक्त मनुष्य रजोगुणी होता है । विविध वाद्यों के संग्रह में उसकी रुचि होती है नर्त्तक, गायक, नट,भट, आदि का वह सम्मान करता है । स्त्रियों और स्त्री-लम्पटों से उसकी प्रीति होती है । नन्दक,वा नन्द यह राजस और तामस निधि है । इससे युक्त मनुष्य धातु, रत्न और उत्तम अन्नों का संग्रह और व्यवसाय करता है । यह स्वजनों और अतिथियों का आदर करता है । इसकी सम्पत्ति सात पीढ़ी तक चलती है । यह स्वयं रसिक और रसिक जनों का प्रेमी होता है । उसका स्नेह समीपस्थों से कम और दूरस्थों से अधिक होता है। नील-यह भी राजस और तामस निधि है। अतः उसी प्रकृति के मनुष्यों को प्राप्त होती है । इससे युक्त मनुष्य वस्त्र, कपास, अन्न, फल,फूल,मोती,मूँगा,शंख,शुक्ति और लकड़ी आदि का व्यवसाय करता है । तालाब बावली,बाग और पुल आदि बनवाने में उसकी विशेष रुचि होती है । उसकी सम्पत्ति तीन पीढ़ी तक रहती है।

शङ्ख- यह भी राजस और तामस निधि है, इस निधि से युक्त मनुष्य बड़ा स्वार्थी होता है। वह परिवार पर भी अपना अर्जित धन व्यय करने में संकोच करता है, अपना व्यक्तिगत खाना, पहिनना ही उसे अच्छा लगता है।

प्रकृति के रूप -

प्रकृति का विवेचन करते हुए ब्रह्मवैवर्त में बताया गया है कि प्रकृति शब्द की निष्पत्ति दो खण्डों से हुई है। वे हैं "प्र और "कृति"। इनमें प्रका अर्थ प्रकृष्ट और कृति का अर्थ सृष्टि है। इस प्रकार सृष्टि करने में प्रकृष्ट देवी को प्रकृति कहते हैं[1]। यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है। प्र + कृ + ति ये तीनों अक्षर क्रम से सत्व, रजस् और तमो गुण के द्योतक हैं[2]।

प्र शब्द प्रथम अर्थ में भी बताया गया है। अतः प्रथम कृति अथवा सृष्टि की आदि कारण रूपा देवी प्रकृति कहलायी[3]। यह भी बताया गया है कि योग के द्वारा वह आत्मा (परमात्मा) दो रूपों में हो गया। दक्षिण अर्धाङ्ग पुरुष और वाम अर्धाङ्ग प्रकृति हुई, वह प्रकृति ब्रह्म स्वरूप माया है। वह नित्या और सनातनी है। गीता की "प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि" उक्ति से यह सिद्धान्त मेल खाता है। इस प्रकार जैसे आत्मा (ब्रह्म) वैसी ही शक्ति है।

1- प्रकृष्ट वाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिःसा प्रकीर्तिता ।। ब्र0वै0 2/1/5

2- गुणे प्रकृष्ट सत्वे च प्रशब्दोवर्तते श्रुतौ।
मध्यमे कृश्च रजसि ति शब्दस्तमसि स्मृतः ।। ब्र0वै02/1/6

3- प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिः स्यात्सृष्टि वाचकः।
सृष्टेराद्या या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ।। वही 2/1/7

उदाहरण स्वरूप बताया गया कि जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति है वैसे ही ब्रह्म में प्रकृति है[1]। प्रकृति के जिन पाँच रूपों की विशेष व्याख्या की गयी है। उनके नाम ब्रह्मवैवर्त पुराण द्वितीय खण्ड के प्रथम श्लोक में बताये गये हैं -

गणेश जननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
सावित्री वैसृष्टि विधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ।।

इस क्रम में प्रथमा दुर्गा, द्वितीया राधा, तृतीया लक्ष्मी, चतुर्थी सरस्वती और पंचमी सावित्री है ।

लक्ष्मी -

ब्रह्मवैवर्त पुराण में लक्ष्मी को शुद्ध सत्व स्वरूपा और पद्मा कहा गया है ये सर्व सम्पत्ति स्वरूप और सम्पत्ति की अधिष्ठातृ देवता है। ये कान्ता दान्ता, अतिशान्ता सुशीला और सर्वमंगला हैं। ये लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और अहंकार से त्यक्ता अथवा रहित है। ये पति में अनुरक्ता, सर्वाधा और पतिव्रता है। ये भगवान् की प्राणतुल्या-प्रेम-पात्रा और प्रियंवदा हैं। सभी सस्यों अथवा धान्यों के रूप में वे सबके जीवन के उपाय स्वरूप हैं। स्थान-भेद से चार प्रकार की लक्ष्मी बतायी गयी है - {1} बैकुण्ठ में - महालक्ष्मी {2} स्वर्ग में -स्वर्ग लक्ष्मी {3} राजाओं में - राजलक्ष्मी । {4} गृहों में - गृह लक्ष्मी । सभी प्राणियों एवं द्रव्यों में शोभा उन्हीं का रूप है। वे मनोहर हैं। पुण्यवानों में प्रीति रूप में और राजाओं में प्रभा रूप में वही विराजमान हैं। व्यापारियों के यहाँ वाणिज्य रूप में और पापियों के यहाँ कलह के रूप में वही हैं। वे दयामयी, भक्तों की माता और

1- ब्रह्म वै० 2/1/10 ।

भक्तों पर अनुग्रह करने वाली हैं । वे चन्चल में चपला और भक्तों की सम्पत्ति की रक्षक हैं । उनके बिना यह सारा जगत् मृतप्राय है[1] ।

लक्ष्मी को सरस्वती ने नदी और वृक्ष होने का शाप दिया था[2] । श्री हरि ने अपनी प्रिया लक्ष्मी के सन्तोषार्थ भविष्य का निर्देश करते हुए बताया कि तुम अपनी कला से धर्मध्वज के घर जाकर उसकी पुत्री होगी । वहाँ दैव-दोष से वृक्षत्व प्राप्त करोगी । मेरे अंश-असुर शंखचूड़ की पत्नी होकर पश्चात् मेरी पत्नी बनोगी । उस समय तुम्हारा तुलसी नाम त्रैलोक्य पावन होगा । शीघ्र ही सर्वप्रथम भारतवर्ष में भारती के शाप से पद्मावती (नदी) बनो[3] ।

धर्मध्वज-सुता के रूप में उत्पन्न होकर शंखचूड़ की पत्नी तुलसी के रूप में लक्ष्मी के अवतरण की कथा विस्तारपूर्वक प्रकृति खण्ड के तेरहवें अध्याय से तेइसवें अध्याय तक वर्णित है । इसी अंश के विशेष भाग शिव पुराण में भी ज्यों के त्यों मिलते हैं ।

विष्णु लक्ष्मी के पति हैं विष्णु का एक रूप महाविष्णु भी है । वास्तव में यही महाविष्णु सर्वाधार है । इस महाविष्णु के एक-एक रोम छिद्र में ब्रह्मा, विष्णु और शिव विराजमान हैं[4] । अपनी कला (प्रकृति) के साथ क्रीडापरायण श्री कृष्ण थकान का अनुभव करते हैं तो उनके श्रमबिन्दु (स्वेद) से गोलोक जल से

1- ब्रह्म०वै० 2/1/22-30

2- शशाप वाणी तां पद्मा महाकोपवती सती ।
वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः- ब्रह्म वै० 1/5/32

3- ब्रह्म०वै० 2/6/45-48

4- ब्रह्मवैवर्त, 1/53/40-44

भर जाता है । इस महाविष्णु या महाविराट का आधार गोलोक धाम है । वे श्री कृष्ण के सोलहवें अंश कहे गये हैं । वे चतुर्भुज हैं[1] ।

उपर्युक्त कथन विष्णु और कृष्ण को एक ही प्रमाणित करता है । किन्तु यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि- "लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तुलसी पतिरीश्वरः।" यह ईश्वर द्विभुज है अथवा चतुर्भुज ?

तत्र नारायणः श्रीमान् चतुर्भुजः[2] ।

अतः चतुर्भुज विष्णु लक्ष्मी के पति हैं[3] ।

लक्ष्मी के भक्त मंगल भूप हो चुके हैं[4] इनका विशेष वर्णन, पूजन, ध्यान, कवच मंत्र एवं तत्सम्बन्धित उपाख्यान प्रकृति खण्ड के पैंतीसवें अध्याय से उन्तालिसवें अध्याय तक वर्णित हैं । यहाँ लक्ष्मी के भक्त इन्द्र[5], कुबेर, दक्षसावर्णि, मंगल, प्रियव्रत, उत्तानपाद और राजा केदार बताये गये हैं[6] ।

लक्ष्मी के वर्णन में यह भी बताया गया है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा कृष्ण के वामांश से रास मण्डल में जो देवी (राधा) प्रकट हुई, वे ईश्वर की इच्छा से द्विधा रूप में हुई । उनका वामांश महालक्ष्मी और दक्षिणांश राधा के रूप में हुआ । उस देवी के गौरव से सम्मान के कारण कृष्ण ने भी अपने दो रूप किये।

1- ब्रह्मवैवर्त 2/54/6-9

2- ब्रह्मवैवर्त 2/54/12/2

3- वही - 2/35/12, 14.16

4- वही -2/1/155.

5- वही प्रकृति खण्ड 39/42

6- वही प्र० ख० 39/44-46

द्विभुजी रूप श्रीकृष्ण के साथ गोलोक में राधा और चतुर्भुजी रूपी विष्णु नारायण के साथ पद्मा अथवा महालक्ष्मी गयीं। इन्होंने (लक्ष्मी) योग के द्वारा नाना रूपों को धारण किया,[1] जैसे कि सभी रमणियों में, स्वर्गलक्ष्मी, राजलक्ष्मी और गृहलक्ष्मी के रूपों में। ये समुद्र मन्थन के समय सिन्धुकन्या के रूप में प्रकट हुईं। कमला[2] के अंग से करोड़ों दासियाँ उनके ही समान गुण धर्म वाली प्रकट हुईं। इस प्रकार लक्ष्मी अपनी असंख्य परिचारिकाओं से घिरी रहकर सुख-संवास करती है[3]।

यह देवी विश्व को निरन्तर स्निग्ध दृष्टि से देखती रहती है तथा देवियों में महान है। अतः महालक्ष्मी कही जाती है -

लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या यया निशम्।
देवीषु या च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता।।[4]

लक्ष्मी के प्रसंग में प्रकृति खण्ड के छत्तीसवें अध्याय में ज्ञान सागर अथवा ज्ञान सार नामक अंश विशेष रचना है। यह अंश देवी भागवत में उपलब्ध नहीं है[5]। वास्तव में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश है।

लक्ष्मी पूजन के मंत्र प्रकृति खण्ड के 39 वें अध्याय के 15 वें से 40 वें श्लोक तक तथा लक्ष्मी स्तोत्र राज इसी अध्याय के 51 वें श्लोक से 71 वें श्लोक तक वर्णित हैं।

1- ब्रह्मवैवर्त, प्र0ख0 35/4-16

2- वही प्र0 ख0 36/8

3- ब्रह्म वै0 2/2/61 बभूवुः कमलाङ्गाच्च दासीकोट्यश्च तत्समाः।।

4- वही, प्र0 ख0 35/13

5- वही, प्र0 ख0 36/61-180

सरस्वती ने कामोवेश में श्री कृष्ण को पाने को इच्छा प्रकट की । किन्तु राधा को श्री कृष्ण की पत्नी सरस्वती का होना सह्य नहीं होगा ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने सरस्वती को चतुर्भुज नारायण के पास भेज दिया । उन्होंने{श्री कृष्ण} बताया कि श्री विष्णु की पत्नी लक्ष्मी में काम,क्रोध,लोभ, मोह, मान और हिंसा नाम मात्र भी नहीं है उनके साथ सरस्वती का पारस्परिक सम्बन्ध मधुरतापूर्वक निभ जायेगा । पति श्री विष्णु दोनों का सम्मान समान रूप से करेंगे[1]।

वायुपुराण में देवी के वर्णन में बताया गया है । कि महामाया अथवा महादेवी के कुल में प्रज्ञा और श्री ये दो देवियाँ {मुख्य} हैं । इन्हीं दोनों से सहस्त्रों देवियाँ जिनसे कि सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है, हुई हैं ।

{महामाया} महादेवा कुले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्तिते ।

आभ्यां देवी सहस्त्राणि ये व्याप्तमखिलं जगत्[2] ।।

इसके पूर्व इसी अध्याय में देवियों के नामों की एक सूची में है इसमें लक्ष्मी का भी नाम वर्णित है -

आत्मानं विभजस्वेति स्योक्ता देवी स्वयम्भुवा ।

सा तु प्रोक्ता द्विधा भूता शुक्ला कृष्णा चवै द्विजाः।। 84 ।।

तस्या नामानि वक्ष्यामि श्रृणुध्वं सुसमाहिताः ।

स्वाहाः स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ।।85 ।।

1- ब्रह्मवै0 पु0 2/4/14-22

2- वायु पुराण, नवमाध्याय,98

कहा जाता है कि लक्ष्मी गङ्गा और सरस्वती ये तीनों वैकुण्ठ निवासी विष्णु की भार्या हैं[1]।

एक बार श्री हरि पर सरस्वती को यह सन्देह हो गया कि ये सरस्वती की अपेक्षा गङ्गा से अधिक प्रेम करते हैं। अतः श्रीहरि को सरस्वती ने कुछ कठोर शब्द कहा। वहाँ उपस्थित लक्ष्मी ने उस उक्ति को अनुचित मान कर सरस्वती को रोका। सरस्वती ने आवेश में लक्ष्मी पर गङ्गा का पक्ष लेने का दोषारोपण करते हुए वृक्ष एवं नदी होने का शाप दिया[2]।

गङ्गा को निर्दोष लक्ष्मी पर सरस्वती का शाप सह्य न हुआ, यद्यपि लक्ष्मी ने शाप पाकर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं की। यह लक्ष्मी के चरित्र की चरम कोटि की उत्तमता है किन्तु क्रोधाविष्ट गङ्गा ने सरस्वती को नदी रूप होने का शाप दिया और इस मर्त्य लोक में आने को कहा, जहाँ कि पापी जन निवास करते हैं[3]।

अन्त में श्री हरि आ पहुँचे। उन्होंने सबको शान्त किया और सब के शापों का समाधान एवं भविष्य बताया। जिससे देवियों को सन्तोष हुआ।

ब्रह्म खण्ड में बताया गया है कि कृष्ण ने महालक्ष्मी और महा-सरस्वती को नारायण को प्रदान किया और सावित्री देवी को ब्रह्मा के लिए अर्पित किया।

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादरं च सरस्वतीम्।
नारायणाय प्रददौ राजेन्द्र मालया सह।।
सावित्रीं ब्रह्मणेप्रादात्-----------।[4]

1- ब्रह्मवै० पु० 2/6/10

2- वही, 2/6/32

3- वही, 2/6/39-40

4- ब्रह्मवै०पु० 1/6/1-2

यद्यपि भारतीय लोग जिन देवताओं को पुराणों के अन्तर्गत पूजते थे उनकी कोई भी मूर्ति हमें प्राप्त नहीं होती लेकिन पुराणों में लिखे हुए प्रसंगों के आधार पर हम उन देवी-देवताओं का वर्णन कर सकते हैं । इन देव, देवियों की कोई भी मूर्ति अभी तक असंदिग्ध रूप से उपलब्ध नहीं हुई है । किन्तु उचित प्रदेशों में समुचित गहराई तक खुदाई होने पर इनका मिलना निश्चित है[1]। धर्मसूत्रों में मन्दिरों एवं प्रतिमाओं का उल्लेख आता है । पुराणों के कुछ निबन्धों में देव प्रतिष्ठा पर प्रकाश पड़ता है । मत्स्य पुराण में 264, अग्निपुराण में 60 एवं 66 देव माने हैं[2]।

देवी तत्त्व -

देवी परम रहस्यमय एक अति निगूढ़ दुर्ज्ञेय तत्त्व हैं । इनके स्वरूप का याथातथ्येन परिचय पाना बड़ा कठिन है । शास्त्रों से ज्ञात होता है कि यह शेषशायी नारायण हरि की महामाया है । त्रिगुणात्मिका । प्रकृति इनका शरीर है । इनके शरीर के अङ्गभूत सत्व, रज और तम नामक गुणों से समस्त चेतन-अचेतन जगत व्याप्त है । देव, असुर, गन्धर्व, राक्षस एवं मनुष्य की तो बात ही क्या ? ब्रह्मा, विष्णु, महेश, परमेश्वर की यह त्रिमूर्ति भी इनकी महिमा के भीतर है, इनसे प्रभावित है और इन्हीं से रचित है । ब्रह्म, जिस आदि-अन्त हीन शाश्वत सूत्र में सृष्टि और प्रलय रूप श्वेत तथा श्यामवर्ण के पुष्पों से प्रपन्च को

1- भारतीय मूर्ति कला- रायकृष्ण दास-पृ0 27.

2- धर्मशास्त्र का इतिहास-डा0पाण्डुरंग वामन काणे-पृ0 4750

यह महती माला ग्रथित हो रही है, स्वभावतः निर्गुण है । उसमें किसी प्रकार की गुणवृत्ति का उदय नहीं हो सकता । जो इस विश्व को अधीश्वरी, जगत को धारण करने वाली, संसार का पालन और संहार करने वाली तथा तेजः स्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति है, उन्हीं भगवती निद्रा देवी की भगवान् ब्रह्मा ने इस प्रकार से स्तुति की है । उसके आधार पर उनका स्वरूप इस-इस प्रकार से है - स्वधा, स्वाहा और वषट्कार है । स्वर भी उसकी महिमा का गान करते हैं वही जीवन दायिनी सुधा है । नित्य अक्षर प्रणव में अकार उकार, मकार इन तीन मात्राओं के रूप में तू स्थित है । तथा इन तीनों मात्राओं के अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता । वह भी आप ही हो । वही संध्या, सावित्री तथा परम जननी है । इस विश्वब्रह्माण्ड को धारण करती है । इस जगत् की सृष्टि करती है । इसका पालन करती है, और इनका संहार भी करती हो । जगत् की उत्पत्ति के समय

1- त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता । 2,3,4,5,
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ।। 6
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।
काल रात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।। 7,8,9
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वति सुन्दरी
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।। 10-11 ।

दुर्गासप्तशती-रात्रिसूक्तम्

सृष्टि रूपा है, पालन-काल में स्थिति-रूप है, कल्पान्त के समय संहाररूप धारण करने वाली है। महाविद्या महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोह रूपा, महादेवी और महासुरी हो तीनों गुणों को उत्पन्न करने वाली प्रकृति है। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी है। "श्री" ईश्वरी, ह्री और बोध स्वरूपा बुद्धि है। लज्जा, तुष्टि, पुष्टि-शान्ति और क्षमा भी है। वही देवि। आप सौम्य और सौम्यतर है। अर्थात् चन्द्रमा के गुणों से युक्त शान्त एवं सुन्दर हो। इतना ही नहीं जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ है उन सबकी की अपेक्षा वही। अत्यधिक सुन्दरी है। पर और अपर-सबसे परे रहने वाली परमेश्वरी है। अतः उस ब्रह्म को देवी तत्त्व का ज्ञान होने की तो कोई सम्भावना ही नहीं, और जो सगुण ब्रह्म है वह तो देवी के अङ्गभूत गुणों से ही गठित है फिर उसे अपनी उद्भावयित्री भगवती का सन्धान-पता कैसे लग सकता है? दुर्गासप्तशती रात्रि सूक्त (मार्कण्डेय पुराण) में ब्रह्मा का यह कथन सर्वथा सत्य है।

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पाताऽत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥

जगत् की रचना, रक्षा तथा संहार करने वाले नारायण हरि को भी जो निद्रा के अधीन कर देती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव को जिनकी इच्छा से शरीर धारण करना पड़ता है उन महामहिमशालिनी महामाया की स्तुति कौन कर सकता है?

समस्त जिज्ञासु जगत् महर्षि मार्कण्डेय का इस बात के लिए ऋणी है कि उन्होंने क्रौष्टुकि को श्रोता बना देवी तत्त्व के उस उपदेश को जिसे मेधा ऋषि ने राजा सुरथ और समाधि वैश्य को दिया था, जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया। यह उपदेश उपक्रम, उपसंहार सहित सप्तशती नाम से प्रख्यात है और मार्कण्डेय पुराण के

81 से 93 तक तेरह अध्यायों में वर्णित है । इस उपदेश से देवीतत्व के ऊपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । सप्तशती के पहले अध्याय में जो मेधा ऋषि के अपने वचन है, उस अध्याय के अन्तिम भाग में ब्रह्मा द्वारा एवं चौथे, पांचवे तथा ग्यारहवें अध्याय में देवताओं द्वारा जो देवी की स्तुति है उन सब से देवी तत्त्व का जो परिचय प्राप्त होता है वह इस प्रकार है ।

देवी सत्व, रज और तम रूप प्रकृति तथा सत्, चित् और आनन्द रूप पुराण पुरुष की मिश्रित अयुतसिद्ध की मूर्ति है । इन्हें केवल जड़ प्रकृति, माया, अविद्या, वासना, संवृति अथवा शुभाशुभ कर्मरूप अदृष्टात्मक शक्ति के रूप में देखना भूल है । यह चेतन एवं सक्रिय हैं । इनमें निग्रह और अनुग्रह का सामर्थ्य है । यह अनादि और अनन्त है । इनकी शक्ति अपार है । इनकी प्रभुता के समक्ष बड़े-बड़े ज्ञानी जनों की भी कुछ नहीं चलती । वे इनके हाथ के खिलौने हैं । ये ही चराचर जगत् का सृजन करती है, ये ही बन्ध और मोक्ष का कारण है । ये बड़े-बड़े ईश्वरों की भी ईश्वरी है । मेधा ऋषि का यह कथन अक्षरशः यथार्थ है कि

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ।।[1]

1- मार्कण्डेय पुराण -81 अध्याय ।

देव, मानव कोई उन्हें अपनी शक्ति से नहीं जान सकता । वह अपनी कृपा, अपनी इच्छा से ही जानी जा सकती है । भौम सुख, स्वर्ग सुख और मोक्षसुख सब कुछ उनके अनुग्रह से ही सुलभ होता है । इसी कारण मेधा ऋषि ने उनकी महिमा का उपदेश कर सुरथ और समाधि को उनकी आराधना केलिए प्रेरित किया था ।

तामुपैहि महाराज । शरणं परमेश्वरीम् ।

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ।।

कुछ लोगों का यह भाव हो सकता है कि जब देवी का स्वरूप इतना रहस्यमय और दुरूह है तो उन्हें बिना समझे उनकी आराधना कैसे हो सकती है ? अन्धकार में हाथ फैलाने से क्या लाभ हो सकता है ? पर इस भाव को प्रश्रय देनाउचित नहीं है । यह आप मानव को मार्गच्युत बना उसे अनर्थ के गर्त में गिराने वाला है । वह परम करुणामयी महामाया जगत् की जननी है । मनुष्य उनका छोटा साशिशु है । शिशु को माता का इतिवृत्त भले न ज्ञात हो पर उसे पाना, उसकी मधुमय अङ्क में बैठना, उसके स्तन्यामृत का पान करना कठिन नहीं है । जैसे लोक की साधारण माँ अपने शिशु की पुकार को सुनते ही अधीर हो उसकी ओर दौड़ पड़ती है । उसका संकेत पाते ही अपने बलवान् बाहु से उठा उसे गले लगा लेती है । वैसे ही वह जगन्माता महामाया भी मानव की कातर पुकार सुनते ही, उसका अपनी ओर थोड़ा सा झुकाव होते हैं उसे सर्वस्व दान देने को तैयार रहती हैं ।

श्री देवी अथर्व शीर्ष -

सभी देवता, गण देवी के समीप जाकर नम्रता पूर्वक पूछा हे देवि । तुम कौन हो ? देवी ने बताया- मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक सद् असत् रूप जगत् उत्पन्न हुआ है । मैं आनन्द और अानन्दरूपा हूँ । मै विज्ञान और

1- ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् । शून्य चा शून्य च । 2 ।

अविज्ञानरूपा हूँ । अवश्य जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म मैं ही हूँ । पन्चमहाभूत और अपन्चमहाभूत मैं ही हूँ । अखिल विश्व ब्रह्माण्ड मैं हूँ । वेद-अवेद, विद्या-अविद्या, अजा-अनजा, नीचे- ऊपर दाये बाये, टेढे-तिरछे सर्वत्र मैं ही हूँ[1] ।

मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ । तीनों लोकों का अतिक्रमण करने के लिए लम्बे डग धरने वाले ब्रह्मा, विष्णु और प्रजापति को मैं ही धारण करती हूँ । मैं सम्पूर्ण विश्व की ईश्वरी, उपासकों को "श्री" सम्पदा देने वाली हूँ । मेरा स्थान आत्मस्वरूप को धारण करने वाला बुद्धि वृत्ति मे है । जो इस प्रकार जानता है वह देवी सम्प्राप्ति लाभ करता है ।

देवताओं ने देवी से कहा- हे महादेवि । महामाये, कल्याण-कारिणी देवि । आपको नमस्कार है । अग्नि के समान जाज्वल्य वर्णवाली तप से प्रदीप्त कर्मफल प्राप्ति के निमित्त आराधना की जाने वाली भगवति हम आपकी शरण में हैं । हे देवि । आपको नमस्कार है[2] ।

वेदों द्वारा स्तुत्य भगवती कालरात्रि, विष्णु शक्ति, शिवशक्ति ब्रह्म-शक्ति सरस्वती देवमाता अदिति और दक्ष कन्या (सती) पापनाशिनी, कल्याण-कारिणी देवि को हम प्रणाम करते हैं[3] ।

1- अहमानन्दानानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने । अहं ब्रह्मा ब्रह्मणी वेदितव्यं । अहं पन्चभूतान्यपन्चभूतानि । अहमखिलं जगत् ।। 3 ।। दुर्गासप्तशती वेदोऽहम-वेदोऽहम् । विद्याऽहमविद्याऽहम् । अजाऽहमनजाऽहम् । अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम् ।

2- तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं, वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्या- महेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः ।। 9।। दुर्गासप्तशती

3- कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम् ।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ।। ।। ।।
दुर्गासप्तशती का श्रीदेव्यथर्वशीर्षम् ।

हम उस महाशक्ति के महालक्ष्मी रूप को जानते हैं और उसी सर्वशक्ति-रूपिणी देवी का ध्यान करते है वह देवी हमें उस विषय में (ज्ञान-ध्यान में) प्रवृत्त करे । हे दक्ष ! आपकी जो कन्या अदिति है, वह प्रसूता हुई और उनके मृत्युरहित कल्याणमय देव उत्पन्न हुए ।

काम (क), योनि (ए),कमला (ई), वज्रपाणि-इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं) स्वह, स-वर्ण, मातरिश्वा-वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल) पुनः गुहा (ह्रीं) । स, क, ल-वर्ण और माया (ह्रीं) यह सर्वात्मिका जगन्माता का मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है[1] ।

इस श्लोक से पञ्चदशी मंत्र और पञ्चदशी यंत्र का उद्धार होता है । तंत्र शास्त्र में "श्री विद्या" के नाम से प्रसिद्ध है ।

यह परमात्मशक्ति है । विश्वविमोहिनी है । पाश,अंकुश, धनुष-बाण धारण करने वाली है यह "श्रीमहाविद्या" है जो ऐसा जानता है, वह शोक को पार कर जाता है ।

वही देवी अष्टवसु है, वही यह एकादश रुद्र है वही यह द्वादश आदित्य है वह यह सोमपान करने वाले और सोमपान न करने वाले विश्वेदेव है । वही यह यातुधान-असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध है, वही यह सत्व, रज और तम है वही यह ब्रह्म-विष्णु रुद्र-रूपिणी है । वही यह प्रजापति, इन्द्र मनु है । वही यह ग्रह, नक्षत्र और तारा है । पापापहारिणी-भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी है ।

1- कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम ।। 14 ।। दुर्गासप्तशती ।

वही यह कलाकाष्ठादिकालरूपिणी है और वही यह अन्तर्हित विद्याधिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेने योग्य, कल्याणकारिणी, मङ्गलरूपिणी है, ऐसी उन देवी को हम सदा प्रणाम करते हैं ।

वियत-आकाश ॥ह॥ तथा "ई" कार से युक्त, वीति होत्र-अग्नि ॥र॥ सहित अर्धचन्द्र ॥ ँ ॥ से अलंकृत जो देवी का बीज ॥ह्रीं॥ है वह सभी मनोरथों को सिद्ध करता है । इस एकाक्षर ॥ह्रीं॥ ब्रह्म का ध्यान ऐसे यति करते हैं जिनका चित्त शुद्ध है, जो परमानन्दमय और ज्ञान निधि हैं ।

वाक् ॥ ऐं ॥, माया ॥ह्रीं॥, ब्रह्मसू ॥काम-क्लीं॥, इसके आगे का छठा व्यन्जन ॥च॥ वक्त्र ॥ आ ॥ से समन्वित ॥ चा ॥, सूर्य ॥म ॥, अवाम श्रोत्र ॥दक्षिण-कर्ण उ ॥ और बिन्दु से युक्त ॥मुं॥ टकार से तीसरा वर्ण ॥ ड॥, वही नारायण ॥आ॥ से मिश्र ॥डा॥, वायु ॥य॥, वही अधर ॥ ऐ ॥ से युक्त ॥ यै ॥ और "विच्चे" यह नवार्ण मन्त्र महान् आनन्द ॥ब्रह्म सायुज्य ॥ देने वाला है ।

इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार है -

हे चित्स्वरूपिणी महासरस्वति । हे सद्रूपिणी महालक्ष्मि । हे आनन्द-रूपिणि महाकालि । ब्रह्मविद्या-प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा ध्यान करते हैं । हे महासरस्वती महालक्ष्मी महाकाली स्वरूपिणी चण्डिके । तुम्हें नमस्कार है ।

हृदय-कमल के मध्य स्थित, प्रातःकाल के सूर्य की कान्ति के समान द्युतिमती, पाश और अङ्कुश धारण करने वाली सौम्य वदना, हाथों में वरद मुद्रा और अभय मु---

1- "ह्रीं" यह बीजमन्त्र देवी प्रणव माना जाता है । जिस तरह ॐ व्यापक अर्थ पूर्ण है, उसी प्रकार

मुद्रा धारण करने वाली तीन नेत्रों वाली रक्त वसना, भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली देवी की मैं आराधना करता हूँ[1]।

महाभय को नाश करने वाली, महासंकट को संकट को शान्त करने वाला, करुणामयी हे महादेवि । तुम्हें नमस्कार है ।

जिसके वास्तविक स्वरूप को ब्रह्मा आदि नहीं जानते, इसलिए वह महाशक्ति अज्ञेया कही जाती है जिसका कोई अन्त नहीं है,

अतः वह अनन्ता कही जाती है, जिसका कोई लक्ष्य नहीं है, उसे अलक्ष्या कहा गया । जिसके जन्म के बारे में ज्ञात नहीं है । उसे अजा कहा जाता है जो सर्वत्र अकेला है उसे एका कहा जाता है, जो अकेला ही विश्व रूप में सजी हुई है । अतः नैका कहा जाता है । इसलिए उन्हें अज्ञेया, अनन्ता, अजा, एका और नैका कहलाती है ।

सभी मन्त्रों में मातृका रूप से रहने वाला, शब्दों में अर्थ रूप से निहित रहने वाला, सभी प्रकार के ज्ञानों में चिन्मयातीता, शून्यों में शून्यसाक्षिणी तथा जिससे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, ऐसी महाशक्ति "दुर्गा" नाम से संसार में विख्यात हुई है ।[2]

1- हृत्पुण्डरीक मध्यस्थां प्रातः सूर्यसमप्रभाम् ।
पाशाङ्कशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम् ।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे ।। 2। दुर्गासप्तशती-देव्यथर्वशीर्षम् ।

1- मन्त्राणां मातृकादेवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी ।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता ।। 24।। दुर्गासप्तशती देव्यथर्वशीर्षम्

दुरित-दुर्गमनाशिनी, दुर्विज्ञेय । दुराचार विनाशिनी एवं भवसागर से पार कराने वाली भगवती दुर्गा देवी को भवभयभीत मैं नमस्कार करता हूँ ।

इस देव्यथर्वशीर्ष का जो अध्ययन करता है, उसे गणपत्यथर्वशीर्ष आदि पाँचो अथर्वशीर्षों के जप का फल प्राप्त होता है इस अथर्वशीर्ष की उपेक्षा कर जो व्यक्ति चक्र-पूजा, प्रतिमा-अर्चा आदि करता है, वह सैकड़ों लक्ष संख्या में जप करके भी अर्चा सिद्धि नहीं प्राप्त करता ।

भगवती महाशक्ति की स्थापना कर इस अथर्वशीर्ष का 108 बार पाठ करने तथा मूलमन्त्र (ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायैविच्चे) का 108 बार जप करने से इसकी पुरश्चरण विधि पूर्ण होती है ।

जो साधक इस देव्यथर्वशीर्ष का दस बार पाठ करता है, वह उसी क्षण पापों से मुक्त हो जाता है और महादेवी की अनुकम्पा से घोर संकटों से छुटकारा पाता है[1] ।

देव्यथर्वशीर्ष का सायंकाल में सविधि पाठ करने से साधक के दिन में किए गए ज्ञाताज्ञात पापों का क्षय होता है । प्रातःकाल पाठ करने से रात में किए गए ज्ञाताज्ञात पापों का शमन होता है । सायंकाल और प्रातः काल पाठ करने से साधक निष्पाप होता है ।

तुरीया सन्ध्या (मध्यरात्रि) में पाठ करने से वाक् सिद्धि प्राप्त होती है । भगवती की नवीन प्रतिमा प्रतिष्ठापित कर अर्चनापूर्वक पाठ करने से महाशक्ति

1- दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते ।

महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः ।।

दुर्गासप्तशती देव्यथर्वशीर्षम् ।

के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं । भौमाश्विना-अमृतसिद्धि योग में मातादेवी के आयतन में उनका सान्निधि में पाठ करने से साधक महामृत्यु से तर जाता है । यह निश्चय हो महामृत्यु से तर जाता है ।

इस प्रकार यह देव्यथर्वशीर्ष अविद्या अन्धकार को निरस्त करने वाली ब्रह्म विद्या है ।

दश महाविद्या की अवधारणा

दशमहाविद्या साधना के क्षेत्र में परम उच्च स्थान तो रखती है, और सृष्टि तत्त्व पदार्थ विज्ञान भी इन विद्याओं में समाहित है । दशमहाविद्याओं का रहस्य गहन, गम्भीर और निगूढ़ है । दशमहाविद्या देवियों के रूप में निम्न है-

1- काली
2- तारा
3- षोडशी
4- भुवनेश्वरी
5- छिन्नमस्ता
6- धूमावती
7- त्रिपुरभैरवी
8- बगलामुखी
9- मातङ्गी
10- कमलात्मिका

सृष्टि का सम्बन्ध विद्या से है । सम्पूर्ण विश्वविद्या महाविद्या है । इसी को महाविश्वविद्या कहा जाता है । विश्व का सृष्टि पुरुष और प्रकृति के समन्वय से हुई है ।

1- महाकाल पुरुष की शक्ति महाकाली -

सर्व प्रथम न सत् था न असत् जब कुछ भी नहीं था उस समय केवल अन्धकार तत्त्व ही था । यह तत्त्व महाकाल है और उसकी शक्ति महाकाली है । दश-महाविद्याओं में पहली विद्या का यही रूप है । सृष्टि से पहले इस महाविद्या

(महाकाली) का साम्राज्य रहता है ।

कालो तंत्र में महाकाली का स्वरूप -

महाकालो शव पर आरूढ़ हैं, उनको आकृति भयावना है, उनकी दाढ़े अति तीक्ष्ण है और भयावह है । महाकाली का चार भुजाएं हैं । खड्ग संहार का प्रतोक है, सद्यः छिन्नमस्तक अहंकार नाश का प्रतोक है । भगवती महाकाली का स्वरूप निर्वस्त्रा एकदम नग्न बताया गया है ।

2- अक्षोभ्य पुरुष को महाशक्ति तारा -

दूसरी महाविद्या "तारा" है महाकाली का आधिपत्य रात 12 बजे से 4 बजे तक प्रातः तक रहता है उसके बाद तारा का साम्राज्य होता है । तारा महाविद्या का रहस्य ज्ञान कराने वाला हिरण्यगर्भ विद्या है । हिरण्यगर्भ का प्रादुर्भाव सौर केन्द्र में होता है । इसका वर्णन यजुर्वेद में इस प्रकार है -

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रेभूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषाविधेम ।।

जिस प्रकार कालपुरुष को महाशक्ति महाकाली है उसी प्रकार सौर मण्डल में प्रतिष्ठित हिरण्यगर्भ की महाशक्ति तारा है ।

महाविद्या तारा की चार भुजाएं और चारों में सर्प लिपटे हुए हैं, वह देवी शव के हृदय पर सवार होकर अट्टहास कर रही है । उसके हाथ में खप्पर है, वह नीलग्रीवा है, पिङ्गल वर्ण है, और उसके नील विशाल जटाजूटों में नाग लिपटे हुए हैं -

3- पञ्चवक्त्रशिव की शक्ति षोडशी -

पञ्चवक्त्र शिव की शक्ति षोडशी है । षोडशी शक्ति से ही भूः स्वभुवः स्वः रूप तीन ब्रह्मपुत्र उत्पन्न है । इसलिए तंत्रशास्त्र में इसे "त्रिपुरसुन्दरी" कहा गया है । शाक्त प्रमोद तन्त्र में त्रिपुर सुन्दरी का स्वरूप यह है -

बालर्कमंडलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।

पाशांकुशशरश्चापान् धारयन्तीं शिवां भजे ।। पाशां कुशवराभीतिर्धा० त्रिपुर सुन्दरी सभी पर अंकुश रखती है । अंकुश इसी नियन्त्रण व्यवस्था का प्रतीक है । त्रिपुर सुन्दरी शर धारण करती है जो उसके निर्धारित अटल नियमों का उल्लंघन करते हैं,उन्हें वह विनष्ट कर डालती है, त्रिपुर सुन्दरी शक्ति-सिद्धि-दात्री है बिना इसकी कृपा से साधक को सिद्धि नहीं मिलती है ।

षोडशी विद्या ही श्रीविद्या है । उसके भी अनेक अवान्तर भेद,कामादि रमादि-मायादि-वागादि, तारादि षोडशी के नाम से होते हैं जिसने जिस उद्देश्य से उपासना की उसने उसी नाम का प्रयोग किया ।

4- त्र्यम्बक शिव की महाशक्ति-भुवनेश्वरी-

शाक्त प्रमोद,भैरवीतन्त्र में भुवनेश्वरी के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार है-

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।

स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशाम् ।।

जब शक्ति भुवनों का संचालन करती है तो वही भुवनेश्वरी कहलाती है यह चौथी महाविद्या चौथी सृष्टिधारा है ।

5- कबन्ध शिव की महाशक्ति छिन्नमस्ता -

छिन्नमस्ता का शाब्दिक अर्थ है - कटे हुए शिर वाली देवी। इसका गूढ रहस्य वेदों द्वारा उद्घाटित होता है। जो महामाया "षोडशी" से "भुवनेश्वरी" बनती हुई संसार का पालन करती है, वही अन्त काल में "छिन्नमस्ता" बनकर संसार का नाश करती है। छिन्नमस्ता का स्वरूप यह है - पैंतरा बदल कर वह शक्ति सदा खड़ी रहती है। उसका शिर कटा हुआ है और कटे हुए शिर के कबन्ध से बहुते हुए रक्त को खप्पर भर-भर कर वह पी रही है। वह देवी दिग्वसना नग्न है। त्रिनेत्रा है, हृदय में कमल-पुष्प की माला धारण किये हुए है, शिर में मणि रूप से नाग बांधे हुए है।

6- धूमावती - विधवा नाम से प्रसिद्ध महाशक्ति धूमावती -

इस महाशक्ति का कोई पुरुष न होने के कारण यह "विधवा" कही जाती है। यह दरिद्रता की देवी है।

संसार में दुःख के मूल कारण रुद्र, यम, वरुण, निर्ऋति ये चार देवता हैं। सब रोगों में भयंकर, शोक, कलह दरिद्रता आदि की संचालिका निर्ऋति है भिखारी, क्षत विक्षत पृथिवी, ऊसर-भूमि, भग्नप्रासाद, फटे एवं जीर्ण वस्त्र, बुभुक्षा, प्यास, रुदन, वैधव्य, पुत्रसन्ताप, कलह आदि-उसकी साक्षात् प्रतिमाएँ हैं। इन सबका मूल प्रधान रूप से दरिद्रता है। इसी को शान्त करने के लिए निर्ऋति इष्ट की जाती है। यह शक्ति यों तो सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु इसका खजाना ज्येष्ठा नक्षत्र है। वहां से यह आसुरी "कलह प्रिया" शक्ति निकलती है। अतएव ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला प्राणी जीवन भर दारिद्रय दुःख भोग करता है यही हमारी साक्षात् धूमावती है। इसमें मनुष्य का पतन है। अतएव इसे "अवरोहिणी"

भी कहा जाता है । यही "लक्ष्मी" नाम से प्रसिद्ध है । डरावनी शक्ल, दाँतों का चौड़ा होना, रुग्णता आदि इसी की कृपा का फल है ।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी इसकी अन्तिम अवधि है । अतएव धर्माचार्यों ने इसे "नरक चतुर्दशी" नाम से व्यवहृत किया है । इसी रात्रि को दरिद्रारूपा इसअलक्ष्मी का गमन होता है । एवं दूसरे ही दिन रोहिणी रूपा "कमला" {लक्ष्मी} का आगमन होता है । इस तमभाव के निराकरण के लिए, एवं साथ ही कमला-गमन के उपलक्ष्य में ऋषियों ने इस दिन वैध प्रकाश {दीपावलि} और अग्निक्रीडा {आतिशबाजी, पटाखे} करने का आदेश दिया है कहना है कि निश्चित रूप धूमावती प्रधान रूप से चातुर्मास्य में रहती है । लक्ष्मी कामुक मनुष्यों को सदा इसकी स्तुति करते रहना चाहिए ।

7- दक्षिणामूर्तिकला भैरव की महाशक्ति त्रिपुरभैरवी-

छिन्नमस्ता पराडाकिनी है और त्रिपुर भैरवी अपराडाकिनी है । छिन्नमस्ता का सम्बन्ध महाप्रलय से रहता है और त्रिपुरभैरवी का सम्बन्ध खण्ड प्रलय से रहता है । त्रिभुवन से पदार्थों का विनाश त्रिपुर भैरवी अपनी विकलन-क्रिया द्वारा करती है ।

1- एकस्मिन्नेव काले तु महासंहारन चक्षमा।
दक्ष प्रजापतेर्यज्ञे सती देहसमुद्भवात् ।
धूमाद्-धूमावती जाता मुखाद् कालमुखीमता ।
तद्धूमसम्भवां विद्या सर्वाङ्ग विनाशिनी ।
धूमावती तथा जाता भक्तानुग्रहकाम्यया ।
प्राप्तेऽक्षय तृतीयायां भौमवारे निशामुखे॥

शाक्तसङ्गमे धूमावती प्रादुर्भावः ।

९- महारुद्र की महाशक्ति बगलामुखी -

तन्त्रशास्त्र की "बगलामुखी" और वैदिक साहित्य की "बल्गामुखी" दोनों एक ही है। बगलामुखी शक्ति कृत्याशक्ति (मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण में प्रयुक्त होने वाली) है। इसकी आराधना से आराधक अपने शत्रु को मनमाना कष्ट पहुँचा सकता है। बगलामुखी का सम्बन्ध अथर्वासूत्र से है। अथर्वासूत्र एक ऐसा शक्तिसूत्र है जिसकी साधना करने से हजारों मील दूर स्थित व्यक्ति का आकर्षण किया जा सकता है। लोकव्यवहार में घर में प्रातःकाल कौवा बोलने से किसी अतिथि के आगमन की कल्पना की जाती है। बगलामुखी शक्ति के गुण कर्मों का दर्शन मिलता है -

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं,
वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन,
पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि।

१०- मातङ्ग शिव की महाशक्ति मातङ्गी -

तन्त्रसार में मातङ्गी का जो स्वरूप है उसके अनुसार यह शक्ति साधक के सभी अभीष्टों की सिद्ध करती है। नीलकमल की भांति श्यामल रंग वाली मातंगी ~~रुद्र~~ अक्षमाला धारण करती है, वह त्रिनेत्रा है, रत्न सिंहासन पर विराजती है, असुरों का नाश करने के लिए दावाग्नि रूप है, वह हाथों में पाश, खड्ग, अंकुश, खेटक, कमल धारण करती है -

श्यामां शुभ्रांशुमालां त्रिनयन कमलां रत्नसिंहासनस्थां।
भक्ताभीष्ट प्रदात्रीं सुरनिकर सेव्या नील कञ्जाङ्घ्रियुग्मम्॥
पाशं,खड्गं चतुर्भिवरकमलकरैः खेटकञ्चाङ्कुशञ्च।
मातङ्गीमावहन्तीमभिमतफलदां मोदिनीं चिन्तयामि॥

10- सदा शिव पुरुष का महाशक्ति "कमला" -

कमला लक्ष्मी का नाम है- धूमावती और लक्ष्मी परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध गुण, स्वभाव और कर्म की है । धूमावती और कमला में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा रहती है । धूमावती ज्येष्ठा है, लक्ष्मी कनिष्ठा है । धूमावती अवरोहिणी है, कमला आरोहिणी है धूमावती आसुरी शक्ति है । कमला दिव्य शक्ति है । धूमावती दरिद्रा है, कमला लक्ष्मी है ।

ज्येष्ठा नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह, व्यक्ति धूमावती के निवास केन्द्र नक्षत्र में उत्पन्न होने से जीवन भर दुःखी-दरिद्री बना रहता है । ज्येष्ठा से ठीक 180 अंश पर रोहिणी नक्षत्र है । रोहिणी नक्षत्र कमला का अधिष्ठान है । इस नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति जीवन भर सुखी, समृद्ध बना रहता है । ऋषि कहते हैं -

कान्त्याकाञ्चनसन्निभा हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै -
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम् ।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बवलितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ।।[1]

इसी सृष्टि विद्या को ऋषियों ने तीन भागों में विभक्त किया है वही तीन शक्तियाँ महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती नाम से प्रसिद्ध है । तमोगुण प्रधाना महाकाली कृष्णवर्णा है । यही प्रलय काल है । रजोगुण प्रधान महालक्ष्मी रक्तवर्णा है यही सृष्टिकाल है । सतोगुण प्रधान महासरस्वती श्वेतवर्णा है यही

1- शाक्त प्रमोद - कमला तन्त्र

मुक्तिकाल है उस एक ही अज पुरुष को "अजा" नाम से प्रसिद्ध महाशक्ति तीन रूपों में परिणत होकर सृष्टि, प्रलय, मुक्ति की अधिष्ठात्री बन गयी है[1]।

सृष्टि की दश धारायें दशमहाविद्याएं हैं। यही दशमहाविद्या का विज्ञान है।

श्री विद्या ही ब्रह्म विद्या है -

श्री विद्या को ही ब्रह्मविद्या तथा ब्रह्ममयी भी कहते हैं। "श्री विद्या" 2। शब्दों से श्री त्रिपुरसुन्दरी का भी तथा उनकी अधिष्ठात्री देवी दोनों का बोध होता है। सामान्यतः श्री शब्द का कान्ति अर्थ ही प्रसिद्ध है। परन्तु हारितायनसंहिता, ब्रह्मणपुराणोत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासों में वर्णित कथाओं के अनुसार "श्री" शब्द का मुख्यार्थ महात्रिपुरसुन्दरी ही है "श्रयते परब्रह्मणि या साफी:। त्रिपुर सुन्दरी की चिरकाल आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किया गया है उनमें ही "श्री" शब्द से ख्याति प्राप्त करने का भी एक वरदान मिला है तब से "श्री" शब्द का अर्थ महाकाली होने लगा। अर्थात् "श्री" शब्द का महालक्ष्मी अर्थ गोण है। "श्री" अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की प्रतिपादिका विद्या-मन्त्र ही "श्री विद्या" है। वाच्यवाचक, का अभेद मानकर इसकी मंत्र की अधिष्ठात्री देवी भी "श्री विद्या" कही जाती है। सामान्यतः "श्री शब्द श्रेष्ठता

1- क्षीरोद मथनाज्जाता जगत्सौभाग्यरूपिणी।
त्रैलोक्य रक्षणार्थं सा विष्णुवक्षः स्थलस्थिता।
कृष्णाष्टम्यां भाद्रपदे कोलासुरनिकृन्तनी।
एतस्मिन्नेव समुत्पन्ना महामातङ्गिनी कला।।

शक्तिलक्ष्मन, लक्ष्मी प्रादुर्भाव।

का बोधक है । श्रेष्ठ पुरुषों के नामों के पहले "श्री" शब्द का प्रयोग किया जाता है । श्रेष्ठत्व के तारतम्यानुसार 3·4·5·6 बार तक "श्री" शब्द प्रयोग के लिए शास्त्रों में प्रमाण पाये जाते हैं । आजकल तो सम्प्रदाचार्यों के नामों के पीछे 1008 बार तक "श्री" का प्रयोग किया जाता है । एतावता यह सिद्ध हुआ कि "श्री" शब्द श्रेष्ठता तथा पूज्यता का सूचक है । विभिन्न देवताओं की आराधना करने से पशु, पुत्र, धन,धान्य स्वर्ग आदि फल प्राप्त होते हैं । ऐसा शास्त्रों में कहा है । "श्री-विद्या" के उपासकों के लौकिक फल तो मिलते ही हैं साथ ही आत्मा ज्ञान का जो फल श्रुति में तरति शोकमात्मवित्" शोकोत्तीर्णतारूप कहा है । श्री विद्यापासकों को भी वही फल "पाशाङ्-कुशाधनुर्बाणा, य एनां वेद स शोक तरति," यह आथर्वण देव्युपनिषद् श्रुति में दो बार कहा है अर्थात् आत्मज्ञानी को प्राप्त होने वाली शोकोत्तीर्णता श्रीविद्यापासकों को निश्चयेन प्राप्त होती है । अतः फलैक्य से "श्री विद्या" ही ब्रह्म विद्या है यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है। योग से ज्ञान और ज्ञान से योग की प्रवृत्ति होती है । क्योंकि योग रहित ज्ञान या ज्ञान-रहित योग से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती । वह ब्रह्मविद्या ही श्रीविद्या है उसके दो अंग माने गये हैं । कादि विद्या और हादिविद्या । उनके दो आदि अक्षर शिव और शक्ति के प्रतीक हैं । इस प्रकार शिव का अक्षर शक्ति के अक्षर के योग से ही पूरा मंत्र बनाने में समर्थ होता है ।

तृतीय अक्षर सदाशिव तत्व का, चतुर्थ अक्षर महेश्वर का और पंचमाक्षर शुद्ध विद्या का प्रतीक होता है । दोनों अक्षरों के बाद का अर्थात् तृतीय अक्षर काम का और चतुर्थ शिव का वाचक है । पंचमाक्षर पृथिवी से सम्बन्धित है । इस प्रकार द्वितीयकूट ईश्वर जीव और शिव का भेद प्रदर्शित करता हुआ, विद्या-कला का सूचक है । तृतीय कूट प्रतिष्ठा और निवृत्ति का सूचक शाक्त कूट है इस प्रकार कादि विद्या को प्रभव मंत्र समझना चाहिए ।

श्री विद्या के अक्षरों को चिन्तामणि के दाने और मन्त्र को चिन्तामणिमाल समझना चाहिए। देवी के लिए न कोई धनिक है, न कोई दरिद्री, फिर भी दरिद्र जिज्ञासु पर उनकी कृपा का आधिक्य स्वाभाविक है, क्योंकि वे निष्काम उपासकों को मोक्ष और सकाम उपासकों को इच्छित कामनायें प्रदान करने में समर्थ है। धनिक उन्हें प्रसन्न करने के लिए अनेक साधन सहज ही जुटा सकते हैं, परन्तु निर्धन के लिए साधनों का जुटा पाना संभव नहीं होता और उसे भगवती की कृपा के लिए बिना साधन ही प्रयत्न करने होते हैं।

"एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी पाशा कुशधनुर्बाणधरा एषा श्रीमहाविद्या" (अर्थात् काम, योनि, कामकला इत्यादि जो आदि विद्या है, वही) यह आत्म शक्ति है, यही विश्व को मोहित करने वाली पाश, अंकुश, धनुष, बाण धारण करने वाली यही श्री महा विद्या है, यथार्थ रूप में तो लक्ष्मी का एकाक्षर बीज मंत्र "श्री" ही नित्य है क्योंकि उसी के कारण सम्पूर्ण विद्याओं को श्री विद्या कहलाने का गौरव प्राप्त है।

षोडशी विद्या भी श्री विद्या का ही एक रूप है। उसके भी अनेक अवान्तर भेद, कामादि रमादि, मायादि, वागादि, तारादि षोडशी के नाम से होते हैं जिसने जिस उद्देश्य से उपासना की उसने उसी नाम का प्रयोग किया।

श्री विद्या गायत्री का ही एक तांत्रिक स्वरूप है गायत्री के प्रथम चरण में स्पष्ट कहा है कि वह निर्गुण ब्रह्म ही विश्व का आदि कारण सविता एवं वरण करने के योग्य है दूसरे चरण में कहा गया है कि वह ध्यान का विषय न होने से वरेण्य है, अतः उसका तेजोमयी सत्ता भर्ग का ध्यान करना चाहिए। तीसरे चरण में प्राण रूप रुद्र की सहायता से ब्रह्म पद की प्राप्ति की जिज्ञासा व्यक्त की है इससे सिद्ध होता है कि श्रीविद्या स्वरूपा ब्रह्मविद्या गायत्री से सम्बन्धित है।

शिव के साथ शिव-शक्ति की उपासना आवश्यक है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव ने भी जो श्रीविद्या की उपासना की थी । उन विद्याओं को ब्राह्मी, वैष्णवी और शांकरी कहा जाता है ।

श्री विद्या का सूक्ष्म शरीर उसके मंत्र और स्थूल शरीर श्रीचक्र है, जिसमें शिव शक्ति महात्रिपुर सुन्दरी निवास करता है ।

उपनिषदों में दो प्रकार की विद्या का निरूपण मिलता है ।

1- अपरा विद्या

2- परा विद्या

अपरा विद्या के अन्तर्गत संसार के सभी ज्ञान-विज्ञान आ जाते हैं, किन्तु इस अपरा से मात्र प्रेयस् की सिद्धि होती है । श्रेयस की सिद्धि इसमें नहीं होती । श्रेयस् की सिद्धि परा विद्या से होती है यह परा विद्या ही वेदान्त है । यह ब्रह्म विद्या है, अध्यात्म विद्या है यह आत्म विद्या है अपरा विद्या के अन्तर्गत आने वाले समस्त शास्त्र, ज्ञान-विज्ञान, अविद्या जन्य है । मात्र परा विद्या ही विद्या है । शेष सब कुछ अविद्या ।

"श्री विद्या" ही आत्म शक्ति है -

"श्री विद्या" ही आत्मशक्ति है, आत्मशक्त्युपासना ही श्रीविद्योपासना है । हारितायनसंहिता, त्रिपुरारहस्य, माहात्म्य खण्ड के चतुर्थ अध्याय में महामुनि संवर्त ने श्री परशुराम जी के "संसार-भय-पीडित" के लिए शुभ मार्ग कौन सा है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा है - "गुरूपदिष्ट मार्ग से स्वात्मशक्ति महेश्वरी त्रिपुरा की आराधना कर उसकी कृपा के लेश को प्राप्त करते हुए सर्वसाम्याश्रयात्मक स्वात्म-भाव को प्राप्त करो । दृश्यमान सब-कुछ आभास-मात्र स्वशक्ति- विलास ही है । ऐसा समझकर जगद्गुरुसमापत्ति को प्राप्त होते हुए निर्भय तथा निःसंशय

होकर हे परशुराम । तुम भी मेरे ही समान यथेच्छ संचरण करो । सर्वभावों में स्वात्मा को और स्वात्मा में सर्व भावों को देखते हुए पिण्डाहम्भाव छोड़कर समवेतभाव के आसन पर स्थिर रहो । स्वदेह को वेद्य समझते हुए वेत्ता पर सर्वदा दृष्टि रखने वाले को इस संसार मार्ग में कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता"।[1] स्वतन्त्र तन्त्र में कहा है - "स्वात्मा ही चित्स्वात्मिका ललिता देवी है, उसका "विमर्श" ही उसका रक्तवर्ण है और इस प्रकार की भावना ही उसकी उपासना है"।

कामेश्वर-कामेश्वरी और उनके उपासक का स्वरूप -

स्वात्मशक्ति "श्रीविद्या" ही ललिता-कामेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी है जो महाकामेश्वर के अंक में विराजमान है । उपाधिरहित शुद्ध स्वात्मा ही महाकामेश्वर है । सदानन्द रूप उपाधि पूर्ण स्वात्मा ही पर-देवता महात्रिपुरासुन्दरी ललिता है।

1- पुराभण्डासुरो नामसर्वदैत्यशिखामणिः ।
विशुक्रश्च विषङ्गश्च भ्रातरौ द्वौ बभूवतुः ।।
शौर्यवीर्यार्थियोन्मत्तौ ब्रह्माण्डलयकारकौ ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च दृष्ट्वार्त दीप्ततेजसम् ।।
पलायनपराः सन्तः स्वे स्वेधाम्नि सदा वसन्।
भ्रष्टाधिकारास्त्रिदशाः यक्षाः सिद्धादयस्तथा ।।
केचित् पातालगर्भस्थाः केचिदम्बुधिवारिषु ।
एतस्मिन्नन्तरे ज्ञात्वा परापरोनपासिनी ।।
या देवी परमाशक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ।
चिदग्निकुण्डात् सम्भूता इन्द्रप्रस्थे महाभवे ।
जघान भण्ड दैत्येन्द्रं युद्धे शुल्कशारदा ।।

-ब्रह्माण्ड पुराण

निष्कर्ष यह है कि "स्व" अर्थात् उपासक का आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी वह सदानन्द उपाधिपूर्ण हो ललिता है । सत्त्व, चित्त्व, आनन्दस्वरूप धर्मत्रय निर्मुक्त धर्ममात्र वही स्वात्मा श्री विद्या ललिता का आधारभूत महाकामेश्वर है । पर-देवता स्वात्मा से अभिन्न होने पर भी अन्तः करणोपाधिक आत्मा उपासक है और सदानन्दोपाधिकपूर्ण आत्मा उपास्य है । सर्वथा निरुपाधिक आत्मा महाकामेश्वर है ।

श्री विद्या का पूजन -

शुक्लपक्ष में कामेश्वरी से विचित्रा पर्यन्त नित्याओं का तथा कृष्णपक्ष में विचित्रा से कामेश्वरी तक नित्याओं का त्रिकोण की रेखाओं के पास 5-5 के क्रम से तथा वामावर्त क्रम से (पूजन करना चाहिए । मध्य (बिन्दु) में षोडशी का मूलमंत्र से पूजन करना चाहिए ।

पूजा विधि -

एक एक स्वर बोलकर (वक्ष्यमाण) नित्याओं का ।-। मंत्र बोलना चाहिए और फिर कामेश्वरी आदि का नाम लेकर "नित्या श्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः "लगाकर पूजन करना चाहिए । बिन्दु ऊपर त्रिकोण में वामावर्त क्रम से इनकी कल्पना करनी चाहिए तथा बिन्दु को अन्तिम मानना चाहिए । दाहिने हाथ से (पूजयामि कहते समय) पुष्पादि एवं बाये हाथ से (तर्पयामि कहते समय) जल या गाय का दूध चढ़ाना चाहिए । कुछ आचार्यों का कहना है कि अदरख के साथ जल चढाना चाहिए । त्रिकोण (की रेखाओं) के पास 5-5 के क्रम से तथा

वामावर्त क्रम से इनका पूजन करना चाहिए ।

नित्याओं के मन्त्र कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताकिनी विजया, सर्वमङ्गला ज्वालामालिनी, विचित्र, (त्रिकोण में इन 15 नित्याओं का पूजन कर) मध्य बिन्दु में मूल मंत्र से 16वीं महात्रिपुर सुन्दरी का पूजन करना चाहिए ।

बिन्दु एवं त्रिकोण के बीच की 3 पंक्तियों में गुरुओं का पूजन करना चाहिए ।

आम्नाय देवताओं का पूजन करना चाहिए । इसके बाद मध्य में तथा पूर्व आदि दिशाओं पंच पंचिकाओं का पूजन करना चाहिए । मध्य में आद्या का तथा पूर्व आदि दिशाओं में अन्य चारों का पूजन करना चाहिए ।

पंचिकाओं के पांचों वर्गों में आद्या श्रीविद्या ही बतलायी गयी है । श्री विद्या, लक्ष्मी, महालक्ष्मी, त्रिशक्ति एवं सर्वसाम्राज्या ये 5 लक्ष्मी कही गयी है ।

1- शुक्लपक्षे यजेन्नित्याः कामेश्वर्यादिषोडश ।
कृष्णपक्षे विचित्राद्याः कामेश्वर्यवसानकाः ।। 2 ।।
षोडशीं च यजेन्मध्ये वक्ष्ये तद्यजनक्रमम् ।
एकैकं स्वरमुच्चार्य नित्यामन्त्रं समुच्चरेत् ।। 3 ।।
कामेश्वर्यादिनामान्ते नित्याश्रीपादुकां पठेत् ।
पूजयामि तर्पयामि हृदयं प्रोच्य पूजयेत् ।। 4 ।।
बिन्दुं परित आवाह्य त्रिकोणेऽन्तर्गतामिमम् ।
दक्षहस्तेन पुष्पादिवामेनाम्भो विनिःक्षिपेत् ।। 5 ।।
केचिदाहुरिहाचार्या आर्द्रकेण जलं क्षिपेत् ।
वामावर्तेन सम्पूज्याः कोणभागेषु पंक्तशः ।। 6 ।।

मंत्र महोदधि-पृष्ठ0353 ।

} यह आद्य पंचक लक्ष्मी संज्ञक है } श्रीविद्या, पर ज्योति, परानिष्कलाम्भवा, अजपा एवं मातृका इन पांचों का यह पंचक कोश संज्ञक है । श्रीविद्या, त्वरिता, पारिजातेश्वरी, त्रिपुरा, एवं पंचबाणेशी इनका यह पंचक कल्पलता संज्ञक है । श्रीविद्या अमृतपीठेशी, सुधाश्री, अमृतेश्वरी एवं अन्नपूर्णा इनका यह पंचक कामधेनु संज्ञक है ।

श्रीविद्या, सिद्धलक्ष्मी, मातंगी, भुवनेशी एवं वाराही इन पांचों का यह पंचक मुनियों ने रत्न संज्ञक कहा है ।

श्रीविद्या का मध्य में मूलमंत्र से पूजन करना चाहिए । और अन्यों का क्रमशः पूर्व आदि चारों दिशाओं में पूजन करना चाहिए । अब उनके मन्त्र-लक्ष्मी पंचक की देवियों के मंत्रों का उद्धार -

वामनेत्र एवं इन्दु सहित वह्निपुतककेश {श्रीं} यह एक अक्षर का लक्ष्मी का मंत्र है इससे {पूर्व में} लक्ष्मी का पूजन करना चाहिए ।

तार {ॐ} पद्मा {श्रीं} शक्ति {ह्रीं} एवं कमला {श्रीं} फिर "कमले कमलालये" एवं दो बार प्रसीद {प्रसीद प्रसीद} फिर लक्ष्मी {श्रीं} माया {ह्रीं} पद्मा {श्रीं} एवं ध्रुव {ॐ} और अन्त में "महालक्ष्म्यै नमः" लगाने से 28 अक्षर का महालक्ष्मी का मन्त्र बनता है । इससे श्री विद्या के दक्षिण में महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिए । ।

लक्ष्मी {श्रीं} माया {ह्रीं} एवं मनोजन्मा {क्लीं} यह तीन अक्षर का त्रिशक्ति का मन्त्र कहा गया है । इससे पश्चिम में स्थित त्रिशक्तिः का पूजन करना चाहिए ।

भृगु {स} आकाश {ह} फिर क, ल एवं माया {ह्रीं} इस प्रकार "सहक्लह्रीं" इस कूट को पद्मालया {श्रीं} से संपुटित करने पर तीन अक्षर का सर्वसाम्राज्य का मंत्र बनता है । इससे उत्तर में स्थित सर्वसाम्राज्य का पूजन करना चाहिए ।

टिप्पणी - लक्ष्मी का मन्त्र-श्रीं

महालक्ष्मी का मन्त्र- ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसाद-
प्रसाद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।

त्रिशक्ति का मन्त्र - श्रीं ह्रीं क्लीं ।

सर्वसाम्राज्य का मन्त्र - श्रीं स्ह्क्ल्ह्रीं श्रीं ।

इनके उक्त मन्त्रों के साथ "श्रीपादुकां पूजयामि नमः" लगाने से इनके पूजन मन्त्र बन जाते है, यथा: ॐ ह्रीं हुं खेचछेक्षः स्त्रीं हूं क्षे ह्रीं फट, त्वरिता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि । इत्यादि ।

बीज मंत्र का अर्थ -

श्रीं - श = महालक्ष्मी, र = धन सम्पत्ति, ई = तुष्टि, नाद = विश्वमाता, बिन्दु = दुखहरण । इस प्रकार श्री बीज या लक्ष्मी बीज का अर्थ होता है - धन सम्पत्ति एवं तुष्टि-पुष्टि की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी मेरे दुःखों को दूर करें ।

लक्ष्मी का अन्य देवताओं से सम्बन्ध

लक्ष्मी का तुलसी एवं शालाग्राम से सम्बन्ध -

ब्रह्मवैवर्त्त में तुलसी का उपाख्यान विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है ।[1] इसी प्रसंग में वर्णित है कि महासुर शंखचूड को मारने के लिए हरि ने तुलसी से छल किया ।[2] हरि ने शंखचूड का रूप धारण किया[3] और तुलसी के साथ रमण किया

1- ब्रह्म वै० 2/13 से 23 अध्याय तक ।

2- ब्रह्म वै० 2/21/23

3- वही 20-7-12

4- वही 2/21/16

तुलसी ने सतीत्व भंग होने के कारण हरि को शाप दिया कि हरि पाषाण हो जाय -

हे नाथ ! ते दया नास्ति पाषाण-सदृशस्य च ।
छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः ।।
पाषाण-सदृश स्त्वं च दयाहीनो यतः प्रभो ।
तस्मात्पाषाण रूपस्त्वं भुवि देवोभवाधुना ।।[1]

हरि ने शाप ग्रहण कर तुलसी को आशीष दिया । तुलसी ने निजगात्र-परित्याग कर दिया । किन्तु हरि ने कहा कि तुलसी ! तुम्हारा शरीर नदी रूप में गण्डकी रहेगी और उसके किनारे तुलसी केशों से तुलसी वृक्ष का उद्भव होगा ।[2] हरि ने अपने लिए बताया कि वे गण्डकी तट पर शैल (प्रस्तर) रूप में स्वयं उपस्थित रहेंगे।

अहं च शैल रूपेण गण्डकी तीर सन्निधौ ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ।।[3]

यह शालिग्राम- शिला वज्रकीटोंसे बिंधी अतः चक्रयुक्त होती है ।

वज्रकीटाश्च कृमयो वज्रदंष्ट्राश्च तत्र वै ।
तच्छिला कुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ।।[4]

शालिग्राम शिला का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि जहाँ यह शिला होती है वहाँ हरि, लक्ष्मी तथा सभी तीर्थ निवास करते हैं[5] ।

1- ब्रह्मवै0 2/21/23-24

2- वही 2/21/32-33

3- वही 2/21/58

4- ब्रह्म वै0 2/21/59

5- वही 2/21/77

ब्रह्मवैवर्त में प्रथम नाम शालिग्राम-शिला का लक्ष्मी-नारायण रखा है । शिव पुराण से ज्ञात होता है कि ये लक्ष्मी नारायण आदि नाम विशेष प्रसिद्ध है ।

शालिग्राम विष्णु के ही अवतार हैं तुलसी जी लक्ष्मी की अवतार है । शालिग्राम तुलसी का सम्बन्ध है । तुलसी और लक्ष्मी एक ही रूप हैं । दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं ।

वास्तव में लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी में चारों हरि की प्रिया है[1] । तप का फल व्यर्थ नहीं जाता है । तुलसी गोलोक में पुनः पहुँची । गोप के रूप में शंख भी गोलोक-निवासी हुआ ।

ब्रह्म वै० में विष्णु, शिव, कृष्ण एवं लक्ष्मी का विचित्र सामंजस्य है । विष्णु की सुरक्षात्मक प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई पड़ती है । शिव पुराण, रुद्र संहिता सती खण्ड के उन्नीसवें अध्याय में भी शिव के कोप से ब्रह्मा को विष्णु ने बचाया है ।

<u>सीता और लक्ष्मी -</u>

राम और विष्णु का अभिनत्व हो जाने पर सीता और लक्ष्मी की अभिन्नता स्वतः सिद्ध है । उसे सिद्ध करने के लिए प्रयास की आवश्यकता नहीं । सीता चूंकि कृषि की देवी है कृषि का सम्बन्ध लक्ष्मी से भी है धान्य लक्ष्मी के रूप में इसलिए सीता धान्य लक्ष्मी हुई। द्रष्टव्य सीतोपनिषद् । इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि विष्णु और लक्ष्मी का साथ नित्य है । लक्ष्मी की सर्वव्यापकता

1- ब्रह्मवै० 2/21/102 ।

का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनका तिरोभाव कभी नहीं होता । वे जगज्जननी नित्य है । जिस प्रकार श्री विष्णु भगवान् सर्वव्यापक हैं वैसे ही यह भी हैं । विष्णु अर्थ है और ये वाणी हैं, हरि न्याय हैं, और यह नीति है, विष्णु बोध हैं और यह बुद्धि है, वह धर्म है और यह सत्कर्म है । भगवान् श्रीधर चन्द्रमा है और लक्ष्मी उनकी अक्षय कान्ति है । श्री गोविन्द समुद्र है और लक्ष्मी जी उनकी तरंग । भगवान गदाधर आश्रय है और लक्ष्मी जी शक्ति है[1]। उनके विविध अवतारों का भी पुराणों में उल्लेख हैं ।

कहा गया है कि जगत् स्वामी देवाधि देव जनार्दन जैसे बार-बार नाना प्रकार से अवतार लेते हैं, उनकी सहायिका श्री या लक्ष्मी देवी भी वैसा ही करती है । हरि जब आदित्य हुए थे, लक्ष्मी तब फिर कमल से उत्पन्न हुई थीं, जब भार्गव राम हुए थे तब यह धरणी बनी थी । राघव के लिए यह सीता बनीं और कृष्ण के लिए रुक्मिणी । अन्य दूसरे अवतारों में भी यह विष्णु की सहायिका रही है । यह देवत्व में देवदेहा और मनुष्यत्व में मानुषी बनकर विष्णु के देह के अनुरूप आत्मतनु ग्रहण करती है ।[2] इसी प्रकार के अन्य विविध प्रमाणों का उल्लेख न कर हम इतना ही कह देना ठीक समझते हैं कि वैष्णव धर्म में सीता और लक्ष्मी का अभिन्नत्व सर्वमान्य था और हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल के कवियों ने उन्हें अभिन्न भाव से ही ग्रहण किया है । इस पुराण-साहित्य के अतिरिक्त लोक-साहित्य में भी उन्हें लक्ष्मी से अभिन्न ही समझा गया । भास कवि

1- विष्णु पुराण, 1/8/15-32

2- विष्णु पुराण, 1/9, श्लोक 142-145 ।

ने "अभिषेक" नाटक में स्पष्ट शब्दों में दोनों की अभिन्नता को स्वीकार किया है -

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता ।।

विष्णु का लक्ष्मी से सम्बन्ध -

विष्णु की पत्नी लक्ष्मी का भी विशेष महत्व एवं मनोरथदायी प्रभुत्व स्वीकार किया गया है । लक्ष्मी-स्तव-कवच और पूजन का सांगोपांग वर्णन किया गया है[1]। विष्णु का बैकुण्ठ लोक लय-काल में शून्य किन्तु सृष्टि काल में जरा-मृत्यु-विहीन चतुर्भुज-पार्षदों से सुसेवित लक्ष्मी-नारायण से सुशोभित होता है[2]। विष्णु की पत्नी महालक्ष्मी बैकुण्ठ में पति सेवा, परायण रहती हैं[3]। विष्णु श्री-निवास एवं श्री के परम भण्डार हैं । ये श्री को प्रसन्न करने वाले तथा इतने मनोहर हैं कि अपनी मुख-द्युति से शरच्चन्द्र प्रभा को मात करते हैं । ये अपने सौन्दर्य से कामदेव के भी सौन्दर्य को नत करते हैं[4]।

आज जन-साधारण विष्णु और लक्ष्मी के साहचर्य में अटूट विश्वास रखता है और उसे वैदिक काल की देन मानता है पर वस्तु स्थिति एकदम ऐसी ही नहीं है । वैदिक विष्णु और श्री या लक्ष्मी के दाम्पत्य सम्बन्ध के उल्लेख वेदों में नहीं मिलते । "अवतारवादी विकास की दृष्टि से अवतार धारण-कर्ता

1- ब्रह्म वै0 3/22
2- वही 1/2/10-13
3- वही 2/1/25
4- ब्रह्म वै0 1/3/7-9

विष्णु और लक्ष्मी के जिस युगल रूप का अस्तित्व पुराणों में लक्षित होता है उसका वैदिक विष्णु के साथ कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता क्योंकि वैदिक साहित्य में श्री या लक्ष्मी का स्वतंत्र अस्तित्व मिलता है । वैदिक साहित्य के मर्मज्ञों ने श्री और लक्ष्मी के स्वतंत्र रूपों को सौन्दर्य और धन की देवी माना है[1]।

जहाँ तक लक्ष्मी के दाम्पत्य का प्रश्न है, वहाँ यह सम्बन्ध विष्णु की अपेक्षा ईश और इन्द्र से अधिक स्पष्ट होता है । इसके विपरीत विष्णु का सम्बन्ध पृथक् अस्तित्व वाली एक वैदिक देवी सिनी वाली से विदित होता है । अथर्ववेद की एक ऋचा में सिनीवाली के लिए "विष्णोः पत्नि" का प्रयोग हुआ है-

या विश्वलोन्द्रमसि प्रतीची सहस्त्रु काभियन्ती देवी ।

विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिंदेवि राधसेचोदयस्व।।

श्री जे0गोंदे ने शतपथ ब्राह्मण[2] के एक आख्यान के आधार पर विष्णु के पूर्व उनके सखा इन्द्र से श्री के सम्बन्ध का अनुमान किया है ।

इन्द्र और श्री का यह सम्बन्ध महाभारत में भी दृष्टिगत होता है । वहाँ अर्जुन को इन्द्र और द्रौपदी को इन्द्र की पूर्व आर्या लक्ष्मी कहा गया है- 'लक्ष्मी चैषां पूर्व-मेवोपदिष्टा माया येषा द्रौपदी दिव्य रूपा"।[3] शतपथ[4] में भी अर्जुन इन्द्र का गुह्य नाम बताया गया है -"अर्जुनो ह्वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम", महाभारत में इन्द्राणी द्रौपदी और लक्ष्मी, इन तीनों को अभिन्न कहा गया है ।

1- इन0 वि0 एथि0, पृ0 808

2- शतपथ ब्राह्मण - 3/4/2/1

3- म0 भा0, 1/196/34-35

4- श0ब्रा0 - 2/12/11

इससे स्पष्ट है कि पूर्वकाल में लक्ष्मी विष्णु की अपेक्षा इन्द्र पत्नी के रूप में प्रचलित थी[1]।

फिर विष्णु और लक्ष्मी के दाम्पत्य सम्बन्ध की धारणा इस प्रकार प्रचलित हुई कि ब्राह्मणकाल में जो नारायण "पुरुष" रूप में स्वरूपित था, उसे तैत्तिरीय आरण्यक[2] में "नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि, तन्नो विष्णु प्रचोदयात्" में विष्णु रूप से संबद्ध किया गया है और दूसरे स्थल पर तै० आ०[3] में "ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यै" में "ह्री" और लक्ष्मी को पुरुष की पत्नी कहा गया है। यजुर्वेद[4] में श्री और लक्ष्मी को पुरुष की पत्नी कहा गया है। कालान्तर में पुरुष, विष्णु, नारायण और वासुदेव के एक हो जाने पर श्री और लक्ष्मी भी विष्णु की पत्नी बन गई।

इस प्रकार विष्णु और लक्ष्मी की दाम्पत्य भावना वैदिक और पौराणिक काल के बीच की कही जा सकती है।

लक्ष्मी का अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध

1- सरस्वती और श्री अथवा लक्ष्मी का सम्बन्ध -

ये दोनों देवता मनुष्य के जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र में विद्यमान है। सरस्वती बौद्धिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक प्रगति की प्रतीक है और लक्ष्मी शारीरिक और भौतिक प्रगति की प्रतीक है। मनुष्य के अस्तित्व का उत्तम

1- म० का० ला० अ०, पृ० 382
   महाभारत-1/67/157
2- तैत्तिरीय आरण्यक-10/1/16
3- तै० आ०-3/13/2
4- यजुर्वेद - 31/22

विकास बहुत कुछ इन दो मुख्य देवताओं के परस्पर सम्बन्ध पर निर्भर है । लक्ष्मी और सरस्वती विष्णु की दो पत्नियों के रूप में पूर्ण एकताव समन्वय का परिचय देती है ।[1] ऐसा ही उल्लेख देवी भागवत पुराण में भी प्राप्त होता है । ब्र० वै० पु० में अन्यत्र यह भी उल्लेख है कि विष्णु के मुख में सरस्वती तथा हृदय में लक्ष्मी का वास है जिसके कारण वे सर्वज्ञ तथा लक्ष्मीवान् कहे जाते हैं ।[2] मत्स्य पुराण[3] और पद्मपुराण[4] में लक्ष्मी को सरस्वती के आठ रूपों में से एक कहा है । पद्म पुराण[5] और स्कन्द पुराण[6] में भी लक्ष्मी को सरस्वती का पर्यायवाची कहा है ।

1- लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि ।
प्रेम्णा समस्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसन्निधौ ।।{ब्र०वै० पु० 2·6·17 ।।

2- बिभ्रत सरस्वतीं वक्त्रे सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तुते ।
लक्ष्मीवानस्यतो लक्ष्मीं बिभ्रद्वक्षसि चानव ।। {ब्र०वै०पु०2/22·71·72

3- लक्ष्मीर्मेधा धरापुष्टिर्गौरी तुष्टाप्रभामतिः ।
एताभिः पाहि अष्टाभिस्तनुभिर्मर्या सरस्वती ।। {म०पु०64-9

4- पद्म पुराण - 5·22·184

5- त्वं धृतिस्त्वंमतिर्लक्ष्मीस्त्वं विद्या त्वं गतिः परा ।
त्वं श्रद्धा त्वं परा निष्ठा बुद्धिर्मेधा धृतिः क्षमा ।।{पु०पु05·27·116}
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं पवित्रं मतं महत् ।
संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।।
{प०पु० 5·27·118}

6- {स्क०पु० 6·64·22 ।

इसी प्रकार विष्णु पुराण[1] के लक्ष्मी स्तोत्र में "सरस्वती" "लक्ष्मी" के एक स्वरूप के रूप में वर्णित है। ब्रह्म पुराण के सरस्वती स्तोत्र[2] के कुछ श्लोकों और विष्णु पुराण के लक्ष्मी स्तोत्र[3] के कुछ श्लोकों में सरस्वती और लक्ष्मी के लिए एक जैसे विशेषण प्रयुक्त हुए हैं।

ऋग्वेद में भी लक्ष्मी का कुछ सम्बन्ध "वाक्" से मिलता है। यद्यपि उस समय तक लक्ष्मी का देवता रूप स्पष्ट नहीं हुआ था और इस शब्द का प्रयोग प्रायः शक्ति, विजय और कुशलता जैसे सद्गुणों के लिए हुआ है "फिर भी इससे इस सम्बन्ध के बाद के विकास का कुछ संकेत मिलता है।

1- त्वं सिद्धिस्त्वं सुधा स्वाहा स्वधा त्वं लोकपावनि ।
संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।।

विo पुo-1-9-117

2- पo पुo 5•27•117 व 118
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभना ।
आन्वीक्षिकी त्रयी विद्या दण्डनीतिश्च कथ्यते ।।

पoपुo 5•27•118

3- त्वं सिद्धिस्त्वं सुधा स्वाधा स्वधा त्वं लोकपावनि ।
संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।।
यज्ञ विद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने ।
आत्मविद्या च देवित्वं विमुक्तफलदायिनी ।।
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च ।। विoपुo117-118६।।9काoपुoपo

4- "सक्तुमिव तितउना पुनन्तो-भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि"।

लक्ष्मी-पूजा और स्वास्तिक -

लक्ष्मी पूजा के साथ स्वास्तिक का घनिष्ट सम्बन्ध है । दीपावली के दिन लक्ष्मी पूजा के अवसर पर व्यापारी अपनी बहियों में और गल्ले की पेटी पर स्वास्तिक चिन्ह ही बनाते हैं । इस अवसर पर दुकान पर शुभ-लाभ लिखा जाता है और स्वास्तिक का अंकन किया जाता है । कुछ विद्वानों का मत है कि स्वास्तिक भगवती लक्ष्मी का आधार यन्त्र है और श्री यन्त्र की भाँति यह भी श्रीलक्ष्मी का ही प्रतीक है । कुछ विद्वानों ने इसे कमल का पूर्वरूप भी माना है ।

स्वास्तिक का प्रयोग हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है । ये भारतीय पुरातत्त्व के प्राचीनतम् अवशेष हैं । हड़प्पा की खुदाई में ऐसी अनेक मुद्राएं प्राप्त हुई हैं । जिनमें स्वास्तिक की आकृतियाँ अंकित हैं ।

स्वास्तिक के अलंकृत और अनलंकृत दोनों रूप प्रचलित हैं । अलंकृत रूप में चारों कोष्ठकों में चार लघु बिन्दु रहते हैं । पूर्ण अलंकृत स्वास्तिक में मूल रेखाओं के शीर्ष पर चार लघु रेखाएं भी लगी होती हैं । यही पूर्ण अलंकृत स्वास्तिक पूजनीय-प्रतीक है ।

तृतीय अध्याय

रामायण, महाभारत, श्री भागवत चरित में लक्ष्मी का स्वरूप

रामायण, महाभारत, श्री भागवत चरित में लक्ष्मी

महाकाव्य काल में सबसे पहले रामायण फिर महाभारत का काल आता है । रामायण में भगवान् राम और सीता का वर्णन आता है । भगवान् राम को विष्णु का अवतार और सीता जी को लक्ष्मी का अवतार माना जाता है।

रामायण में भगवान् राम को स्वयं ईश्वर का अवतार माना है । उसी अवतार के रूप में भगवान् राम का आदर्शमय जीवन दर्शाया गया है ।

श्रीमद् भागवत् गीता में स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने को आदित्य गणों में विष्णु ज्योतियों में सूर्य, नक्षत्रों में राशि माना है[1] यथा-

आदित्यानामहं विष्णु ज्योतिषां रविरंशुमान इव इतियादि[2] ।।

सीता का लक्ष्मीत्व राम के विष्णुत्व का एक स्वाभाविक विकास प्रतीत होता है । सीता तथा लक्ष्मी की अभिन्नता का उल्लेख "वाल्मीकि रामायण" के एक अपेक्षाकृत अर्वाचीन सर्ग में पाया जाता है । जिसमें अग्नि परीक्षा के अवसर पर देवता आकर राम की विष्णु-रूप में स्तुति करते हैं {दे06, सर्ग 117-27} । इस सर्ग में राम, कृष्ण तथा विष्णु तीनों की अभिन्नता का भी उल्लेख किया गया है।

यह "वाल्मीकि रामायण " का एकमात्र स्थल है, जहाँ कृष्ण का नाम आया है । उत्तरकाण्ड में कुशध्वज की पुत्री वेदवती की कथा मिलती है, जिसके अनुसार वेदवती सीता के रूप में प्रकट होती है {सर्ग 17} । इस कथा की रचना

1- भीष्म पर्व - 34/41

2- रामायण - 7/99/7

उस समय की गई होगी, जब सीता तथा लक्ष्मी की अभिन्नता की भावना व्यापक नहीं हो पाई थी ।

सीता के लक्ष्मीत्व का उल्लेख दाक्षिणात्य पाठ के उत्तरकाण्ड के 37 वें सर्ग के बाद के प्रक्षिप्त सर्गों में भी मिलता है, लेकिन ये सर्ग अन्य पाठों में नहीं पाये जाते है[1]।

वाल्मीकि रामायण[2] के उत्तराकाण्ड में जो वेदवती की कथा मिलती है । वह भी उस समय उत्पन्न हुई होगी । इस वृत्तान्त में सीता के पूर्व जन्म का वर्णन किया गया है, अतः उसकी उत्पत्ति के समय सीता के लक्ष्मी के अवतार होने का सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं था । कथा इस प्रकार है -

"ऋषि कुशध्वज की पुत्री वेदवती नारायण को पतिरूप में प्राप्त करने के उद्देश्य से हिमालय में तप करती है। उसके पिता की भी ऐसी ही अभिलाषा थी । किसी राजा को अपनी पुत्री प्रदान करने से इनकार करने पर कुशध्वज का उस राजा द्वारा वध किया गया था । किसी दिन रावण की दृष्टि उस कन्या पर पड़ती है । उसके रूप-लावण्य से विमोहित होकर वह उसे उसके केशों से पकड़ता है। अपना हाथ असि के रूप में बदल कर वेदवती उससे अपने केशों को काटकर अपने को विमुक्त करती है । अनन्तर वह रावण को शाप देकर भविष्यवाणी करती है कि तुम्हारे नाश के लिए आयोनिजा के रूप में पुनः जन्मग्रहण करूंगी । अन्त में वह अग्नि में प्रवेश करती है ।

1- सीता के पूर्वजन्म की एक अन्य कथा गुणभद्र के उत्तरपुराण में मिलती है ।

7•37 प्र•सर्ग 3-4

2- वा० रा० उत्तर काण्ड- 17 सर्ग ।

तदनन्तर दूसरे जन्म में वह कन्या पुनः एक कमल से प्रकट हुई । उस समय उनकी कान्ति कमल के समान ही सुन्दर थी । उस कन्या को लेकर रावण अपने घर आया । वहाँ उसने मन्त्री को वह कन्या दिखायी ।। मन्त्री सर्वज्ञानी थी । उसने अच्छी तरह देखकर रावण से कहा- यदि यह सुन्दरी कन्या घर में रही तो आपके वध का कारण होगी । उस कन्या के मुख से "श्रीराम" यह सुनकर रावण ने उसे समुद्र में फेंक दिया । बाद में वह भूमि को प्राप्त होकर राजा जनक के यज्ञमण्डप के मध्यवर्ती भूभाग में जा पहुँची । वहाँ राजा के हल के मुखभाग से उस भूभाग के जोते जाने पर वह सती-साध्वी कन्या फिर प्रकट हो गयी ।[1]

यही वेदवती महाराज जनक की पुत्री के रूप में प्रादुर्भूत हो, विष्णु भगवान की पत्नी हुई है ।

इस प्रकार यह महाभागा देवी विभिन्न कल्पों में पुनः रावण वध के उद्देश्य से मर्त्यलोक में अवतीर्ण होती रहेगी । यज्ञवेदी-पर अग्निशिखा के समान हल से जोते गये क्षेत्र में इसका आविर्भाव हुआ है । यह वेदवती पहले सत्ययुग में प्रकट हुई थी । फिर त्रेतायुग आने पर उस राक्षस रावण के वध के लिए मिथिलावर्ती राजा जनक के कुल में सीता रूप से अवतीर्ण हुई । सीता (हल जोतने-से भूमि पर बनी हुई रेखा) से उत्पन्न होने के कारण मनुष्य इस देवी को सीता कहते हैं ।[2] यह सीता लक्ष्मी जी की अवतार मानी जाती है ।

1- वा०रा०उत्तरकाण्ड ।17 सर्ग-

सा चैव क्षितिमासाद्य यज्ञायतनमध्यगा ।

राज्ञो हलमुखोत्कृष्टा पुनरप्युत्थिता सती ।। 39 ।।

2- "एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत् कृतेयुगे । त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्यरक्षसः ।।43।।

उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः । सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते।।

वा०रा०उत्तरकाण्ड-17 सर्ग ।

माधवदेव कृत असमिया[1] बालकांड में सीता के जन्म कथा भूमिजा सीता तथा वेदवती की कथाओं का मिश्रित रूप है कथा निम्न है -

भगवान् ने राम के रूप में अवतार लेने की प्रतिज्ञा की थी; इसके बाद लक्ष्मी ने उनसे पूछ लिया था कि मैं क्या करूँ। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम जनक के यहाँ जन्म लो। बाद में लक्ष्मी पृथ्वी पर उतरकर एक पर्वत के शिखर पर बैठ गई। रावण उन्हें देखकर आसक्त हुआ। और नीचे उतरकर उनके पास आ पहुँचा। लक्ष्मी ने रावण को डाँटा- तुमको मारने के लिए भगवान् पृथ्वी पर उत्पन्न हो चुके हैं। यह कहकर वह सागर में कूद कर अंतर्धान हो गई। तब सागर में सोने का द्वीप ऊपर आया और लक्ष्मी उस पर विराजमान थीं। अनन्तर वसुओं ने आकर लक्ष्मी को आदरपूर्वक अपने गर्भ में धारण कर लिया। बाद में लोगों ने यज्ञ के लिए हल जोतते समय पृथ्वी में एक रत्नमय डिम्ब पाया तथा उसे द्वीप के पास के मिथिला नगर में ले गए। राजा जनक ने डिम्ब तोड़कर उसमें एक एक कन्या को निकाला[2]।

वाल्मीकि रामायण में सीता को पृथ्वी की पुत्री माना गया है। महाभागवत पुराण में सीता मन्दोदरी से उत्पन्न हुई थी।

सीता मंदोदरी गर्भ संभूता वारूणरूपणी।

क्षेत्रजा तनयाप्यस्य रावणस्य रघूत्तम ।। 64 ।।

सीता के बारे में कभी-कभी रावणात्मजा सीता पद्मजासीता, अग्निजा सीता, फल तथा वृक्ष से उत्पन्न सीता, दशरथात्मजा माना गया है। सीता किसकी

1- माधवदेव कृत असमिया रामायण बालकांड, अध्याय 32

2- माधवदेव कृत असमिया रामायण-बालकांड-अध्याय-26

पुत्री थी, इनकी उत्पत्ति के बारे में मतभेद है ।

अन्त में यही कह सकते हैं बाल्मीकि रामायण में सीता पृथ्वी से उत्पन्न जनक की पुत्री बताया गया है, सीता को कृषि की देवी भी कहा गया है । प्राचीन राम-कथा साहित्य के निरूपण से ज्ञात हुआ है कि रामायण के प्रक्षिप्त अंशों में तथा महाभारत के कई स्थलों पर रामावतार का उल्लेख मिलता है । युद्ध काण्ड के एक प्रक्षिप्त सर्ग में सीता को भी लक्ष्मी का अवतार बताया गया है । राम का विष्णु का अवतार बताया गया है । भुशुण्डी रामायण, महारामायण हनुमत्संहिता वृहत्कोशल खं, संगीत-रघुनन्दन आदि ग्रंथों में राम की रासलीला की कल्पना की गयी है । "वनयात्रा के समय राम-लक्ष्मण और सीता सहित चित्रकूट से आगे नहीं गये । ये स्वयं ब्रह्म रूप में अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता जी के साथ चित्रकूट में विहार करते रहे । इस विहार लीला में सेवा और व्यवस्था लक्ष्मण जी करते थे, जो जीव तत्त्व के प्रतिनिधि थे । चित्रकूट में आगे लक्ष्मी, नारायण और शेष उनके वेश में गये थे और ब्रह्म की आज्ञा से उन्होंने ही रावण का वध कर सीतारूप लक्ष्मी का उद्धार किया था । चित्रकूट में राम का यह विलास तब तक चलता रहा, जब तक विभीषण को राज्य देकर नारायण लक्ष्मी और शेष सहित पुनः चित्रकूट नहीं लौट आये । कृपा निवास जी ने स्वरचित रामायण में यह कथा विस्तारपूर्वक लिखी है । मधुराचार्य जी ने राज्याभिषेक के अनन्तर सीता, वनवास की घटना को इसी प्रकार राम की प्रकाशलीला माना है" ।[1]

1- राम-भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० 297

श्याम देश के राम कियेन में सीता का जन्म कथा विस्तार-सहित वर्णन किया गया है । दशरथ-यज्ञ के पायस का अष्टमांश खाकर मंदोदरी एक कन्या को जन्म देती है जो वास्तव में लक्ष्मी का अवतार है । विभीषण आदि ज्योतिषियों से यह जानकर कि यह कन्या मेरे वंश का नाश करेगी रावण उसे विभीषण को देता है । विभीषण उसे एक घड़े में रखकर नदी में फेंकवाता है । नदी में एक कमल उत्पन्न होता है जो घड़े का आधार बन जाता है लक्ष्मी की दिव्यशक्ति से यह घड़ा जनक के पास पहुँचता है । जनक उस समय वन में नदी के किनारे पर तप करते हैं । घड़ा उठाकर वह उसे वन ले जाते हैं तथा एक पेड़ के नीचे खोदकर यों प्रार्थना करते हैं- "यदि यह कन्या राजा के रूपमें नारायणावतार की रानी बनने वाली है, तो इस स्थान पर एक कमल उत्पन्न हो जो उस घड़े को ग्रहण कर सके ।" उसी क्षण एक कमल उत्पन्न होता है । जनक उस पर घड़ा रखकर और उसे मिट्टी से ढककर पुनः तपस्या करने जाते हैं । इस तपस्या में सन्तोष न पाकर जनक 16 वर्ष के बाद अपनी राजधानी लौटने का निश्चय करते हैं, किन्तु ढूढने पर भी वह उसे घड़े को कहीं भी नहीं पाते हैं । सेना बुलाई जाती है लेकिन सैनिक भी खोज में असफल हैं । अन्त में जनक हल चलाने जाते हैं और घड़ा अपने आपसे हलपद्धति में प्रकट होता है । इसमें एक अत्यन्त सुन्दर युवती पद्म पर बैठी हुई दिखाई पड़ती है । सीता से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता रखा जाता है । इस मिश्रित वृत्तान्त में गुण भद्रकृत उत्तर-पुराण तथा विदेशिया की सीता जन्म की कथाओं के समन्वय का प्रयत्न किया गया है । तथा साथ-साथ पद्मजा सीता के वृत्तान्त का भी सहारा लिया गया है ।

अध्यात्म रामायणकार भी राम को परम पुरुष और सीता को उनकी अनादि शक्ति मानते हैं । सीता मैं अपने मुखारविन्द से हनुमान से कहा है कि राम को सब उपाधियों से विनिर्मुक्त परम पुरुष और मुझे उनकी प्रकृति मैं ही उनकी मूल प्रकृति रूप में सृष्टि का उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली हूँ -

राम विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ।

मां विद्धिमूल प्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणाम् ।

तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ।। [1] ।2।

अध्यात्म रामायण[2] में वर्णन मिलता है कि देवताओं ने विष्णु भगवान से प्रार्थना की कि आप मनुष्य रूप धारण देव शत्रु अर्थात् रावण का वध कीजिये । तब विष्णु भगवान ने स्वीकार कर लिया था ।

प्रजापति कश्यप ही राजा दशरथ हुए और उन्हीं के यहाँ पुत्र रूप से पृथक्-पृथक चार अंशों में प्रकट होकर मैं शुभ दिनों में कौसल्या के और अन्य दो माताओं के गर्भ से जन्म लूँगा । ऐसा विष्णु भगवान ने कहा । उसी समय मेरी योगमाया भी जनक जी के घर में सीता रूप से उत्पन्न होगी ।[3]

1- अध्यात्मरामायण 1/32-34

2- अध्यात्म रामायण, बा का0 सर्ग-2

अतस्त्वं मनुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो ।। 24 ।।

3- अध्यात्म रामायण बाल0का0 सर्ग-2

योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा ।

इसी रामायण में ऐसा वर्णन मिलता है कि भगवान विष्णु रघुकुल में मनुष्य रूप से अवतार लेंगे और उनको योगमाया सीता रूप में और (उनकी सेवा करने के लिए) शेष जी लक्ष्मण के रूप में प्रकट होकर उनके अनुयायी हुए। भगवान् विष्णु के शङ्ख और चक्र ने भरत और शत्रुघ्न के रूप में अवतार लिया।

सीता के विषय में एक वृत्तान्त अध्यात्म रामायण[1] में मिलता है- महाराज जनक ने पुत्री जानकी के विषय में नारद ने जो बताया है वह यह है - जनक ने कहा- "एक बार मैं यज्ञ भूमि की शुद्धि के लिए हल जोत रहा था, उसी समय मेरे हल के सीता (अग्रभाग) से यह शुभ लक्षणा कन्या प्रकट हुई।

नारद जी कहते हैं कि इस सीता को मैं विष्णु भगवान की भार्या लक्ष्मी ही समझता हूँ। अध्यात्म रामायण[2] में राज रावण से कुम्भकरण ने कहा कि मैंने आपसे पहले ही कहा था कि राम साक्षात् परब्रह्म नारायण हैं और सीता जी योगमाया हैं, आप तो समझाने पर भी नहीं समझते हैं।

इसी रामायण में एक स्थल पर वर्णन आता है मन्दोदरी से रावण कह रहे कि मैं राम के साथ युद्ध करूँगा" और उनके शीघ्रगामी बाणों से आहत होकर विष्णु भगवान् के समीप पहुँच जाऊँगा। मैं राम को साक्षात् विष्णु और जानकी को भगवती लक्ष्मी जानता हूँ। राम के हाथ से मरकर मोक्ष को प्राप्त

1- अध्यात्म रामायण बा०का० सर्ग- 6

यज्ञ भूमि विशुद्धयर्थं कर्षतो लाङ्गलेन मे।

सीतामुखात्समुत्पन्ना कन्यका शुभलक्षणा ।। 59 ।।

2- अध्याय रा० युद्ध का० सर्ग 7

पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो नारायणः परः।

सीता च योगमायेति बोधितोऽपि न बुध्यसे ।। 58 ।।

करूँगा । इसलिए मैं सीता को बलपूर्वक तपोवन से ले आया था[1]। रावण सोच रहा है कि राम के हाथों से मरकर इस संसार सागर को पारकर मैं अब श्री हरि विष्णु भगवान् के समीप पहुँच जाऊँगा । कम्ब रामायण में ऐसा वर्णन मिलता है कि कोशल का देश प्रकृति की सुषमा से भरा था । कोशल की प्रजा बड़े सुख का जीवन बिताती थी । कोई दुःख या अभाव नहीं था । लोग विद्या-धन से सम्पन्न थे कोशल की जनता अपने राजा को बहुत आदर देती थी ।

इस देश की राजधानी अयोध्या थी । बड़ी विशाल नगरी थी । अमरावती का सौन्दर्य भी इसके सामने फीका लगता था ।

अयोध्या में "लक्ष्मी" का निवास था । हर कहीं रत्नदीप जलते थे । स्त्री-पुरुष बड़े आनन्द से रहते थे । कोशलदेश के राजा का नाम दशरथ था । राजा दशरथ के पुत्र नहीं थे इसलिए वे दुःखी थे । उधर देवतागण असुरों के आतंक से पीड़ित होकर शङ्कर के पास गये फिर ब्रह्मा के पास गये । उसके पश्चात् विष्णु भगवान ने उनकी प्रार्थना सुनकर कहा-"आप दुःखी न हों मैं आपका कष्ट दूर करने के लिए अवतार लूँगा । राम के रूप विष्णु भगवान ने सीता के रूप में लक्ष्मी जी ने अवतार धारण किया । जिससे "राक्षसों" के उत्पात का अन्त होना है और दशरथ की सन्तान कामना भी पूरी होगी ।

1- वा०रा०यु० का० सर्ग 10

घातयित्वा राघवेण जीयामि अगोचरः ।
रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः क्षताङ्गकः ।।56

विदीर्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम् ।
जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम्।

ज्ञात्वैव जानकी सीता मयानीता वनाद्बलात् ।।57

रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम् ।।

एक बार विद्याधरी ने लक्ष्मी का स्तवन किया[1]। लक्ष्मी प्रसन्न हुई और उन्होंने अपने गले से एक माला उतार कर उसको दे दी। विद्याधरी ने उस माला को अपनी वीणा में बांध लिया जब वह ब्रह्मलोक में गयी तो वहाँ दुर्वासा मुनि ने उस माला को देखा और माँगा। विद्याधरी ने माला उन्हें दे दी। दुर्वासा बहुत प्रसन्न हो गये और माला लेकर देवलोक में पहुँचे। उस समय इन्द्र ऐरावत पर बैठकर जुलूस में निकल रहे थे। उसी समय मुनि ने वह माला तुरन्त इन्द्र को दे दी। इन्द्र ने इसे अपने हाथों में न लेकर अंकुश से ऐरावत पर डाल दिया। ऐरावत ने उसे नीचे गिराकर पैरों से कुचल डाला। दुर्वासा ने लक्ष्मी की माला की यह दुर्गति देखकर उनके शरीर में आग सी लग गयी। उन्होंने शाप दिया हे इन्द्र,तुम्हारा वैभव देखकर मैं प्रसन्न हुआ और जिस माला ने लक्ष्मी का वक्ष सुशोभित किया था, वह तुम्हें दे दी, किन्तु तुमने उसका अनादर किया। तुम्हारा यह सारा गर्व समुद्र में डूब जाये, इन्द्र का सारा वैभव नष्ट हो गया। ऐरावत कल्पवृक्ष अप्सरायें-श्वेत अश्व,नौ निधियाँ सब की सब समुद्र में डूब गयीं।[2]

देवता लोग मिलकर विष्णु भगवान के पास गये। उन्होंने एक उपाय बताया - आप लोग असुरों को मिलाकर क्षीर सागर का मन्थन करें। समुद्रमन्थन समुद्र से हजारों निधियाँ निकलीं। कौस्तुभमणि और लक्ष्मी को विष्णु ने अपने हृदय में धारण कर लिया। इस कम्बन रामायण में वर्णन है कि समुद्र मन्थन से लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई है। जिसको विष्णु भगवान ने अपनी प्रिया बना लिया।

1- कम्ब० रा० बा० काण्ड।

2- कम्ब० रामायण- बाल का० पृ० 15-16

सीता जी के जन्म के बारे में कम्बन रामायण में एक वृत्तान्त है -

राजा जनक एक बार यज्ञ के लिए चुनी हुई भूमि रत्नजटित हल से जोत रहे थे कि फल की नोक से उलटी मिट्टी के साथ एक कन्या भी निकल आयी। कन्या इतनी सुन्दर थी मानो क्षीर सागर से निकली लक्ष्मी हो। तब से वह कन्या महाराज की पुत्री के रूप में महल में पल रही है।

फिर वर्णन मिलता है कि राम का सीता के साथ विवाह के समय जनक जी ने राम से कहा-"मैं अपनी पुत्री सीता को तुम्हें सहधर्मिणी के रूप में दे रहा हूँ। तुम दोनों विष्णु और लक्ष्मी की भांति सुखी रहो। कहते हुए कन्यादान किया।

राम कथा का विकसित रूप "बाल्मीकि रामायण" में भी पाया जाता है। वह प्राचीन काल में ही बौद्धों में प्रचलित था।

रामायण की अपेक्षा महाभारत में कहीं अधिक कटुभाव, उग्रसौरसुकता, घोर-युद्ध अदमनीय विद्वेष आदि दिखलाई देते हैं। इसका कारण यह हो सकता है। कि महाभारत की रचना पश्चिम भारत में हुई थी। और रामायण की कोशल में जहाँ सभ्यता तथा संस्कृति का विकास आगे बढ़ चुका था। महाभारत[1] के रामोपाख्यान में ब्रह्मा देवताओं से कहते हैं कि विष्णु मेरे आदेश के अनुसार अवतार लेकर रावण की हत्या करेंगे।

तदर्थमवतीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः ।

विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स कर्मैतत्करिष्यति ।। 5 ।।

1- महाभारत- आरण्यक पर्व- 3,260

महाभारत में उपनिषद कालीन विश्वास सुरक्षित है । महाभारत को वेदों का गुह्यतम रहस्य और अन्य शास्त्रों का सार कहा गया है । महाभारत में उपनिषद कालीन विश्वास सुरक्षित है । इसमें उपनिषद ज्ञान को भी विशेष चर्चा है । वर्तमान रूप में प्राप्त महाभारत रुद्र व विष्णु रूपधारी कृष्ण को उपासना का प्रचार करता है ।

गीता के द्वारा वासुदेव भक्ति का प्रचारक भी महाभारत ही है इसमें भी सांख्य, योग, उपनिषद ज्ञान तथा भक्ति में अविरोध स्थापित किया गया है । कृष्ण को विष्णु का अवतार बनाकर मनुष्य के सम्पूर्ण रागों का उन्हें विषय बनाया गया है । इनके साथ उनकी पूजा पद्धतियाँ भी आई, जो निश्चित रूप से तान्त्रिक है । जिनमें देवता के रूप, वस्त्र, अस्त्र, शस्त्र, वाहन आदि का ध्यान तथा स्तोत्र, मंत्र तथा मूर्ति पूजा द्वारा उनकी उपासना प्रचलित थी । महाभारत में अनेक देवताओं का वर्णन इसमें मिलता है । वैसे मूल देवता 33 माना है ।

महाभारत काल में कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा आदि को भी देवियों के रूप में स्वीकार किया गया है[1]। वनपर्व में भानुमती दिन को देवी" रात का देवी" सिनावाली" अमावस्या" तथा कुहू शुद्ध अमावस्या" आदि को भी देवी माना गया है । महाभारत काल में कृष्ण, यम, ब्रह्मा अग्नि, इन्द्र, गङ्गा, दुर्गा, वरुण, सूर्य, स्कन्द भी आदि- महाभारत में भी शिव व देवी पूजा के साथ भय करता और शुद्ध का सम्बन्ध अधिक दिखाई पड़ता है । शल्य पर्व में देवी का परा या निर्घोषा वाणी के रूप में दार्शनिक विवेचन भी मिलता है[3]। तान्त्रिकों में शक्ति और शक्तिमान को एकता का विशेष प्रचार

1- महाभारत, आदि पर्व 66-15 ।

2- वनपर्व, अध्याय-21-3

3- शल्यपर्व, अध्याय-46

मिलता है, यह संक्षिप्त रूप में महाभारत में भी मिलता है ।

प्राचीन रामकथा-साहित्य के निरूपण से ज्ञात हुआ है कि रामायण के प्रक्षिप्त अंशों में तथा महाभारत के कई स्थलों पर रामावतार का उल्लेख मिलता है । युद्धकाण्ड के एक प्रक्षिप्त सर्ग में सीता को भी लक्ष्मी का अवतार बताया गया है ‖ सर्ग ।।7-27‖

अर्थात् नालायिर प्रबन्ध में भगवान् विष्णु तथा उनके अवतारों के प्रति असीम भक्ति तथा आत्म-समर्पण की भावना का हृदयस्पर्शी निरूपण मिलता है[1] । यद्यपि विष्णु की अवतार कृष्ण को अधिक महत्त्व दिया गया है परन्तु प्राचीनतम आल्वारों के स्तोत्रों में राम का उल्लेख है और परवर्ती आल्वारों में निरन्तर मिलता है ‖ आठवीं श0 ई0 ।

यद्यपि उनके भी अधिकांश पद कृष्णावतार सम्बन्धी हैं, परन्तु उनकी रचना का पांचवां अंश रामावतार से सम्बन्ध रखता है और इसमें राम के प्रति अत्यन्त कोमल और हृदयस्पर्शी भक्ति अंकित की गई है[2] ।

महाभारत में लक्ष्मी -

लक्ष्मी वर देने वाली देवी के रूप में तथा सुख-समृद्धि के प्रतीक के रूप में महाभारत में प्रतिष्ठित है । उसके पर्यायवाची नाम "श्री" का ही प्रयोग

1- दे0 टी0ए0 गोपीनाथ राव: हिस्टरी ऑव दि श्री वैष्णवस । पंचम आल्वार शठकोप की रचना ‖तिरुवायमोलि‖ का संस्कृत अनुवाद "सहस्रगीति"बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा तथा नवम आल्वार आण्डाल की रचना‖तिरुप्पावै‖ का संस्कृत-हिन्दी-अनुवाद "गोदा-गीतावली"पटना की बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रकाशित है ‖1967‖।

2- जर्नल श्री वेंकटेश्वर ओरियेंटल इंस्टट्यूट, तिरुपति-भाग3 ‖1942‖पृ0166।

अधिकतर हुआ है समुद्र मन्थन में धृतसदृश जल से पाराडुरवासिनी "श्री" का प्रादुर्भाव हुआ और उसके पश्चात् सुरा देवी और अश्व निकले[1]। संभवतः इसी कारण व्योमचारी तुरङ्‌ग उसका मानस पुत्र कहलाता था[2]। आदि- अवतरण में लक्ष्मी को ब्रह्मापुत्र धाता-विधाता की स्वसा माना गया है[3]। शान्तिपर्व के अनुसार विष्णु के ललाटाक्ष से प्रादुर्भूत कमल से देवी "श्री" का प्रादुर्भाव हुआ। वह धर्म की पत्नी थी और अर्थ की उत्पत्ति उससे हुई। व्यास ने द्रुपद को द्रौपदी और पाण्डुओं के पूर्वरूप का दर्शन कराया तदनुसार द्रौपदी लक्ष्मी थी और पाण्डव इन्द्र थे[4]। इन्द्रसभा में इन्द्र के साथ शची, महेन्द्राणी, श्री या लक्ष्मी थी[5]। एवं वरुण सभा में भी भगवती श्री उपस्थित थी[6]। स्कन्द पत्नी देवसेना लक्ष्मी कहलाती थी, क्योंकि स्कन्द के विवाह में लक्ष्मी ने स्वयं शरीरिणी होकर उसका आश्रय लिया था।[7] रुक्मिणी-श्री संवाद में श्री का वर्णन है- "नारायणस्याङ्‌क-गता त्रिलोकेश्वर- भूतकान्ता, महर्षिकन्या, पद्मसमानवर्णा, ज्वलन्ती, चन्द्रमुखी, प्रसन्ना" उस समय वह गरुड़ध्वज विष्णु के साथ आई थी और उसने स्वयं कहा था ये मूर्तिमती एवं अनन्य चित्त होकर सम्पूर्णभाव से निवास करती है[8] उसका नारायण

1- आदि 16·34

2- आदि 60,50

3- वही 60·50

4- आदि 189·29·33·

5- सभा 7·4

6- सभा 10·18

7- आरण्यक 218·47·48

8- अनुशासन 32·23·

पत्नी या विष्णुपत्नी के रूप में परिचय आदर्श प्रतिव्रताओं की सूची में भी मिलता है ।[1]

अन्य अंशों में श्री और लक्ष्मी केवल एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में प्रतीत होती है वह जिसका आश्रय लेती है उसी की पत्नी कहलाती है । इसीलिए वह जैसी विष्णुपत्नी थी वैसी ही धर्म की इन्द्र की एवं स्कन्द की पत्नी मानी जाती थी पतिव्रता स्त्री गृह की श्री थी[2] । कन्याएं लक्ष्मी कहलाती थी[3] । लक्ष्मी ने स्वयं कहा है-

नाहं शरीरेण वसामि देविनैवं मया शक्यमिहाभिधातुम् ।
भावेन यस्मिन्निवसामि पुंसि स वर्धते धर्मयशोऽर्थकामैः" ।।[4]

श्री के कारण राजा सत्कार पाता था और श्री ही उसके दोषों को छिपाती थी ।[5] अतः राजा जब उसका पति था, सुन्दर स्त्री को साक्षात् श्री या लक्ष्मी कहना साधारण बात थी[6] । इस प्रकार लक्ष्मी का अधिकतर वर्णन भावात्मक ही मिलती है ।

श्री का निवासस्थान समस्त मंगल वस्तुओं में माना जाता था । जहाँ मांगलिकता का अभाव होता था, वहाँ से लक्ष्मी चली जाती थी । श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में अपने विभूतियोग में कहा है-

कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा,धृतिःक्षमा"[7] ।

1- आदि 191•6

2- उद्योग 38•11 अनुशासन 81•15•

3- अनुशासन 50•20

4- अनुशासन 32•24

5- शान्ति 131•7

6- आरण्यक 55•20

7- भीष्म 32•34

इसके अनुसार अन्य भावों के साथ लक्ष्मी भी एक भाव के रूप में प्रकट हुई है । लक्ष्मी ने अपने निवास स्थान के विषय में कहा है कि "प्रगल्भ दक्ष, कार्यकुशल, क्रोधरहित, देवाराधनतत्पर, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, धर्मपरायण, क्षमाशील समर्थ पुरुषों में निवास करती हूँ । अकर्मण्य, नास्तिक, क्रूर, कृतघ्न, दुराचारियों से मेरा संबंध नहीं है ।" इसी प्रकार सत्यवादिनी सरल देव-द्विजपूजापरायण कान्त गृह-कृत्य दक्ष, कल्याणमयी पतिव्रताएं लक्ष्मी का निवास स्थान थीं । निर्लज्ज, गृहकृत्यों की उपेक्षा करने वाली दुराचारिणियां लक्ष्मी के लिए त्याज्य थीं । यान, कन्याएं, आभूषण, यज्ञ जलदमेघ नक्षत्रमाला कमल, गज, गोशाला आदि बहुविध स्थान एवं स्ववर्ण के कर्तव्यों में तत्पर लोग उसके निवास के योग्य थे ।[1] कन्याओं में लक्ष्मी नित्य ही निवास करती थी ।[2]

दैत्यराज बलि सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम धर्म आदि से जब विमुख हुआ तब उसके शरीर से निकल कर लक्ष्मी इन्द्र के पास नित्य निवास की इच्छा से गई । लक्ष्मी के गौरव का भार अकेला उठाने योग्य किसी को न देखकर इन्द्र ने लक्ष्मी का विभाजन चार भागों में करके उसका एक पद समस्त भूमावाओं का भार उठाने वाली भूमि, सर्वत्र प्रवाही जल, अग्नि एवं धर्मशील लोगों में क्रमशः स्थापित किया[3] । उत्थान शील और पतन के योग्य पुरुषों के लक्षण के निदर्शन में लक्ष्मी का एक वृत्तान्त है, जिसमें उसके वस्त्राभूषण आदि का भी वर्णन मिलता है ।

1- अनुशासन 32•6•22

2- अनुशासन 55-18

3- शांति 218•12 -28•

एक दिन इन्द्र और नारद ने आकाश में सूर्य के समीप एक द्वितीय ज्योति उदित होकर अपनी ओर आती हुई देखा । वह सूर्य और गरुड़ के मार्ग में प्रभापुंज सदृश विष्णु का विमान था जिसमें कमलदल पर विराजमान, सूर्य के समान तेजस्विनी, प्रज्वलित अग्नि शिखा की भांति प्रकाशमान, नक्षत्रों के समान चमकने वाले आभूषणों से सुशोभित , शुचिस्मिता, शुभ्र तेज से दीप्यमान, रत्नहार-धारिणी एवं केयूरधारिणी और शिखण्डिनी अर्थात् वेणी से युक्त लक्ष्मी बैठी थी, और उसके पीछे अप्सराएं थीं । इन्द्र और नारद के पास उपस्थित होकर उनके द्वारा अर्पित पूजा को स्वीकार करके उनके पूछने पर उसने अपना परिचय दिया कि "तीनों पुण्यमय लोकों के समस्त चराचर प्राणी मुझे प्राप्त करने की इच्छा करते हैं और सबको ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए मैं विकसित कमल में प्रकट हुई हूं । मेरा नाम पद्मा, श्री, पद्ममालिनी है और मैं ही लक्ष्मी, भूति, श्रद्धा मेधा, संतति विजिति, स्थिति, धृति, कान्ति सिद्धि, समृद्धि, स्वाहा, स्वधा, संस्तुति, नियति और स्मृति हूं । विजयी राजा के सेनाग्र, ध्वज, धर्माचरणशील लोग, राज्य, नगर संग्राम में न हटने वाले नरेन्द्र, बुद्धिमान्, सत्यवादी, विजयी, दानी, ब्राह्मण भक्त इत्यादि में मैं रहती हूं । पहले सत्य और धर्म से बंधकर मैं असुरों में निवास करती थी । अब वे धर्म से विमुख हुए । इसलिए उन्हें छोड़कर तुम्हारे पास आई हूं ।" लक्ष्मी ने दैत्यों का पूर्वकाल का धर्माचरण और वर्तमान अधर्म का वर्णन किया और कहा कि "मैं जहां रहती हूं वहां आशा, श्रद्धा, धृति, शान्ति, विजिति, संतति, क्षमा और जया या वृद्धि ये आठ देवियां जिन्होंने मुझे आत्मार्पण किया है और जो मुझे प्रिय है, रहती है"। हरिताश्व रथ पर बैठकर इन्द्र लक्ष्मी के साथ अमरावती गया । ऋषियों ने लक्ष्मी का स्वागत किया तब से वह स्थान समृद्धि और मंगल सम्पन्न हुआ ।[1]

1- शान्ति 221-11-93

फलश्रुति में कथन है कि लक्ष्मी की पूजा अर्चा के इस प्रसंग के पठन से कामनाओं की सिद्धि और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । गोपूजा के महत्त्व में कहा गया है कि लक्ष्मी की याचनानुसार गौओं ने उसे रहने के लिए अपानगोचर और मूत्र ये स्थान दिये । उसकी चंचलता के कारण प्रारम्भ में वे उसे स्थान नहीं देना चाहती थीं ।[1] इससे लक्ष्मी की चंचलता महाभारतकाल में भी प्रसिद्ध थी यह प्रतीत होता है ।

इस प्रकार विष्णु पत्नी कमलनिवासिनी चंचल लक्ष्मी महाभारत में प्रसिद्ध थी, किन्तु उसका स्वरूप अधिकतर भावात्मक था । आज भी यद्यपि लक्ष्मी की पूजा होती है, वह अधिकतर मांगलिकता तथा समृद्धि का प्रतीक ही मानी जाती है । अग्नि के वंश-विस्तार में अनेकानेक भिन्न हविष्यों के समर्पण के कारण अग्नि में आई हुई विविधता ही उनकी माताओं और पत्नियों की बहुसंख्य नामावलि का कारण है बृहस्पति भार्या, तारा, धर्मपुत्री सत्या, वीटा कुहू, राका, सिनीवाली, स्वाहा, सुपुत्रा, बृहद्भासा, निशा, रोहिणी, स्विष्टकृत्, भानुमती, रागा, अर्चिष्मती, हविष्मती, अनुमति, महामति, ऐसे नामों से भिन्न तिथियों हविष्य की पवित्र वस्तुओं एवं पुण्य समयों को ही देवी-देवताओं का रूप दिया गया है ।[2] कुहू, राका सिनीवाली[3] आदि नाम ऋग्वेद में भी प्रसिद्ध है ।[4]

1- अनुशासन अध्याय 128

2- आरण्यक अध्याय 208-209

3- शल्य 44-12.

4- ऋ0 दसवें मण्डल अग्निसूक्त ।

धर्म की दश पत्नियां "कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, मति" धर्म के द्वार थी।[1] इनकी भावात्मकता स्पष्ट है। धर्म पुत्र काम की भार्या रति शम की सीता[2] आदि में भी भावों को देवतास्वरूप माना गया है। लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री के साथ एवं आशीर्वाद में निर्दिष्ट देवियों की सूची में भी ऐसी भाव स्वरूप देवियों के नाम निर्देश है। यह भावात्मक देवियों का वर्ग भी बड़ा है।

अप्सराओं की मांगलिकता विख्यात है। सभी देव एवं उमा, लक्ष्मी जैसी देवियों के साथ, सब पुण्यवानों के साथ समस्त पुण्यस्थानों में एवं मंगल अवसरों पर अप्सराएं उपस्थित रहती था।

स्त्रियों के भी अवतार महाभारत के समय हुए थे जैसे लक्ष्मी का अवतार थी रुक्मिणी, इन्द्राणी का अंशावतार द्रौपदी, एवं सिद्धि, धृति और मति के अवतार थी कुन्ती, माद्री और गान्धारी।

पृथ्वी पर प्रकट होने वाले, मानवों से मिलने जुलने वाले इन देव-देवियों का स्वरूप परवर्ती युग की देवता की कल्पना से भिन्न है। देव-देवियां पूजा, अर्चा, आराधना के लिए ही होते हैं और भक्तों को संकटों से मुक्त करने तथा दुर्जनों को दण्ड देने के लिए अवतार लेते हैं या प्रकट होते हैं यही देव देवताओं का क्षेत्र परवर्ती क्षेत्र परवर्ती युग में सीमित हुआ था। ऐसे देव-देवियां महाभारत में भी है, किन्तु अल्प संख्या में। प्रायशः अधिकतर देव देवियां मानवों से अभिन्न हैं।

1- आदि 60·13·14

2- आदि 60·30·31

महाभारत का आधार वीर-गाथा है। भारतीय संस्कृति का एक आधार स्तम्भ महाभारत है। महाभारत में देवताओं के मन्दिर और प्रतिमाओं की पूजा के निर्देश मिलते हैं।[1] किन्तु मन्दिरों के भव्य वर्णन और देवप्रतिमाओं का विस्तृत परिचय उसमें उपलब्ध नहीं है किसी देवी की प्रतिमा के पूजन का निर्देश भी नहीं है। तीर्थ यात्रा पर्व में "देव्याःतीर्थ"गायत्र्याः स्थान" जैसे नाम हैं। वहाँ देवियों की मूर्तियाँ स्थापित थी, अथवा कन्यातीर्थ, बदरिपाचन जैसे तीर्थों की भाँति इन तीर्थों के नामों से वहाँ की गई तपस्या का निर्देश है यह स्पष्ट नहीं है। प्रतिमा पूजन की अपेक्षा स्तुति-प्रार्थना में देवता अधिक निर्दिष्ट हैं और उन देवताओं में देवियों को भी स्थान मिला है।

दुर्गा को ही श्री, सरस्वती, सावित्री उमा कहा गया है तथापि ये सब भिन्न-भिन्न देवियाँ थीं। सरस्वती उमा सावित्री की भाँति लक्ष्मी प्रतीकात्मक नहीं है। अपितु नारी के गुणों एवं दुर्बलताओं से युक्त एक आदर्श पत्नी के रूप में प्रस्तुत है।

राजश्री का साक्षात्कार -

महाभारत[2] में ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि इन्द्र ने महाशक्तिशाली राजाबलि के शरीर में से प्रज्वलित राजलक्ष्मी को देखकर दैत्यों का संहार करने वाले इन्द्र बड़े आश्चर्यचकित हुए। आश्चर्य से एकटक नेत्रों से राजलक्ष्मी को देखकर इन्द्र ने बलि से पूछा। यह सुन्दर स्त्री कौन तेरे शरीर से निकल कर खड़ी है।

1- विराट 63•13।

2- महाभारत-शान्तिपर्व- दो सौ पच्चीस वा अध्याय।

जो बाजूबन्द पहने हुए है और उसकी चोटी चमकदार आकर्षक है ।

बलि ने बताया है मैं स्वयं नहीं जानता यह कौन है यह आसुरी देवी है अथवा मानवी स्त्री है । अतः आप स्वयं ही पूछ लीजिए । जैसा आप उचित समझें वैसा ही करिये ।

इन्द्र ने स्वयं ने पूछा है देवि । आप बलि के शरीर से निकल कर अर्थात् बलि के शरीर का त्याग कर मेरे समीप खड़ी होने दें आप कौन हैं आपका नाम मुझे नहीं ज्ञात है । आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दें ।

लक्ष्मी ने बताया मुझे कोई भी नहीं जानता है । और कुल लोग मुझे विधित्सा अर्थात् कर्म का फल कहते हैं । मेरा नाम लक्ष्मी श्री मूर्ति भी है ।

इन्द्र ने लक्ष्मी जी से पूछा कि इतने दिनों रहने के पश्चात् अब बलि के शरीर को क्यों छोड़ रही है ।

लक्ष्मी जी ने कहा मैं किसी के अधीन नहीं रहना चाहती हूं । एक स्थान पर मैं स्थिर होकर नहीं रह सकती हूं मैं चंचल स्वभाव की हूं । समयानुसार एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को जाती हूं ।

हे लक्ष्मी । (दुःसहा, शिखण्डिनी, शुचिस्मिते) क्या आप मुझे बलि की तरह तो न छोड़ देंगी ?

लक्ष्मी ने बताया- सत्य, दान, व्रत, तप और पराक्रम धर्म में मेरा निवास है । राजा बलि को सत्यादि ने त्याग दिया है इसलिए मैं इसे त्यागती हूं । बलि पहले ब्राह्मण भक्त, सत्यवादी और जितेन्द्रिय था । बाद में वह ब्राह्मण द्वेषी बन गया और जूठे हाथों से घृतपात्र को छुआ बाद में इसको अहंकार हो गया है, और अहंकार युक्त कहता था कि मैं "लक्ष्मी" की उपासना करता हूं या

लक्ष्मी का भक्त हूँ। इस अहंकार के कारण मुझे इसके शरीर से बाहर निकलना पड़ा। अब मैं आपके शरीर में निवास करूँगी। अब आप सावधानीपूर्वक तप और पराक्रम से मुझे स्वीकार कीजिये।

इन्द्र ने बताया कि हे कमले। देवताओं, मनुष्यों और अन्य प्राणियों में ऐसा कोई भी नहीं है जो अकेला तुझे सदैव के लिए अपना सके।

श्री ने कहा कि आप सत्य हैं। देवताओं, असुरों, राक्षसों और गन्धर्वों ऐसा कोई भी नहीं है- जो सदा के लिए मुझे अपना सके।

इन्द्र ने लक्ष्मी से कहा कि आप मुझे ऐसा कोई उपाय बताइये जिससे कि आप सदा मेरे समीप रहें। तब लक्ष्मी जी ने बताया कि वेदों के अनुसार आप मेरे चार भाग करें।

इन्द्र ने कहा- मैं अपनी शक्ति और बल के अनुसार तुझे धारण करूँगा। मैं सदा सावधान रहूँगा और आपके विरुद्ध कोई अपराध न करूँगा। अतः आपका एक पाद पृथिवी, दूसरा पाद जल में, तीसरा भाग अग्नि में चतुर्थ भाग मनुष्यों में जो ब्राह्मण रक्षक, सत्यवादी, और सज्जन में। इन चार भागों में विभाजित करने के पश्चात् आपकी रक्षा का भार मैं ही करूँगा। जो प्राणी तेरा अपराध करेगा उसको मैं दण्ड दूँगा।

बलि इन्द्र से कहा कि जब सूर्य सब ओर से हटकर केवल ब्रह्मलोक में प्रकाश करेंगे, तब फिर देवासुर संग्राम होगा। उस संग्राम में, मैं तुम सब को हराऊँगा। इससे इन्द्र क्रुद्ध हो गये और कहा कि ब्रह्म जी कि आज्ञा है कि बलि मारा न जाये इसी से अब मैं तेरा वध नहीं करता हूँ। अब तू जहाँ जाना चाहे वहाँ जा। तेरा कल्याण हो। बलि के अहंकार शून्य वाक्यों को सुनकर इन्द्र उसी समय आकाश-मार्ग में चले गये।

महाभारत[1] में लक्ष्मी और इन्द्र का संवादात्मक एक प्राचीन उपाख्यान है ।

एक दिन सबेरा होते ही नारद जी स्नान करने के लिए ध्रुवद्वार से निकलने वाली आकाशगङ्गा के तट पर गये और गङ्गा में उन्होंने स्नान किया। स्नान करके तट पर बैठे ही थे । तभी इन्द्र भी वहाँ जा आकाशगङ्गा में स्नान करने लगे । स्नान करने के बाद थोड़ा बहुत गायत्री का जप भी किया । वे दोनों जितेन्द्रिय पुरुष वहाँ बैठे आपस में वार्तालाप कर ही रहे थे कि इतने में किरण जाल सहित सूर्यदेव उदय हुए । सूर्य के पूर्णमण्डल को देखकर दोनों जन खड़े हो उनकी स्तुति करने लगे । इतने में उन दोनों ने देखा कि आकाश से प्रकाश युक्त बिम्ब धीरे-धीरे अपनी ओर आता हुआ । दीख पड़ा । वह भगवान विष्णु का विमान था ।

वह विमान गरुड़ और सूर्य का बनाया हुआ था । जिस वस्तु को इन्द्र और नारद ने देखा वे साक्षात् श्री लक्ष्मी जी थी । वे श्री, सूर्य की तरह तेजोमयी और अग्नि की तरह जाज्वल्यमान सी दिखाई पड़ती थी । वह रत्नजटित आभूषणों से कमल के पत्र पर शोभायमान थी । ऐसी लक्ष्मी जी के उन दोनों ने दर्शन किये । सुन्दरि श्रेष्ठ लक्ष्मी विमान के अगले भाग से उतरी और त्रिलोक प्रभु इन्द्र और देवर्षि नारद के समीप जा खड़ी हुई । तब इन्द्र और नारद ने अपने लिये और हाथ जोड़कर प्रणाम किया । उसके पश्चात् दोनों ने लक्ष्मी पूजन किया और उनसे पूछा-हे देवि । आपकौन है । आपका आगमन यहाँ कैसे हुआ या किस प्रयोजन से आयी है । अब आप यहाँ से किस तरफ प्रस्थान करेंगी ।

1- महाभारत-शान्तिपर्व -दो सौ अट्ठाइस का अध्याय ।

लक्ष्मी जी ने बताया-कि मैं सूर्य रश्मियों के तप से खिले हुए कमल-पुष्प से उत्पन्न हुई हूँ। मैं समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाली हूँ। कुछ लोग मुझे पाकर श्री और पद्ममालिनी कहकर पुकारते हैं।

मैं लक्ष्मी, भूति, श्री, श्रद्धा, सन्नति, विजिति और स्थिति हूँ। मैं धृति सिद्धि और समृद्धि हूँ। मैं स्वाहा और स्वधा हूँ। मैं प्रणति और नियति अर्थात् भाग्यदेवी हूँ। मैं स्मृति हूँ। मैं सदा धर्माचरणशील एवं महाबुद्धि ब्राह्मणों की रक्षा करने, सत्यवादी विनयी और दानी पुरुषों के पास रहने वाली हूँ। सत्य और धर्म से आबद्ध मैं पहले असुरों के यहाँ रहती थी। जब वे पापी और झूठे सिद्ध हो गये तब मैं उन्हें त्याग कर आपके पास चली आयी हूँ। अब मैं आपके समीप रहना चाहतीहूँ। आप मुझे स्वीकार कीजिये।

जो लोग धैर्यवान् हैं, पितृ, देव, गुरु एवं अतिथियों को पूजते हैंसत्य बोलते हैं, ईर्ष्या नहीं करते हैं, दानी, विद्वान्, सरल स्वभाव, श्रद्धालु है, जो दीनों, अनाथों वृद्धों दुर्बलों, रोगियों और स्त्रियों के ऊपर दया करते थे, जब वे किसी को सताते नहीं थे। परस्त्रीगामी न थे, जब तक उनमें दानशीलता, चातुर्य, सरलता, शौच, दयालुता, मधुर-भाषण और मित्रों के प्रति प्रेम बना हुआ था। उनके सद्गुणों को देखकर उनके साथ मैं रहती थी। किन्तु जब उनके गुण दुर्गुणों के रूप में परिवर्तित हो गये, वृद्धों को प्रणाम करना छोड़ दिया, पिता के सामने पुत्र अपनी हुकूमत दिखाने लगे। स्त्रियाँ पतियों का साथ छोड़ने लगी। कहना नहीं मानना। पितरों अतिथियों गुरुजनों तथा देवताओं का भाग निकाले बिना ही निर्लज्जता का अन्न खा जाने लगे। सूर्योदय हो जाता है और वे पड़े-पड़े सोया करते हैं, मानों प्रातःकाल भी उनके लिए रात है, प्रजा कलह कर हो गयी।

इसलिए हे इन्द्र मैं तुम्हारे पास आया हूँ। यदि आप मेरा सम्मान करेंगे तो अन्य देवगण भी मेरा सम्मान करेंगे। मैं जहाँ रहूँगी, वहाँ मेरी जैसी अन्य सात मेरी सहचरी देवियाँ और आठवीं जयादेवी भी आकर रहने लगेंगी। मेरी उन सात सहचरियों के नाम ये हैं - आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजिति, सन्नति, क्षमा, जया हैं। मैं धर्मात्मा देवताओं के बीच रहना चाहती हूँ।

तब नारद और इन्द्र ने श्री देवी को प्रसन्नचित्त होकर प्रणाम किया। उसी समय वायु देव मार्ग में शान्त भाव से चलने लगा, जिससे समस्त इन्द्रियाँ सुख का अनुभव करने लगीं।

लक्ष्मी देवी के आगमन के सूचना पाकर सभी देवगण दर्शन के लिए वहाँ गये। इन्द्र नारद लक्ष्मी जो शोभायमान थीं। वे लोग देवी के पराक्रम की प्रशंसा करने लगे और लक्ष्मी देवी के आगमन को शुभ मानने लगे। समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले इन्द्रादि देवताओं को की हुई भगवती लक्ष्मी की इस पूजा का वृत्तान्त पढ़ते सुनते हैं, उनके समस्त मनोरथ पूरे होते है और वे लक्ष्मी को पाते हैं।

महाभारत के शान्ति पर्व में "कमल" के बारे में वर्णन मिलता है। स्वयंभू मानस ने तेजोमय एक दिव्य कमल उत्पन्न किया। उस कमल से वेदरूपी ब्रह्मा उत्पन्न हुए। श्रुति में ये ही ब्रह्मा अहंकार के नाम से प्रसिद्ध है। स्थूल भूत समस्त आकाशादि उसका स्वरूप है। वही चार प्रकार के प्राणियों को रचने वाला है।

स्थूल, सूक्ष्म रूप कमल से सर्वप्रथम सर्वज्ञ, समर्थ, धर्मकीर्ति एवं आदि प्रजापति ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई। जब ब्रह्मा जी कमल से उत्पन्न हुए तब तो वह कमल ब्रह्मा जी बड़ा और सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। मानना पड़ेगा किन्तु ब्रह्म को कमल के पूर्व उत्पन्न हुआ बतलाता है।

मानस ब्रह्म की मूर्ति ब्रह्मा रूप से उत्पन्न हुई है उसको आसन रूप जो पृथिवी रची गयी थी वही पृथिवी कमल कहलाती है । उस कमल की कली मेरा पर्वत है और वह आकाश में ऊँचा उठा हुआ है । उसके बीचों-बीच लोककर्ता ब्रह्मा ही बैठे हुए जगत् की सृष्टि करते हैं ।

श्री भागवत चरित में लक्ष्मी -

पुनि प्रकटी प्रभु प्रिया--------निर्विघ्न बाध विधिवत अजहिं ।। 3-8।।

समुद्र मंथन के पश्चात् अनेक रत्न निकले लक्ष्मी जी भी उसी रत्नों में से एक है समुद्र के मंथन से फिर अपनी अनुपम शोभा बिखेरती हुई प्रभु की प्रिया भगवती लक्ष्मी प्रकट हुई । वे चन्द्रमा की धवल चाँदनी के समान अपनी दिव्य कान्ति से संसार को सुखी बना रही थी । उनके अद्भुत यौवन, रूप, सुन्दरवर्ण,सुभाव और महिमा को देखकर देवता, मनुष्य, किन्नर, दानव सभी जड़ के समान मन्त्र मुग्ध से हो गये । लक्ष्मी के प्रेम में पागल बनकर सभी लोग बहुमूल्य वस्तुएं भेंट करने लगे और उन्हें प्राप्त करने की इच्छा से उनकी सेवा करने लगे ।

भगवती लक्ष्मी ने लोगों द्वारा दी हुई भेंट की सामग्री स्वीकार कर ली उस समय मन को मोहित करने वाले बाजे बज रहे थे सब ब्राह्मण हर्ष स्वर में स्वर के साथ वेद मंत्रों का पाठ कर रहे थे उनके पिता समुद्रदेव ने रेशमी पीताम्बर दिया जिसे पहन कर वे अत्यन्त प्रसन्न हुई । वरुण ने अपनी विशाल माला पहने को दी । उपहार में मिले हुए वस्त्र एवं आभूषणों को पहिनकर लक्ष्मी जी अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं । अब वे हाथ में जयमाला लेकर अपने योग्य पति खोजने लगीं ।

उनके हाथ में हिलती हुई सुगन्धित माला पर मधु के लोभी भौंरे और कमनीय कपालों पर कानों के कुण्डल चंचल हो रहे थे । उनका मनोहर मुखमन्द एवं मधुर हंसी से खिला हुआ था । सुपुष्ट एवं उभरे हुए सुन्दर वक्षस्थल, पतली कमर,

नितम्ब के भार से झुकी हुई-सी कुछ उदार तथा हिरणी के समान सुन्दर नेत्रों वाली कमला चकित सी होकर चारों ओर देख रही थी । वे नूपुर, कङ्कण एवं करधनी की सुमधुर झनकार करती, हंसिनी की गति चलती हुई, अपनी बांकी चितवन से सबके चित्त को चुरा रही थी ।

वे समस्त गुणों से पूर्ण अपने ऐसे पति को खोज रही थी जो देवताओं में श्रेष्ठ तेजस्वी तपस्वी, कान्तिवान और अजर-अमर हो । सबके गुण-अवगुण देखती हुई हथिनी के समान सुन्दर चाल वाली लक्ष्मी जी अपने पति को ढूंढ रही थीं परन्तु किसी को निर्दोष न पाकर वे चकित होकर इधर-उधर देखने लगी थी । उसी समय अचानक नयनों को निहाल करने वाले, जलसी के फूल की कान्ति वाले, निर्दोष एवं सब गुणों के सागर श्री हरि को देखते ही वे लज्जा से अपने नेत्रों को नीचे किए खड़ी की खड़ी ही रह गयी ।।

श्री लक्ष्मी जी प्राकृत गुणों से परे, नित्य सद्गुण सम्पन्न, समस्त सुखों के सागर, नित्यनूतन सौन्दर्य वाले, रसीले, रङ्गीले श्याम-सुन्दर को देखते ही समझ गयी यही मेरे अभीष्ट पतिदेव हैं । अपने नित्य सनातन पति श्री विष्णु को पहिचान कर रमा अत्यन्त आनन्दित हो उठीं । उसी समय उन्होंने नवीन कमल की माला को जिस पर भौंरे गूंज रहे थे, अपने कमल के समान सुन्दर हाथों से उठाकर भगवान् अजित के कण्ठ में डालकर उन्हें पतिरूप में वरण कर लिया ।

श्रीहरि का विशाल वक्षस्थल देखकर श्री जी मुग्ध हो उठीं । भगवान् ने भी रमा के भाव को समझकर उन्हें अपने हृदय का हार बना लिया-स्वीकार कर लिया । श्री हरि को हृदय में स्थान पाकर अब वे जगत् की माता हो गयीं । उन्होंने जीवों को श्रीहीन देखकर अपनी करुणामयी दृष्टि से तेजस्वी बना दिया । अब ब्रह्मा शिव, देवता मुनि और ऋषि मंत्रों के पाठ द्वारा स्तुति करने लगे । अप्सराएं नाचने लगीं और अनेक मङ्गल सूचक वाद्ययंत्र शंख, तुरही, मृदङ्ग आदि बजने लगे ।

श्रीभागवत चरित (खण्ड 2) जनवरी 1985
रचयिता-श्रीप्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, प्रकाशक -संकीर्तन भवन प्रतिष्ठानपुर, झूंसी, प्रयाग
पंचम अध्याय पृ सं० -557-560

चतुर्थ अध्याय

तन्त्र में लक्ष्मी का स्वरूप ।

" तन्त्र में लक्ष्मी का स्थान "

तंत्र शब्द की व्युत्पत्ति तथा विभिन्न अर्थ -

तान्त्रिक वाङ्मय का प्रादुर्भाव बहुत ही प्राचीनतम् युग से माना गया है । यह साहित्य उन विचारों का समूह है जो रहस्यमय और देवी सूत्रों को बताता है । इस विधा में रहस्यमय साधनाओं को गुरु के निर्देशन में करने का वर्णन प्राप्त होता है । लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इसमें देवताओं की पूजा, उनका ध्यान, मंत्रों का उच्चारण और मंत्रों का प्रयोग होता है । मंत्र, तंत्र और यंत्र तात्विक रूप से भिन्न वस्तु नहीं है अपितु एक ही सत्य के तीन प्रकार हैं या एक ही शक्ति के तीन रूप हैं व्यक्ति की शक्ति को उद्दीप्त कर उसमें गुरुतर शक्ति का संचार करने वाला गूढ़ रहस्य मंत्र कहलाता है । मंत्रों में जो स्वर व्यंजन नाद बिन्दु का विन्यास किया जाता है वह देवता के विभिन्न रूपों को अभिव्यक्त करता है । मन्त्र शब्द की निरुक्ति करते हुए मनन से विश्व ज्ञान का अर्थ और तंत्र से सांसारिक बन्धनों से त्राण अर्थ का बोध कराया गया है । इस प्रकार तात्पर्य यह है कि जो सांसारिक बन्धनों से छुटकारा दिलाये और विश्व ज्ञान कराये, उस मंत्र का ही चिन्तात्मक रूप मंत्र तथा क्रियात्मक रूप तंत्र है मंत्र के इन त्रिविध रूपों का क्रियात्मक विधान मंत्र साधना कहलाता है । अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति इसी क्रियात्मक विधान पर निर्भर रहती है । इसमें तनिक भूल से ही दुर्धर्ष विघ्नों का शिकार होना पड़ता है । अतः इसी भूल से बचने के लिए मंत्र शास्त्र का आश्रय लेना चाहिए, यह शास्त्र उन सत्यों, सिद्धान्तों, शक्तियों एवं प्रक्रियाओं का ज्ञान है जो मंत्र साधना एवं मंत्र सिद्धि के लिए आवश्यक है ।

तंत्र शब्द बहुमुखी और व्यापक अर्थ का बोधक है । काशिका-वृत्ति[1] में तनु विस्तारे धातु से विस्तार अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय लगाकर तंत्र शब्द की व्युत्पत्ति की गई है इस प्रकार तन विस्तारे धातु का अर्थ है "फैलाना" तथा त्र[2] त्राणे अर्थात् रक्षा के अर्थ में आत्म विस्तार और रक्षा दोनो हो । फलतः तंत्र का अर्थ हुआ वह शास्त्र जिसके द्वारा आत्म-विस्तार तथा आत्म-त्राण किया जाता है । आत्म तत्त्व का स्थूल दृष्टि से तथा पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्मतत्व विस्तार कराता है {तन्यते विस्तार्यते- ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्}[3] वाचस्पति, आनन्द गिरि तथा गोविन्दराज के मत से तन्त्र शब्द "तंत्र" या तंत्" धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ "व्युत्पादन" अथवा "ज्ञान" है पाणिनि के "गणपाठ" में जो अर्थ तत् धातु का है वही "तंत्" धातु का भी है । वस्तुतः तनु{विस्तार} और {व्युत्पादन} में अधिक अर्थ भेद नही है । व्युत्पादन का भाव विस्तार ही है और विस्तार का अर्थ ही सामान्यतया तान्त्रिक आचार्यों ने स्वीकार किया है-

"तनोतिविपुलानर्थान्तत्त्वमंत्रसमन्वितान् ।
त्राण च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्याभिधीयते ।।[4]

इसके अतिरिक्त "ज्ञान" और "फैलाने" के अर्थ को लेकर कुछ विद्वानों ने तंत्र का अर्थ बताया है "वह विधि जिसके द्वारा ज्ञान को फैलाया जाये"। तंत्र की निरुक्ति तन् "विस्तार करना" और त्रै "रक्षा करना" धातु के योग से भी सिद्ध होती है

1- काशिका वृत्ति- 7-2-97

2- व्याकरणात्मक प्रक्रिया के पश्चात् ष्ट्रन् से त्र ही शेष बचता है ।

3- तंत्र सिद्धान्त और साधना - पं०देवदत्त शास्त्री ।

4- कामिकागम ।

जिसका अर्थ यह है कि तंत्र विपुल अर्थों के विस्तार करने के साथ ही तदनुसार आचरणशील व्यक्तियों का ज्ञान भी करता है ।

इस प्रकार तंत्र का व्यापक अर्थ "शास्त्र, सिद्धान्त, अनुष्ठान, विज्ञान और विज्ञान विषयक ग्रंथ आदि है और इस व्यापक अर्थ में इसका बहुशः प्रयोग भी उपलब्ध होता है" यह तो तंत्र शब्द का व्यापक अर्थ हुआ अब संकुचित अर्थ जो लोक व्यवहार में प्रयुक्त होता है इस प्रकार है- "वह शास्त्र जो मंत्र, कीलक, कवच आदि से समन्वित एक विशिष्ट साधना मार्ग का उपदेश देता है।" तंत्र का मुख्य रूप है साधना का उपदेश अर्थात् वह उपासना प्रणाली जिससे अभीष्ट देवता का साक्षात्कार किया जा सके ।

कार्यक्रमानुसार तंत्र शब्द बहुत से अर्थ प्राप्त होते हैं, जैसे ऋग्वेद में इसका अर्थ प्रकटीकरण यजुर्वेद में इसका अर्थ पहनावे, कपड़े, अथवा यज्ञ(बलिदान) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[1]। भास्करराय के अनुसार तंत्र और धर्मशास्त्र दोनों एक है उनके अनुसार विद्या तथा ज्ञान की 14 शाखायें हैं जिनके अन्तर्गत चारों वेद, छहों वेदाङ्ग, न्याय, मीमांसा, पुराण और धर्मशास्त्र आते हैं, तंत्र इसी धर्मशास्त्र के अन्तर्गत आता है ।

तंत्र का ही दूसरा प्रख्यात नाम आगम है अतः तंत्र शास्त्र को आगम शास्त्र भी कहा जाता है । प्राचीन भारतीय साहित्य निगम और आगम दो श्रेणियों में विभाजित हैं इनमें से निगम वेदमूलक से साहित्य को कहते हैं । जिसमें उपनिषद्, स्मृतियां, दर्शन आदि की गणना की जाती है । आगम शास्त्र का स्रोत शिव जी को बतलाया जाता है तथा इस मार्ग की अधिकांश रचनायें

1- यजुर्वेद भाष्य संहिता - 19·80

शिव-पार्वती के संवाद रूप में मिलती है । आगम ग्रंथों का कर्तृत्व शिव के नाम पर माना गया है इसका आशय यह है कि चाहे विभिन्न आगम ग्रंथ अलग-अलग समय में विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं उन पर उनका मूल आधार वही सिद्धान्त है जिसे शिव ने लोकहितार्थ प्रकट किया है । तंत्र शास्त्र का यह कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति शिव रूप है और जितनी मात्रा में वह शिव भाव की अनुभूति करेगा उतनी ही मात्रा में वह शिव शक्ति को प्राप्त करेगा । इस शास्त्र के अनुसार जितने भी देवता हैं सब शिव की विभिन्न शक्तियों के रूप हैं । मंत्र के द्वारा इन देवताओं को जाग्रत किया जाता है । तंत्र के क्षेत्र में मंत्रों को बहुत बड़ा स्थान प्राप्त है एक प्रकार से तंत्र को मंत्र भी कहा जा सकता है तन्त्र शास्त्र का कथन है कि जिस देवता के मंत्र का जप किया जाता है वह मंत्र उस देवता के नाम का वाचक होता है इस प्रकार मंत्र शब्द का व्यवहार तंत्र शास्त्र में व्यापक परिवेश में किया जाता है ।

वैदिक ऋचाओं में हर छन्द को मंत्र कहा जाता है किन्तु तंत्र में मंत्र शब्द भिन्न अर्थ रखता है । प्रत्येक अक्षर या पद अथवा पदसमूह को तंत्र शास्त्र मंत्र के अर्थ में नहीं स्वीकार करता वरन् जिस अक्षर या पद समूह को किसी देवता या शक्ति की अभिव्यक्ति की जा चुकी है वही अक्षर या पद अथवा पद समूह इस देवता या शक्ति को प्रकट करने की सामर्थ्य रखता है । इसलिए जो शब्द पद या पद समूह जिस देवता या शक्ति को प्रकट करता है वह उस देवता का या रूप का मंत्र माना जाता है ।

तान्त्रिक साधना का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक सिद्धि को प्राप्त करना है इसलिए साधना के लिए एकान्त गुफा, पर्वत, शिखर, सुनसान, श्मशान आदि स्थान उपयुक्त है । तान्त्रिक साधना में श्मशान दो तरह के होते हैं -

1- बाह्य श्मशान, जहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं ।

2- अभ्यान्तर श्मशान यहाँ पर समस्त कामनाओं और वासनाओं का दहन कर इष्ट देवता का सान्निध्य प्राप्त किया जाता है ।

तंत्र शास्त्र को जो आगम कहा गया है उसमें आगम शब्द की व्युत्पत्ति वाचस्पति मिश्र ने योगभाष्य की अपनी तत्त्व वैशारदी व्याख्या में इस प्रकार की है- "आगच्छन्ति- बुद्धिमारोहन्ति यस्मात् अभ्युदयनि: श्रेयसोपाय: स: आगम: अर्थात् जिससे अभ्युदय (लौकिक कल्याण) तथा नि:श्रेयस (मोक्ष) की उपाय बुद्धि में आते हैं वह ही आगम है । वैसे आङ् उपसर्ग पूर्वक गम् धातु से आगम शब्द निष्पन्न हुआ है । जिससे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

आध्यात्मिक और धार्मिक आधारों के अनुसार आगम पाँच विषयों का विवेचन करता है -

1- सृष्टि, 2- विश्व का विनाश, 3- देवताओं का पूजन 4- अलौकिक शक्तियों का प्राप्ति और 5- ध्यान और चिन्तन के द्वारा सर्वोच्च शक्ति में समाविष्ट होने का साधन ।

तान्त्रिक साहित्य भौतिक दृष्टिकोण को लेकर चलते हुए छ: प्रकार के कार्य-कलापों को बताते हैं -

1- वशीकरण, 2- मारण, 3- उच्चाटन, 4-स्तम्भन, 5- विद्वेषण, 6-शान्तिकर्म ।

तंत्रशास्त्र में पूजा को साधारणत: तीन श्रेणियों में विभक्त किया है - उत्तम, मध्यम और अधम इनको परा, परापरा और अपरा भी कहा जाता है । इनमें परा अथवा उत्तम पूजा ही यथार्थ है, ऐसी प्रसिद्धि है कि बहुसंख्यक देवता भी तान्त्रिक साधना के द्वारा सिद्धि लाभ करते हैं । इस प्रकार तन्त्र शास्त्र का सिद्धान्त है । स्थूल शरीर की अपेक्षा इन्द्रियों का महत्त्व, इन्द्रियों की अपेक्षा मन का, मन की अपेक्षा बुद्धि का और बुद्धि की अपेक्षा आत्मा का

अधिक महत्त्व है । तान्त्रिक योग साधना का प्रधान लक्ष्य आत्मिक विकास है अभ्यन्तर शुद्धि के लिए बाह्य शुद्धि भी आवश्यक मानी गयी है ।

प्रत्येक मनुष्य की कोई न कोई कामना होती है, जिनको दुख है वे उसका नाश चाहते हैं और दूसरे ऐश्वर्य एवं भोग चाहते हैं । अपनी कामना पूर्ण करने के लिए मनुष्य सभी प्रकार के प्रयत्न करता है किन्तु कोई भी व्यक्ति देवी सहारे के बिना अपनी कामना पूर्ण नहीं कर सकता है । इच्छाओं की पूर्ति और शान्ति पाने के लिए एक ही उपाय "ईश्वर की उपासना" है । तन्त्र शास्त्र में भगवान की उपासना करने के उपाय के सन्दर्भ में बहुत से मार्ग बताये गये हैं तथा ये उपासनाएं मन्त्रों के माध्यम से चलती है तथा प्रत्येक मंत्र के अलग-अलग देवता होते हैं । देवता से सम्बन्धित मंत्र को एक निश्चित समय तक जाप कर तथा वैदिक पौराणिक प्रयोगों और यौगिक प्रयोगों द्वारा मंत्र सिद्ध कर देवता की उपासना की जाती है । यद्यपि ईश्वर एक ही है फिर भी भक्तों की रक्षा के लिए उनके नाना अवतारों का वर्णन मिलता है देवताओं के आधार पर इनके पांच सम्प्रदाय प्राप्त होते हैं -

1- गाणपत्य सम्प्रदाय, 2- शैव सम्प्रदाय, 3- शाक्त सम्प्रदाय,
4- वैष्णव सम्प्रदाय और, 5 - सौर सम्प्रदाय ।

§1§ गाणपत्य सम्प्रदाय -

इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत गणेश अथवा गणपति के ही विभिन्न रूपों का वर्णन प्राप्त होता है । ये शिव तथा पार्वती के पुत्र के रूप में प्रकट हुए तथा रूप के अनुसार इनके विभिन्न नाम प्राप्त होते हैं । जैसे-महागणपति,

उच्छिष्ट, गणपति, चिन्तामणि गणपति, हरिद्रा गणपति, शक्ति विनायक गणपति, लक्ष्मी गणपति, त्रैलोक्य मोहन गणेश, शक्ति गणेश वीरगणपति, अर्कगणपति, वक्रतुण्ड गणपति, हेरम्ब गणपति, स्तम्भनकरण गणपति आदि। विघ्न निवारक के रूप में गणेश सुप्रसिद्ध है यह न केवल विघ्न विनाश ही वरन् प्रत्येक कामना भी इनकी उपासना से पूर्ण होती है। सृष्टि के उत्पादन में आसुरी शक्तियों द्वारा जो विघ्न बाधाएं उपस्थित की गयी थी। उनका निवारण करने के लिए सृष्टि के प्रारम्भ से ही भगवान गणपति के रूप में प्रकट हो ब्रह्मा के कार्य में सहायक होते आये हैं। इसी से इनको विनायक कहा गया है।

"आदौ पूज्यो विनायकः" इस उक्ति के अनुसार समस्त शुभ कार्यों के प्रारम्भ में गणेश को अग्र पूजा ही प्रचलित है। वे सर्वस्व रूप और पर ब्रह्मस्वरूप है। वैदिक काल से ही गणेश की पूजा का प्रमाण प्राप्त होता है। ऋग्वेद की एक ऋचा में भी इनका ही वर्णन इस प्रकार किया गया है कि वह सर्वविघ्नों के हर्ता तथा सिद्धि व बुद्धि के प्रदाता हैं[1]। गणपत्यथर्व शीर्ष में गणपति को "त्वमेव प्रत्यक्ष" तत्त्वमसि" ऐसा कहा गया है।

शिव-गणों एवं गण देवों के स्वामी होने के कारण ही उन्हें गणेश कहा गया है। गण शब्द का प्रयोग व्याकरण के अन्तर्गत भी होता है। व्याकरण के गण-पाठ का अपना अलग ही अस्तित्व है ये दस कहे गये हैं जैसे भ्वादिगण, अदादि गण, जुहोत्यादि गणादि।

1- ऋग्वेद - 2•23•1 गणानां त्वा गणपतिं हवामहे

कविं कवीनामुपरतवस्तमम् ।।

कवीनामुपश्रवस्तमम् ।

ज्योतिष शास्त्र में अश्विनी आदि नक्षत्रों के अनुसार देव, मानव और राक्षस ये तीन गण हैं तथा इन तीनों के स्वामी गणेश हैं छन्द शास्त्र में भी अगण, नगण, मगण, यगण, जगण, रगण, सगण, और तगण ये आठ गण वर्णित हैं । लघु और गुरु मिलाकर दस गण हैं ।

अक्षरों को भी गण कहा गया है तथा इनके भी स्वामी होने के कारण इन्हें गणपति कहा गया है ।

गणेश को एक दन्त कहा गया है गणेश का एक नाम "वक्रतुण्ड" भी है, "वक्रं आत्मरूपं मुखं यस्य" ।

गणेश वैदिक देवता है, वेद में उनका बहुत उग्र रूप प्राप्त होता है किन्तु वेद में इनका नाम गणेश न होकर ब्रह्मणस्पति । बृहस्पति, वाचस्पति अथवा गणपति था ।

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी ब्रह्मणस्पति (बृहस्पति) का इस प्रकार गणपति के अर्थ में ही प्रयोग हुआ है[1] ।

गणपत्यसम्प्रदाय के अनुसार गुण का अर्थ-सत्त्व गुण, रजोगुण और तमोगुण का संघात है । उसका पति अथवा शासक होने के कारण ही ये गणपति कहलाये । गणेश का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव पार्वती मां से कृष्णपक्ष में माघ-मास की चतुर्थी तिथि को माना जाता है इसके प्रादुर्भाव को तिथि "संकष्ट चतुर्थी" कहलाती है ।

1- एव एव उ एव बृहस्पतिर्वाग्वै बृहती तस्या एव पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः ।
एव उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म तस्या एव पतिस्तस्माद् ब्रह्मणस्पतिः ।।"

(बृ0उ01•3•20-21)

शारदातिलक में भी इनका ध्यान वर्णित किया गया है । मुख्य-गणपति के अतिरिक्त भी अनेक गणपति का अनेक गणपति का वर्णन प्राप्त होता है ।

लक्ष्मी विनायक का ध्यान भी गणपति के सदृश ही है । इनके चारों हाथों में वैष्णवी शक्ति होने के कारण विष्णु के सदृश शङ्ख, अभयमुद्रा चक्र तथा स्वर्ण घट सुशोभित है । त्रिनेत्रों वाले हैं, स्वर्ण के सदृश आभा वाले तथा कमल धारी लक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित है[1] । लक्ष्मी गणपति के अनेक मंत्रों में "ॐ ग सौम्याय गणपत्ये वरवरद सर्वजन में वशमानय स्वाहा"[2] यह मंत्र वर्णित है, इस मंत्र को चार लाख बार जपने तथा बेलवृक्ष की लकड़ी से दशांश होम करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है ।

प्रत्येक गणपति के ध्यान में गणेश को मोदक से युक्त पाया गया है इसमें यह मोदक भी बुद्धि का प्रतीक ही माना गया है । गणेश की वन्दना के लिए शारदा तिलक में यह दिया गया है कि चतुर्थी को नारियलों से होम करें तो गणेश का मंत्र श्री प्रदाता होता है तथा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ कर चतुर्थी कर चतु के अन्त तक नारियल, केले सत्तु, लाजा और तिलों से क्रमशः चार सौ आहुतियां दें तो साधक के सभी जन्तु गण वश में हो जाते हैं[3] ।

1- दन्ताभयं चक्रवरोधांनकराग्रमं स्वर्णघटं त्रिनेत्र ।
धृताब्जयाऽऽलिङ्गितमब्धिपुत्रया लक्ष्मीगणेशं कनकाममीडे ।।
{म॰मह॰पन्चम तरङ्ग}

2- मन्त्रमहोदधि-द्वितीय तरङ्ग ।

3- वेदलक्षं जपेन्मंत्र दशांशंजुहुयात्ततः ।
मोदकैः पृथुकेलाजैः ---------।। 5 ।।
नारिकेरैस्तिलैः------वशतानि मनोभिभः।।6।।
नारिकेलैः -----------सुधीः ।। 7 ।।
{शारदातिलक-।।•5•6•17}

2- शैव सम्प्रदाय -

गाणपत्य सम्प्रदाय के पश्चात् देवताओं के सम्प्रदाय में शैव सम्प्रदाय वर्णनीय है शैव सम्प्रदाय की विशेषता लिङ्गोपासना है । इसके मुख्य देवता शिव हैं । लिङ्गोपासना[1] के कारण ही शिव को अद्वितीय और अन्य देवताओं से पृथक् स्थान प्राप्त है । ज्ञान के अधिष्ठाता शिव ही हैं ।

वैदिक कालीन रुद्र की उपासना, वैदिक युग के समाप्त हो जाने पर शिव के रूप में होने लगी और अन्त में शिव का प्रतीक लिङ्ग हो गया है । शिव का काव्य, नाटकादि, रामायण, महाभारत, तन्त्रागम, ललित कला का अधिष्ठाता कहा गया है, सम्भवतः शिव चतुर्वेद के अधिष्ठाता भी माने गयेहैं । इस प्रकार शिव का सर्वत्र समान्य अधिकार प्राप्त था कोई भी विषय उनसे अछूता नहीं रहा था । इनका रूप सौम्य ही माना जाता था ।

शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत मूर्ति (शिव) की पूजा व पंचाक्षर मंत्र अर्थात्-नमः शिवाय" का जप व ध्यान आवश्यक है भगवान् सदा शिव के मंत्रमय पाँच मुख सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान हैं। इन्हीं पंचस्रोतों से विमल ज्ञान को प्रस्फुटित माना गया है ।

3- वैष्णव सम्प्रदाय -

हिन्दू धर्म की विभिन्न शाखाओं का केन्द्रविन्दु कोई न कोई इष्टदेव है । जिसकी प्रधानता एवं विशिष्टता के कारण उपासकों ने अपना एक विशिष्ट सम्प्रदाय स्थापित किया । इसी आधार पर वैष्णवसम्प्रदाय भी स्थापित

1- लयं गच्छत्यस्मिन् इति लिङ्गम् ।

हुआ । अधिकतर विद्वानों की यही सम्भावना है कि विष्णु, इन्द्र, वरुण और अग्नि के समान प्रधान देवता नहीं है वरन् उन्होंने विष्णु को सौरदेव माना है। इस सम्प्रदाय में विष्णु को परम स्थान प्राप्त है । इसमें विष्णु को प्रधानता तथा इसकी ही उपासना आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है । वैष्णव आगम को दो भागों में बाटते हैं । -

§1§ वैखानस §2§ पंचरात्र ।

4- <u>सौर सम्प्रदाय -</u>

सौर सम्प्रदाय में सूर्य का अपना स्थान है । सूर्योपासना एक अति प्राचीन परम्परा है । ऋग्वेद से लेकर आज तक देव वाद में सूर्य का प्रमुख स्थान है । ऋग्वैदिक धर्म में ही सूर्य देवता एक महत्वपूर्ण देवता के रूप में विख्यात है । जिनका प्राकृतिक आधार नित्य प्रति दिखाई पड़ने वाला सूर्य ही है । सूर्योपासना के लिए गायत्री मंत्र के जाप का विधान है । सूर्योदय में अन्धकार का नाश होता है और यह अन्धकार पाप, व्याधि एवं अज्ञान का प्रतीक है । सूर्य देवता अपने इस प्रकाश से अज्ञान रूप अन्धकार का नाश कर देते हैं । शौर्य सम्प्रदाय का आविर्भाव विशुद्ध भारतीय है । सूर्य अधिष्ठातृ देव है तथा सूर्य ही इस जगत का विधाता है । गायत्री को सूर्य की शक्ति के रूप में माना गया है ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र में भी उपनयन आदि संस्कार के वर्णन में सवितृ के रूप में सूर्य की उपासना बालक की रक्षा के लिए की जाती है ।

5- <u>शाक्त सम्प्रदाय -</u>

पांचों सम्प्रदायों में अन्त में शाक्त सम्प्रदाय का वर्णन प्राप्त होता है । वैसे तो अर्चा परम्परा का साक्षात्सम्बन्ध सगुण ब्रह्म से है सगुणोपासना में शैव शिव की एवं वैष्णव विष्णु को प्रधान रूप से पूजते हैं परन्तु शाक्तों का

विलक्षणता यह है कि इन्होंने परब्रह्म की निगुण एवं सगुण दोनों प्रकार की उपासना "शक्ति" में समन्वित कर अपना पूजा परम्परा का पल्लवन किया। शाक्तों को देवियों के बिना ब्रह्माण्ड का विधाता ब्रह्म व्यर्थ है। मातृ देवताओं की पूजा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रचलित है।

शाक्तों की शक्ति उपासना के तीन सोपान हैं -

1- सामान्य देवी पूजन 2- विकराल देवी पूजन

3- सम्मोहन रूप-त्रैलोक्य सुन्दरी ललिता आदि की पूजा।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार प्रकृति के रजस् सात्विक तथा तामस गुणों के अनुरूप त्रिशक्तियाँ हैं। लक्ष्मी, सरस्वती और महाकाली। ये तीन शक्तियाँ प्रलय, पालन और सृष्टि के कारण है और ये अपनी लीला व्यापार में ब्रह्मा, विष्णु, और महेश की रचना कर अपने सहायक के रूप में ले लेती है। ऐसा वर्णित है कि सरस्वती ने ब्रह्मा के संसर्ग से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की, लक्ष्मी और विष्णु ने उनकी रक्षा की।

शाक्त सम्प्रदायों में 10 महाविद्याओं का प्रमुख रूप में वर्णन प्राप्त होता है - (1) काली, (2) तारा (3) षोडशी (4) भुवनेश्वरी (5) छिन्नमस्ता (6) त्रिपुरा-भैरवी (7) धूमावती (8) बगुलामुखी (9) मातङ्गी (10) कमला।

सभी स्त्री देवताओं के प्रभाव में जिस शक्ति पूजा का उदय हुआ उसमें देवी के मुख्यतः तीन रूप कहे जा सकते हैं -

1- उनका सरल व सौम्य रूप इसके अन्तर्गत लक्ष्मी, पार्वती, गौरी, सरस्वती आदि का वर्णन है।

2- देवी का घोर रूप जैसे- दुर्गा, काली, चंडी जिसका मुख्य सम्बन्ध कापालिकों से क्या इनको वाममार्गी भी कह सकते हैं ।

3- देवी का आनन्द रूप इसके अन्तर्गत भैरवी, त्रिपुरसुन्दरी, ललिता आदि । इनका व विशेष सम्बन्ध शाक्तों से था । वास्तव में इस तृतीय रूप के ही देवता की शाक्त सम्प्रदाय में पूजा होती है । शाक्तों में पूजा के समय किसी प्रकार का जाति भेद नहीं होता था ।

- तंत्र में लक्ष्मी का स्वरूप -

भारतीय-संस्कृति के पर्यालोचन के लिए वैदिक एवं तांत्रिक साधना के स्वरूप एवं प्रसंगत वेद और तन्त्र विषयक अनुसन्धान आवश्यक है । वैदिक साधना के मूल में वेद एवं तान्त्रिक-साधना के मूल तन्त्र है । प्रचलित वैदिक-साधनाओं के क्रम का अनुशीलन जैसा अर्हिर्मुख है, वैसे ही तान्त्रिक-साधना का अनुशीलन नहीं हुआ और जो भी हुआ है उससे निगूढ़ रहस्यों पर प्रकाश नहीं पड़ता ।

लक्ष्मी देश, काल तथा वस्तु से अपरिच्छिन्न ज्ञान स्वरूप गुण-शून्य निरन्जन, षड्गुणसम्पन्न, अजर, और अमर परब्रह्म वासुदेव की परमशक्ति है[1] । संवित मात्र या ज्ञानमात्र लक्ष्मी का स्वरूप है[2] । सृष्टि की इच्छा करती

1- ल० तं० 14,11·2

2- संविदेव हि मे रूपम् । ------ल०तं०

काष्ठवस्थान में सास्ति यस्यां संविन्न वर्तते ल०तं०। 14/5 45

हुई संविदात्मिका लक्ष्मी स्वेच्छा से ही दो प्रकार के भेदों को प्राप्त करती है -
1- चेत्य 2- चेतन । चेतन को ही चिच्छक्ति भी कहा गया है अचेतन के लिए
चेत्यशब्द का प्रयोग हुआ है[1]।

लक्ष्मी सबके लिए प्रत्यक्ष है फिर भी सबको भासित नही होती है ।

महालक्ष्मी का परमराय अखण्ड और स्वयं प्रकाश चैतन्य है -
यह अपरिच्छिन्ना प्रकाशात्मक है यह विचित्र दृश्यों के आकार में भासमान होता
है - ये आकार मूल में अभी क्षणिक हैं किन्तु इस क्षणिक प्रतिभास में ही उनका
स्वरूप पर्यवसित नही होता लक्ष्मी का जो परम स्वरूप है वही सामान्य ज्ञानात्मक
पराप्रतिमा है । वही मूल रूप है । एवं देशकाल, आकार, निमित्त आदि द्वारा
अनवच्छिन्नाहै ।

भगवती लक्ष्मी का परम रूप केवल मापक मात्र है, किन्तु भाष्य
नहीं है वह भास्वरूप है, वह अन्य वस्तु के संग में संसृष्ट नही है इस कारण एक
रसात्मक है । इसलिए पूर्ण है परमचैतन्य रूपा परमेश्वरी महालक्ष्मी है यह द्वैत
का लेश मात्र भी सहन नही करती । इस अखण्ड चिदकेरस स्वरूप में स्वातन्त्र्यवश
वैचित्र्यमय विश्व प्रतिभा समान होता है । विश्व ही द्वितीय के रूप में प्रतिभासित
होता है ।

महालक्ष्मी का परम रूप अखण्ड एक रस चैतन्य है योगी लोग
कहते हैं कि उनके अनन्त साकार रूप है किन्तु उन सब रूपों के ऊपर एक प्रधान रूप है

1- चेत्यचेतनता प्राप्ता संविदेव मदात्मिका । ल०तं०
संविदेव हि मे रूपं स्वच्छस्वच्छन्द निर्भरा ।। 14/5

जिसकी तुलना में अन्य सभी रूप अप्रधान रूप में परिगणित होते हैं । यह प्रधानरूप एक और अभिन्न है । यदि इसे सब अप्रधान ऊपर रूपों के शिखर में स्थित कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । अनन्त ब्रह्माण्ड है । उनके सिवा ऊपर में अन्यान्य विभाग भी हैं उनमें शुद्ध और अशुद्धस्तरों का विन्यास भी दिखाई देता है । इन सब को मिलाकर समग्र विश्वराज्य है इसके बाहर सृष्टि का कोई भी निदर्शन नहीं है- अनन्त व्यापी ज्योति राशि विराजमान रहती है, इस ज्योति के ऊपर अपरिच्छिन्न चिदाकाश विधमान है ।

यही विश्वजननी का प्रधान अपर रूप है । लक्ष्मी का अथवा भगवान् का जो परम स्वरूप है । वह निराकार संविद्-मात्र है । सृष्टि के प्रारम्भ में वह निराकार संविद् ही नित्य "युगल" रूप में अपने को प्रकट करती है[1] ।

1- साधकगण महापीठ व्यास से नयस्त तनु लेकर पनन्यचित्र से इस स्वरूप का ही ध्यान करते हैं। श्रीक्रमोत्तम नामक ग्रंथ में लिखा है कि निम्नलिखित प्रकार से भावना करना चाहिए-सर्वप्रथम अमृत समुद्र उसमें स्वर्ण-द्वीप, उसमें कल्पवृक्ष भवन, उसमें नवमाणिक्यमण्डप, उसमें नवरत्नमयसिंहासन रूपी कमल । इस कमल के मध्य में त्रिकोण है एवं त्रिकोण के मध्यबिन्दु में अर्धनारीश्वर मूर्ति विराजमान है । इसका लावण्य करोड़ों कन्दर्पों को लज्जित करता है । जैसे मुख कमल मन्द रश्मिद् युक्त है तीन नेत्र है, ललाट में चन्द्रमा है । वस्त्र और आभूषण सभी दिव्य है ये चतुर्भुज है-हाथों में कमल-पात्र चिन्मुद्रा, त्रिशूल और पुस्तक है । मुख और नेत्र सदा आनन्दमय रहते हैं । श्रीक्रमोत्तम में अर्धनारीश्वर मूर्ति के ध्यान का विवरण है पर यह भी कहा गया है कि उस मूर्ति का केवल पुरुष रूप में अथवा मातृरूप में भी ध्यान किया जा सकता है निष्फल ध्यान की तो कथा ही नहीं है । भावनोपनिषद्, तंत्रराज आदि में मानवदेह को की नवरत्न दीप के रूप में और पुरुषार्थ को ही सागर के रूप में भावना करने के लिए कहा गया है । इसका विस्तृत विवरण यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है।

सदाशिव, ईश्वर रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा ये अधिकारी पुरुष है माँ के अनुग्रह आदि पञ्चकृत्यों का सम्पादन ये ही करते हैं। ये सभी माँ के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं, इनके अतिरिक्त, गणेश, स्कन्द, दिक्पाल, कुमारी, लक्ष्मी आदि शक्तियाँ एवं यक्ष, राक्षस, नाग, किंपुरुष आदि में पूज्य रूप सभी वस्तुतः माँ के ही रूप हैं उनकी माया से मोहित होकर लोग उन्हें पहिचान नही पाते। उनके अतिरिक्त पूज्य अथवा फलदायक और कोई नही है जो जिस भाव से उनकी भावना करता है वह उस भाव से फल प्राप्त करता है। वास्तव में वह विभिन्न रूपों में विभिन्न देशों में जीवों पर अनुग्रह करने के लिए विराजमान है। मूल में सब रूप उन्हीं के रूप हैं। शास्त्र के अनुसार वे काञ्ची में कामाक्षी के रूप से केरल में कुमारी के रूप से, महाराष्ट्र अम्बा के रूप से मलय में भ्रामरी के रूप से, करवीर में महालक्ष्मी के रूप से, मालव में कालिका के रूप से प्रयाग में ललिता के रूप से विन्ध्याचल में विन्ध्यवासिनी के रूप से, वाराणसी में विशालाक्षी के रूप से गया में मंगलावती रूप से बंगाल में सुन्दरी के रूप से और नेपाल में गुह्येश्वरी के रूप से विराजमान है ये ही उनके बारह रूप हैं। इनके अतिरिक्त उनके और भी असंख्य रूप शास्त्र से जाने जा सकते हैं।

लक्ष्मी का मुख्य ऐश्वर्य अपरिच्छिन्न है। स्वरूप से अतिरिक्त किसी कारण की अपेक्षा न करके ही वे जगत् के रूप में स्फुरित हो रही है। इन सब आकारों को उनके स्वांश अथवा उनसे भिन्न भी कहना नही बनता, क्योंकि वे अखण्ड चिन्मय है वे अदृश्य चिन्मय स्वरूप में स्थित रहकर भी अनन्त जगत् के आकार में स्फुरित हो रही है और अनन्त जगदाकार से स्फुरित होकर भी अद्वैत चित्स्वरूप से स्खलित नहीं होती है। यही उनका ऐश्वर्य है विचित्र जगदाकार

प्रतिबिम्बतुल्य है । यह अविद्या मायिक होने से सचमुच बन्धन नही है इसलिए ये नित्य मुक्त है । उपादान के बिना अनन्तवैचित्र्यमय जगत का निर्माण करती है । यही उनका ऐश्वर्य है । उनके इस प्रकार के अगणित ऐश्वर्य है ।

मां के अप्रधान परम धाम के खण्ड-खण्ड कितने धाम है । इसका कोई निर्णय नहीं कर सकता । साधक और योगियों के अनुभवमूलक कई धामों का वर्णन -

1- <u>श्रीनगर</u> -

इसका प्राचीन नाम अंतस्दीप है । प्रसिद्धि है कि कि मेरु में चार शिखर हैं -इसके तीन शिखरों पर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की तीन पुरियां हैं, चतुर्थ शिखर पर महामाया की पुरी विराजमान है । इसका नाम श्रीपुर या श्रीनगर है । यह चार सौ योजन चौड़ी है यह सात प्राकारों {प्राचीरों} से परिवेष्टित है । बाहर का प्राकार लोहे का है और भीतर का सोने का है । बीच के छह प्राकार क्रमशः पीतल,तांबा, सीसा जस्ता, पञ्चलोह और वज्र से निर्मित है । प्रत्येक प्राकार मानो एक-एक दुर्ग है सर्वत्र ही रक्षक और दुर्गपालों की व्यवस्था है । लौह दुर्ग के रक्षक महाकालगण और उनकी शक्तियां हैं । कालचक्र, त्रिकोण, पञ्चकोण, षोडशदल और अष्टदल कमल है ।

2- और एक नगर जहां भगवती ललिता ने भण्डासुर के साथ युद्ध करने के उपरान्त विश्राम किया था । प्रसिद्धि है कि विश्वकर्मा और मय ने इस नगर की रचना की थी योगियों के समाज में ऐसी प्रसिद्धि है कि अगस्त्य ऋषि मेरुस्थित श्रीमाता के नगर का दर्शन नही कर सके । वे वेदविद् और सर्वशास्त्र विशारद होते हुए भी तंत्र दीक्षा रहित होने के कारण पराशक्ति की निगूढ़ उपासना में अनाधिकारी रहे । इसलिए उक्त नगर का दर्शन उनके भाग्य में बदा नही । यह नियति का

नियन्त्रण था । बाद में देवी का माहात्म्य सुनकर उनके प्रति वे भक्तियुक्त हुए तथा उन्होंने पत्नी लोपामुद्रा से तान्त्रिक दीक्षा प्राप्त की । तदनन्तर लोपमुद्रा के साथ उपासना कर सिद्धि लाभ किया[1]।

3- भगवती के स्थान पूर्व सागर के तट पर कामगिरि के रूप में पश्चिम सागर के तट पर पूर्णगिरि के रूप में और मेरुशिखर पर जालन्धर के रूप में है । ये सब प्रसिद्ध चतुष्पीठ के अन्तर्गत हैं ।

4- भास्कर राय ने तीन श्री पुरी की बात कही है । पहला अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के बाहर अपर अनन्त योजन विस्तृत और पच्चीस प्राकारों से वेष्टित है । दूसरा मेरू के ऊपर स्थित है वह पहले की अपेक्षा कुछ कम विस्तृत है । तीसरा क्षीर सागर के मध्य में विद्यमान है ।

यह माँ ही गुरूरूप में भावना करने योग्य है भावनोपनिषद् में श्री गुरु सर्व कारणभूता शक्ति कहे गये हैं । तंत्र राज में भी कहा है -

"गुरूराधाभवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मता ।
नवत्वं तस्य देहस्य रूधत्वेन विभासते ।।"

जगत् के सभी रूप तो महालक्ष्मी के प्रधान अपर रूप में है जो प्रधान अपर रूप है वही सृष्टि का आदि है और विश्व के शिखर प्रदेश पर स्थित है यही शिव-शक्ति का युगल रूप है इस शक्ति को हम आपाततः पञ्चदशी के रूप में ग्रहण किया करते हैं । यह युगल रूप ही अनादि दिव्य मिथुन के रूप में साधक समाज में परिचित है ।

कालचक्र का आवर्तन ही कर्म अथवा उपासना का वास्तविक स्वरूप है । आवर्तन

1- त्रिपुरा रहस्य माहात्म्य खण्ड अध्याय- 79 ।

पूर्ण होने के साथ ही साथ बिन्दु में प्रवेश होता है । यही पञ्चदशी की प्राप्ति है युगल की प्राप्ति होने पर कुञ्जलीला का अवसान हो जाता है वैष्णव साधना का यह लीला रहस्य इस सत्य के ऊपर ही प्रतिष्ठित है । किन्तु पञ्चदशी युगल रूप है । इस युगल रूप से क्रमशः अद्वय स्वरूप में जाना ही गुह्य-साधना का इतिहास है । किन्तु उसके पूर्व पञ्चदशी से षोडशी पर्यन्त विवर्तन आवश्यक है ।

शक्ति शिव के अङ्क से अवतीर्ण होकर जब क्रमशः अधिकतर पुष्टि प्राप्त करती है । तब नाभि-मार्ग खुल जाता है एवं शक्ति की पुष्टि को प्रकर्षावस्था में नाभिमार्ग से निकले ब्रह्मनाल का आश्रयण कर जो कमल शून्य पथ में विकसित हुआ है । उसमें स्थिति प्राप्त करती है । इधर शिव परम् शिव रूप में होते हैं । जिन चार मध्यवर्ती अवस्थाओं की बात कही गयी है उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं ।

1- प्रासाद । इस अवस्था में परम पुरुष और परमा प्रकृति तुल्य पर शयन करते हैं । यह एक पार्श्व की स्थिति है ।

2- महाप्रासाद- इस अवस्था में पुरुष और प्रकृति में परस्पर मुद्रा का पूर्वाभास होता है ।

3- परा प्रासाद । यह सामान्य मिलन मुद्रा की अवस्था है ।

4- प्रासादपरा । यह विपरीत मिलन की अवस्था है । इसके बाद ही षोडशी है । तब शिव फिर शिव नही रहते । पूर्वोक्त चार आसनों के प्रभाव से शिव शववत् सुप्त अवस्था में परिणत होते हैं एवं चैतन्य या शक्ति नाभि द्वार से बाहर निकल कर प्रकाशमान होती है । शक्ति तब अकेली रहती है तब शिव जड़ रहते हैं वह उन्मुक्त की शक्ति ही उनकी अधिष्ठात्री है ।

षोडशी की परावस्था ही परा है । महाशक्ति तब द्विभुजा होती है

और सुवर्ण पीठ पर आरूढ रहती है आगे और पीछे दोनों ओर जागृति रहत ी है पन्चदशी से षोडशी पर्यन्त शक्ति रक्त वर्ण थी इस बार उन्होंने शुक्ल वर्ण धारण किया है, रक्त वर्ण अब नही रहा[1]।

उपनिषदों में दो प्रकार की विधा का निरूपण मिलता है -
§1§ अपरा विधा, §2§ परा विधा ।

अपरा विधा के अन्तर्गत संसार के सभी ज्ञान विज्ञान आ जाते हैं, किन्तु इस अपरा से मात्र प्रेयस् की सिद्धि होती है । श्रेयस् की सिद्धि इसमें नही होती । श्रेयस् की सिद्धि परा विधा से होती है- यह परा विधा ही वेदान्त है । यह ब्रह्म विधा है, अध्यात्म विधा है, यह आत्म विधा है । अपरा विधा के अन्तर्गत आने वाले समस्त शास्त्र, ज्ञान-विज्ञान, अविधा जन्य है, मात्र परा विधा ही विधा है शेष सब कुछ अविधा ।

<u>त्रिपुरा रहस्यम् -</u>

शाक्त-ग्रन्थों के अवलोकन से यही तथ्य सामने आता है कि ये त्रिपुरा अथवा शुद्ध चिति शक्ति ही ललिता षोडशी, श्रीविधा, कामेश्वरी, भुवनेश्वरी एवं त्रिपुरसुन्दरी है । ललितासहस्रनाम की नामावली से भी इसी का समर्थन मिलता है । त्रिपुरारहस्य में दत्तात्रेय और परशुराम का संवाद है । इसमें मुख्य-रूप से त्रिपुरा देवी की महिमा का वर्णन है, जो ललिता का ही दूसरा स्वरूप है और यही श्रीविधा भी मानी जाती है । श्रीविधा ही परमतत्त्व है, अथवा यही परमतत्त्व का शुद्ध चैतन्य स्वरूप है । शुद्ध चैतन्य में अनन्त शक्तियाँ हैं, तथा

1- ता0 वा0 शा0 ह0 -पं0गोपी नाथ कविराज- पृ0 173

ये अनेक नामों से सम्बोधित की जाती है, जैसे-परमज्योति, परमधाम, परात्परा, सर्वान्तर्यामिणी, मूलविग्रहा, कल्पनारहिता, त्रयी, तत्त्वमयी, विश्व-माता, व्योमकेशी, शाश्वती, त्रिपुरा, ज्ञानमुद्रा, ज्ञानगम्या, चक्रराजनिलया, शिवा, शिवाशक्त्यैक्यरूपिणी । शुद्ध चैतन्य को इन्हीं नामों से छान्द, कठ, जाबाल, केन, ईश, देवी और भावना आदि उपनिषदों में सम्बोधित किया गया है । श्रीमद्भगवद्-गीता में भी इस प्रकार के नामों का उल्लेख है ।

शुद्ध चैतन्य से ही सृष्टि का प्रादुर्भाव है और यह चितिशक्ति सृजन से पूर्व भी उनमें अव्यक्त रूप से निहित थी । सर्गकाल में केवल इसकी अभिव्यक्ति हुई । शुद्ध चैतन्य स्वरूप में जो अनन्त शक्तियाँ आविर्भूत हुई, उनकी गणना ही दस महाविद्याओं के रूप में की जाती है । तंत्र में इन्हें ही स्वतंत्ररूपा महाविद्या भी बतलाया गया है । चिद्रूपिणी होने के कारण इनमें तत्त्वतः भेद नहीं है । शुद्ध चैतन्य की जो अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें दस महाशक्तियाँ बतलायी गयी हैं - काली, तारा, त्रिपुरासुन्दरी, भुवनेश्वरी, त्रिपुरभैरवी छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी और कमलात्मिका[1] । कहीं-कहीं इनकी संख्या को लेकर कुछ मतभेद भी है, जो बारह तक बतलायी गयी है ।

त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र की गणना श्रीविद्या के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में होती है । सृष्टि, स्थिति और संहार ये त्रिविधात्मक कार्य ललितासुन्दरी के हैं, अतः उन्हें ही त्रिपुरा कहते हैं । षोडशी, पंचदशी और श्रीविद्या इन्हीं के रूप हैं । त्रिपुर सुन्दरी को श्रीमाता भी कहा गया है । जैसा कि ललितासहस्त्रनाम की नामावली में सर्वप्रथम नाम श्रीमाता है, जिसका अर्थ ललितासहस्त्रनाम में भारती,

---

1- मन्त्र महार्णव कमलात्मिका "खण्ड

पृथ्वी और रुद्राणीस्वरूप, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्तियों की समष्टि अम्बिका है। दुर्गासप्तशती में देवी के जो शत नाम बतलाये गये हैं, वे प्रायः सभी सहस्त्रनाम में आ जाते हैं। यदि इन स्तोत्रों का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करें तो यही निष्कर्ष निकलता है, कि वे किसी न किसी प्रकार श्री विद्या से ही सम्बन्धित है। सभी स्तोत्र श्रीविद्या के गूढ़ रहस्यों तथा ज्ञान से परिपूर्ण है।

भगवती त्रिपुरा-ललिता-अम्बिका को आद्या शक्ति माना गया है। महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना योग और मोक्ष दोनों को प्रदाता है आज भी दक्षिण भारत श्री विद्या की उपासना का गढ़ माना जाता है और इस विद्या के आचार्य भी अधिकांशतः वहीं मिलते हैं।

माँ ललितात्रिपुरसुन्दरी अनेक कोटि ब्रह्माण्ड जननी तो है ही, किन्तु इसके साथ प्रपंच की अधिष्ठानभूता, सत्-चित् आनन्दरूपा शिवशक्तैक्यरूपिणी है। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और चित्शक्ति महामाया के ही भेद है। स्थूल-सूक्ष्म, कारण, षट्, विद्या, परा-पश्यन्ती, त्रिपुरा, क्षर, अक्षर शिव शक्ति सब उन्हीं के नाम है।

कोई भी कार्य बिना शक्ति के नहीं किया जाता है। शक्ति और शक्तिमान् में भेद देखना सर्वथा गलत है। शक्ति शक्तिमान् की होती है। बिना शक्ति के शक्तिमान् शव है और शक्तिमान् के बिना शक्ति स्वयं कोई कार्य करने में असमर्थ है। भगवान् कृष्ण के उपर्युक्त वचन यही सिद्ध करते हैं। केनोपनिषद् के शांकर भाष्य में श्रीविद्या को "सुन्दरतमा ब्रह्मविद्या" और "श्री" को "पराश्री" के रूप में मान्यता दी गयी है। श्रीविद्या, ब्रह्मविद्या अथवा पार्वती सदा महेश्वर के साथ विद्यमान रहती है। चितिशक्ति इनका संचालन करती है।

चन्द्रकला विद्या को परब्रह्म की महिषी बतलाया गया है । अधिकांश टीकाकार ब्राह्मी लक्ष्मी का अर्थ ब्रह्मविद्या से ही करते हैं और यही श्रीविद्या मानी जाती है । ललिता सहस्त्रनाम में इन्हें ही त्रिपुरसुन्दरी कहा गया है ।

कूर्मपुराण में परा ललिता को नारायण की मूल प्रकृति या श्रीविद्या कहा गया है ।

श्रीचक्र -

श्रीविद्या के पूजा-यंत्र को श्रीचक्र कहते हैं । समग्र विश्व ही चक्र स्वरूप है ।"श्री" शब्द विद्या और चक्रयन्त्र का द्योतक है। एक मात्र यही ऐसा चक्र है, जो सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड का प्रतीक है इसका आविर्भाव और लय दोनों ही बिन्दु में माने जाते हैं । चक्र की सृष्टि और विश्व अथवा पिण्ड (देह) की सृष्टि भी बिन्दु से ही होती है । बिन्दु ही चक्र का मूल है और यह बिन्दु शक्ति और शिव का सामरस्य है । शिव को संहारात्मक अग्नि तथा शक्ति को सर्गात्मक सोम माना जाता है । दोनों शक्तियों का सामरस्य रवि है, यही बिन्दु चक्र के मध्य में है और उसके बाद त्रिकोण अष्टकोण अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, तीन वृत्त और तीन भूपुर है । इस यन्त्र में कुल 3 त्रिकोण 28 मर्मस्थल और 24 सन्धियां होती हैं । श्रीचक्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और समस्त पिण्ड के प्रतीक अथवा द्योतक है ।

प्रत्येक चक्र का अपना वर्ण है तथा ये उसकी चक्रेश्वरी भी है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक चक्र की एक विशेष प्रकार की योगिनियां भी है । प्रत्येक चक्र की मुद्रा देवता भी है । योगिनियों की संख्या 64 करोड़ मानी जाती है ।

योगिनियों का कार्यक्षेत्र केवल परिधि ही है । साधक जैसे-जैसे गुप्तविद्याओं अथवा रहस्यों में अधिकाधिक प्रविष्ट होता जाता है, वैसे-वैसे उनके रहस्य गहन और गहनतर होते जाते हैं तथा उनकी गूढ़ता बढ़ती जाती है ।

चक्रों की मुद्रा देवता भी है । पूजा का यह भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है । प्रत्येक मुद्रा पर उसके देवता का प्रभाव है ।

त्रैलोक्य मोहन चक्र -

यह तीन रेखाओं का एक समकोण त्रिभुज है,जिसे भूपुर भी कहा जाता है । रेखाएं एक दूसरे के अन्दर है । इनका वर्ण रक्त है । तथा चन्द्रकला से विभूषित है ।

इस चक्र की शक्तियां प्रकट योगिनी कहलाती है । चतुरस्त्र की मध्यरेखा में ब्राह्मी,माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, माहेन्द्री,चामुण्डा और महालक्ष्मी की अर्चना की जाती है । ये शक्तियां श्यामल वर्ण की है तथा रक्त वस्त्रों से सुसज्जित है । सर्वसौभाग्यदायक चक्र में चौदह देवियां चौदह कोणों में स्थित है ।

अष्टमावरण में आयुध देवताओं की पूजा होती है । ये रक्तवस्त्रावृता है और इनके हाथ वर और अभय मुद्रा से शोभित है । इसके पश्चात् सर्वसिद्धिप्रदचक्र में महात्रिकोणों की आराधना होती है । इसके अग्र दक्ष और वाम कोण में कामेश्वरी,वज्रेश्वरी और भगमालिनी की पूजा होती है । इस चक्र की देवियां अतिरहस्य योगिनी कहलाती है । शिव और शक्ति त्रिकोणों का आपस में अविनाभाव सम्बन्ध है । अतः बिन्दुचक्र के बिन्दु और त्रिकोण के महाकामेश्वर और महा कामेश्वरी भी एक दूसरे से अविनाभाव संयुक्त है ।

श्रीचक्र में नौ चक्र है । इन चक्रों के अन्तर्गत अणिमादि सिद्धियों के अतिरिक्त अनेक शक्तियां भी आती है, जिनके विभिन्न नाम,रूप एवं आकार है

और आयुध भी भिन्न है । श्री चक्र की पूजा आवरणार्चन से आरम्भ होती है । ये आवरण भी नौ हैं । नव चक्रों को ही सृष्टि स्थिति और संहार का भी द्योतक माना जाता है तीन चक्रों को संहार-चक्र,तीन को स्थिति-चक्र और तीन को सृष्टि चक्र मानते हैं ।

ब्रह्माण्ड के समान ही मानव देह में भी श्रीचक्र की भावना अपने शरीर में की गयी है । श्रीचक्र में कमल भी है। कमल का अपना एक विशिष्ट स्थान है । कमल का संबंध सूर्य के साथ है वह सूर्योदय के समय ही खिलता है और सूर्यास्त होने के साथ बन्द भी हो जाता है । जिस प्रकार कमल की पंखुड़ियाँ धीरे-धीरे खुलती हैं, उसी प्रकार मानव देह में जो चक्र है, उसकी भी कल्पना की गयी है । चक्रों को कमल, सदृश माना गया है ।

श्रीचक्र को समस्त चक्रों का चक्रराज कहा जाता है, क्योंकि जितने भी अन्य देवी-देवताओं के चक्र हैं उनका प्रादुर्भाव इस चक्र से हुआ है । श्रीचक्र के माध्यम से किसी भी देवी-देवता की पूजा की जा सकती है । इसीलिए सभी पूजा-स्थलों में श्रीचक्र को मध्य में ही रखा जाता है । सम्पूर्ण श्रीचक्र का उद्भव बिन्दु और त्रिकोण से माना गया है ।

महाविद्या के दश भेद माने गये हैं, अर्थात् शक्ति के दश स्वरूप अथवा दश महाशक्तियाँ हैं । जिनके आधार पर उनकी साधना की जाती है । त्रिपुरसुन्दरी की साधना ही श्रीविद्या है । त्रिपुरभैरवी और कामकलात्मिका भी अधिकांशतः श्रीविद्या के अन्तर्गत आती हैं त्रिपुर-सुन्दरी षोडशी, राजराजेश्वरी श्रीविद्या और त्रिपुरसुन्दरी भी कहते हैं कामकलात्मिका और कमला [लक्ष्मी] में विशेष भेद नहीं है । श्रीविद्या से मोक्ष और भोग दोनों की ही प्राप्ति मानी जाती है ।

श्रीविद्या के पंचदशी, षोडशी, दीपनी एवं कामराज आदि अनेक भेद हैं इनके मन्त्र वर्णमूलक और उपासनामूलक दोनों प्रकार के हैं । पंचदशी मंत्र में पन्द्रह अक्षर और जो षोडशी में सोलह अक्षर हैं । ज्ञानार्णवतंत्र के अनुसार-

"कामराजाख्यमन्त्रोक्ते श्रीबीजेन समन्विता ।

षोडशाक्षरविधेयं श्रीविधेति प्रकीर्तिता । ।।

वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशीक्षरी ।

ब्रह्मविद्यास्वरूपा हि भुक्ति-मुक्तिफलप्रदा ।।

कामराज मन्त्र में बीज हैं और षोडाशाक्षरी विद्या को श्रीविद्या कहते हैं ये ब्रह्मविद्या-स्वरूपा है और भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करती है ।

विष्णु-ब्रह्माण्ड के पालन कर्ता तथा लक्ष्मी के पति और माया के स्वामी ।

पुराणां श्रीपुरमिव शक्तीनां ललिता यथा ।

श्रीविद्योपासकानां च यथा देवो वरः शिवः।।।8

जैसे श्रीपुर समस्त पुरों में श्रेष्ठ है, शक्तियों में ललिता है और परमशिव श्रीविद्या के उपसकों में सर्वश्रेष्ठहैं । बृहदनारदीय पुराण में शक्ति को जगत् का कारण प्रतिपादित करते हुए उल्लेख किया गया है, कुछ लोगों का कथन है कि वे उमा हैं, कुछ उन्हें लक्ष्मी और कुछ कहते हैं कि वे भारती और वे ही गिरिजा, अम्बिका, दुर्गा, भद्रकाली, चण्डी माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ब्राह्मी, विद्या, अविद्या, माया, प्रकृति और परा है ।

श्रीमाता -

जगत्-जननी ही ऐसी माँ है जिनकी शरण में जाने पर असीम भवसागर से पार उतरा जा सकता है । वे ही मेरी कर्णधार हों तो किसी प्रकार का भय नहीं । जगत्-जननी आद्याशक्ति महामाया त्रिपुर-सुन्दरी के नाम मात्र से ही हृदय में शान्ति एवं अपूर्व तेज का प्रकाश हो जाता है । सम्पूर्ण विश्व उनकी शक्ति के स्पन्दन से स्पन्दित हो रहा है । हमारे असीम दुःखों को एक मात्र वे ही दूर कर सकती है ।

शुद्ध चेतना शिव है और वे उनकी शक्ति है । वे समस्त ब्रह्माण्ड की जननी है और जीवनीशक्ति के रूप में मानव शरीर के मूलाधार में उनका निवास है ।

श्रीमाता से यह आभास होता है कि वे श्री की माता हैं । श्री का अर्थ है लक्ष्मी या सरस्वती अथवा इसका अर्थ धात्री भी है श्री शब्द सम्पन्नता, वैभव, सौन्दर्य और ऐश्वर्य का भी प्रतीक है । पक्ष का प्रथम दिवस भी श्री कहलाता है । अतः यहाँ श्रीमाता का अर्थ रुद्र की सहधर्मिणी अथवा पत्नी नहीं है या सरस्वती और लक्ष्मी के तुल्य स्थान रखने वाली भी नहीं है, अपितु वे परम शिव की अर्द्धाङ्गनी और ब्रह्मा, विष्णु, त्रिदेवों की माता है ।

माँ का अर्थ "मूल्यांकन करने वाली" भी होता है अर्थात् वे श्री या लक्ष्मी का भी मूल्यांकन करती है । लक्ष्मी ने प्राणी को, जो सीमित वस्तुओं से अधिक शक्तिशाली है, सीमित कर दिया है । अतः उसका अर्थ यह भी है कि वे असीमित श्री अथवा मुक्ति है ।

श्री का अर्थ विष भी किया जाता है और माँ का अर्थ संयुक्त करना अथवा लगाना भी है । शिव के कण्ठ में गरल है । शिव और शक्ति एक हैं,

अतः श्रीमाता पुरुष-वाचक हुई। श्रीमाता स्त्री-वाचक भी है। अतः यह देवी का विशेषण भी हुआ, क्योंकि देवी का एक भाव प्रकाश या विमर्श भी है।

महान् पुरुषों और महान् वस्तुओं का उल्लेख करते हुए उनकी मर्यादा और मान को दृष्टि में रखते हुए उनके नाम के आरम्भ में श्री शब्द लगा देते हैं, जैसे-श्रीचक्र, श्रीविद्या, श्रीशैल, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीफल आदि।

महालक्ष्मी- करवीर (कोल्हापुर) की अधिष्ठात्री देवी का नाम पद्मपुराण के अनुसार महालक्ष्मी है। अथवा महान् लक्ष्मी- विष्णु की पत्नी है। मेलारतंत्र के अनुसार महाल एक दैत्य का नाम है, जिसका उन्होंने वध किया अतः उन्हें महालसा और महालक्ष्मी कहते हैं। इनका निवास पश्चिमी सागर के सह्य पर्वत के निचले स्थान पर है। शिव पुराण में शिव के सन्दर्भ में कथन है- "सबको आकर्षित करने वाली परा शक्ति श्यामा जो शिव के अङ्क में आसीन हैं, उन्हें महालक्ष्मी कहते हैं।

आयुष्यसूक्त में कहा गया है- "श्री-----लक्ष्मी"। लक्ष्मी को ही पार्वती कहते हैं। मार्कण्डेयपुराण के अनुसार, महालक्ष्मी से ही प्रत्येक वस्तु का प्रादुर्भाव हुआ है, जो तीन गुणों से अभिव्यक्त है"। धौम्यस्मृति के अनुसार तेरह वर्ष की कन्या को महालक्ष्मी कहते हैं।

<u>लक्ष्मी के नाम -</u>

लक्ष्मीतन्त्र के पचासवें अध्याय में श्रीसूक्त के वैभव का वर्णन किया गया है और श्रीसूक्त में कहे गये लक्ष्मी के नामों का उल्लेख तथा उनकी निरुक्ति की गयी है। श्रीसूक्त में लक्ष्मी के तिरपन (53) नाम हैं इन सभी नामों के आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः पद लगाकर विभिन्न मंत्र बनाये जाते हैं। इन मंत्रों

का माहात्म्य तथा उनके फलों का वर्णन भी साथ ही साथ किया गया है किन्तु लक्ष्मी तंत्र का कथन है कि उन मंत्रों का उतना ही माहात्म्य नहीं है, सभी मन्त्र मोक्षपर्यन्त सब प्रकार के फलों को प्रदान करने वाले हैं ।

1- सूक्तेऽस्मिन् ममनामानि पञ्चाशत् त्रीणि च । ल0तं0 50/36

लक्ष्मी के तिरपन नाम निम्नलिखित हैं -

1-	हिरण्यवर्णा	20-	तृप्ता	39-	ईश्वरी
2-	हरिणी	21-	तर्पयन्ती	40-	मनसः कामः
3-	सुवर्णस्त्रग्	22-	पद्मे स्थिता	41-	वाच आकूतिः,
4-	रजतस्त्रग्	23-	पद्मवर्णा	42-	सत्यम्
5-	चन्द्रा	24-	चन्द्रा	43-	पशूनां रूपम्
6-	हिरण्यमयी	25-	प्रभासा	44-	अन्नस्य यशः
7-	लक्ष्मी	26-	यशसा	45-	माता
8-	अनपगामिनी	27-	पराकरिणी	46-	पद्ममालिनी
9-	अश्वपूर्वा	28-	देवजुष्टा	47-	पुष्करिणी
10-	रथमध्या	29-	उदारा	48-	यष्टि
11-	हस्तिनादप्रबोधिनी	30-	ता	49-	पिङ्गला
12-	श्री	31-	पद्मनेमी	50-	तुष्टि
13-	मां	32-	आदित्यवर्णा	51-	सुवर्णा
14-	देवी	33-	कीर्ति	52-	हेममालिनी
15-	का	34-	ऋद्धि	53-	सूर्या
16-	सोस्मिता	35-	गन्धद्वारा		ल0तं0 50/36-204
17-	हिरण्यप्राकारा	36-	दुराधर्षा		
18-	आर्द्रा	37-	नित्यपुष्टा		
19-	ज्वलन्ती	38-	करीषिणी		

2- यद्यप्येषां मयाप्रोक्ता व्यवस्था फलगोचरा ।
न तावदेव माहात्म्यमेषां चिन्त्य विपश्चिता ।
आमोक्षान्निर्विचारेण सर्वा सर्वफलप्रदाः ।। वही 50/205,206

नाम निर्वचन -

न केवल श्रीसूक्त के इन तिरपन नामों का उल्लेख लक्ष्मीतंत्र में है, अपितु इन सभी नामों का निर्वचन भी है । जिसमें लक्ष्मी के स्वरूप और स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है । लक्ष्मी और श्री बहुत प्रसिद्ध नाम है । लक्ष्मीतंत्र वैष्णव और श्री सम्प्रदायों में अतिमान्य आगम ग्रन्थ है । इसका समय विद्वानों ने बौद्ध दार्शनिक धर्म कीर्ति के अनन्तर निश्चित किया है । धर्मकीर्ति का समय 7वीं शताब्दी में माना जाता है । अतः लक्ष्मी तंत्र की रचना 8वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या 9वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई होगी । इस कारण लक्ष्मी-तंत्रकार के द्वारा श्री सूक्तगत नामों के निवर्चन का ऐतिहासिक महत्त्व है । इस ग्रंथ में इन निर्वचनों को स्वयं श्री बतलाई गई है -

सूक्तेऽस्मिन् ममनामानिपन्चाशत् त्रीणि चाच्युत । तेषां निरुक्तिं मत्तस्त्वं श्रणु जम्भनिषूदन ।" ।

यह सम्भवतः इन निर्वचनों को साम्प्रदायिक मान्यता दिलाने के लिए है इनका क्रमिक निर्वचन इस प्रकार से है[2]।

लक्ष्मी -

सर्वप्रथम लक्ष् धातु से लक्ष्मी का निर्वचन किया गया है लक्ष् धातु का अर्थ है-दर्शन और अड्•कन । इसके आधार पर लक्ष्मी नाम का अर्थ करते हुए कहा गया है । कि लक्ष्मी सब प्राणियों का साक्षात्कत्री है, शुभ और अशुभ को

1- लक्ष् दर्शनाड्•कनयोः (माधवीया धातुवृत्ति, चुरादिगण, 5

2- साक्षिणीसर्वभूतानां लक्षयामि शुभाशुभम् ।

लक्ष्मीरवास्मि हरेर्नित्यं लक्ष्यं सर्वमितरद्यत् ।। ल0तं050/62

देखती है, ईश्वर को सर्वसम्पद है, तथा सर्वप्रमिति [यथार्थज्ञान] को लक्ष्य[प्रमेय] है लक्ष धातु के आधार पर यह अर्थ किया है व्याकरण में भी लक्ष्मी शब्द की व्युत्पत्ति इसी धातु से मानी गयी है निम्नलिखित उणादि सूत्र से इसकी सिद्धि होती है -

लक्षेर्मुट् च[1]

अर्थात् लक्ष [दर्शनाङ्कनयोः] धातु [चुरादिण्यन्त] को उक्त औणादिक सूत्र से ई प्रत्यय, मुट् का आगम् तथा णिलोप प्राप्त होता है-

लक्ष + णिच् + मुट् + ई = लक्ष + म् + ई - लक्ष्मी

इस प्रकार व्याकरण के अनुसार लक्ष धातु से लक्ष्मी शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका निम्नलिखित अर्थ कहा गया है -

लक्षयति पश्यति सुकृतिनं लक्ष्मीः, अङ्कयति हरेर्गात्रं वा ।[2]

इसके पश्चात् ला"तथा "क्षिप्" धातुओं के द्वारा लक्ष्मी की व्युत्पत्ति की गयी है । क्षिप् धातु तो प्रेरणा के अर्थ में सर्वस्वीकृत है ही परन्तु "ला" धातु दान और आदान दोनों अर्थों में स्वीकार की गई है किन्तु आचार्य चन्द्र इसे दानार्थक मानते हैं । यथा-

रा दाने । ला आदाने । द्वावपि दाने इति चन्द्रः[3]

राति लाति द्वावपि दानार्थौ इति चान्द्राः ।[4]

1- उणादि सूत्राणि, 3/160

2- प्रक्रिया सर्वस्व 6/160

3- वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी, पृ0 166

4- माधवीया धातुवृत्ति अदादिगण, 61

इस प्रकार "ला" तथा क्षिप् धातुओं की सहायता से लक्ष्मी शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है कि लक्ष्मी दान करने वाली, मन, वाणी और शरीरों को प्रेरित करने वाली तथा ज्ञान स्वरूप है[1]।

"क्षिप् प्रेरणे[2] धातु से ही लक्ष्मी शब्द का दूसरा निर्वचन करते हुए कहा गया है कि लक्ष्मी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में प्रकृति को प्रेरित करने वाली है लक्ष्मी लक्षण के योग्य, अर्थात् लक्ष्य पदार्थों को कालाकाष्ठा आदि अवस्थामयी है[3]।

एक दूसरा निर्वचन करते हुए कहा गया है कि लक्ष्मी अव्यक्त (प्रकृति) व्यक्त (महदादि) सत्व (पुरुष) में स्थित होकर प्रेरित करती है, स्वयं को लक्षित करती है और अन्त में लीन हो जाती है[4]।

इस निर्वचन में लक्ष्मी शब्द के प्रथम दो वर्ण लकार और क्षकार के आधार पर "ला" धातु तथा "क्षिप्"-धातु के द्वारा लक्ष्मी शब्द का अर्थ किया गया है इसके अनन्तर क्षकार तथा "मी" शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए निर्वचन प्रस्तुत है यहाँ पर क्षकार तथा "मी" की ही व्युत्पत्ति के लिए निम्न धातु की सहायता ली गई है -

---

1- ददती क्षेपणी चास्मि नित्या त्रिप्रेरणातथा।
तथा ज्ञानस्वरूपाहंलक्ष्मीया मिती मिती । ल0तं0 50/63

2- माधवीया धातुवृत्ति, दिवादिगण, 14, तुदादिगण 5

3- लये निवासे निर्माणे नित्या त्रिप्रेरणी तथा ।
लक्षणाहयस्य भावस्य कलाकाष्ठादिरूपिणी । ल0तं050/64

4- अव्यक्तव्यक्तसत्वस्था प्रेरयित्री सदास्म्यहम् ।
लक्षे नयामि चात्मानं लामिचान्ते क्षिमामि च ।। वही, 50/65

"क्षिप" प्रेरणे[1]

"क्षप्" प्रेरणे[2]

क्षिणु हिंसायाम्"[3]

"क्षमूष सहने"[4]

माङ् माने शब्दे च[5]

"मन् ज्ञाने"[6]

"मन् माने"[7]

इन धातुओं की सहायता से लक्ष्मी शब्द का निर्वचन करते हुए कहा गया है कि वह मन, वाणी और कर्म को प्रेरित करता है, सज्जनों के पापों को नष्ट करता है, क्षमारूपिणी होकर सबको क्षमा करती है {सहती है} जगत् का निर्माण करती है, जगत् को जानती है, तथा सब का माप भी करती है ।[8] धातुएं अनेकार्थक होती हैं उस अनेकार्थकता का द्योतक उपसर्ग होता है जैसे प्रहार, विहार, संहार आदि ।

1- माधवीया धातुवृत्ति, तुदादिगण 5, दिवादिगण 14

2- वही, चुरादिगण, 326

3- वही, तनादिगण, 4

4- वही, भ्वादिगण 294

5- वही, जुहोत्यादिगण, 9

6- वही, दिवादिगण, 71

7- वही, अदादिगण, 65

8- क्षिपामिक्षणयाम्येका क्षिणोमि दुरितं सताम् ।

इस प्रकार लक्ष्मीतंत्र में ना मो की व्युत्पत्ति की गयी है लक्ष्मी की महिमा को बढ़ाने वाले इन अर्थों को देखकर ही कपिल ने लक्ष्मी का कृपा-दृष्टि की याचना की थी[1]।

श्री: -

व्याकरण के अनुसार "श्रिञ् सेवायाम्"[2] धातु से "क्विब्वचि प्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च,[3] दीर्घोऽसम्प्राणञ्च[4] उणादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय तथा दीर्घत्व की प्राप्ति होकर श्री शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है - "श्रयति हरिं इति श्री: ।

लक्ष्मीतंत्र के निर्वचन का ढंग अपना मौलिक है सर्वप्रथम- "श्रु श्रवणे"[5]
"शॄ हिंसायाम्[6]
"शॄ विस्तारे"[7]

इन धातुओं की सहायता से श्री शब्द का निर्वचन किया गया है। इन धातुओं के आधार पर अर्थ करते हुए कहा गया है कि श्री करुण वाणी को सुनती है, सज्जनों के पापों को नष्ट करता है, गुणों से विश्व को व्याप्त करती है तथा शाश्वत शरणस्थल है। वह हरि का शरीर है। देवता लोग श्रद्धा-पूर्वक उन्हें चाहते हैं।[8]

1- इत्येतान् मयि दृष्ट्वार्थान् परमर्षिरुदारधी: ।
लक्ष्मीलक्ष्य मेत्येवं कपिलो मुनिरुक्तवान् ।। वही 50/6

2- माधवाया धातुवृत्ति, भ्वादिगण, 626

3- वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, 3/2/177

4- उणादिसूत्राणि 2/54

5- वही भ्वादिगण, 662 6- वही;क्रियादिगण, 18 7- वही.

8- श्रृणोमि करुणां वाचं श्रृणोमि दुरितं सताम् ।
श्रृणामि च गुणैर्विश्वं शरणं चास्मि शाश्वतम् ।
शरीरं च हरेरस्मि श्रद्धया चेप्सिता सुरै: ।। ल0तं0 50/79,80

यहाँ "श्रद्धया चेप्सिता सुरैः" अर्थात् देवता लोग श्रद्धापूर्वक मुझे (श्री को) ही चाहते हैं (के विषय में टीकाकार का कथन है कि श्रद्धा शब्द से शकार और रेफ को ग्रहण करके ईप्सित पद के लिए ईकार को मिला कर श्री शब्द का निर्माण होता है ।[1]

श्री शब्द का दूसरा निर्वचन करते हुए कहा गया है कि शान्ता, पश्या, मध्यमा और वैखरी इस चार प्रकार की वाणी के क्रमशः चार स्थान होते हैं । मूलाधार, नाभि, हृदय और कण्ठ । लक्ष्मीतन्त्र का कथन है कि श्री आधार पदस्थ शान्ता है नाभि से उत्पन्न होने वाली रन्ती या पश्यन्ती है हृदय में आकर बुद्धि को प्रेरित करने वाली मध्यमा है तथा मुख में आकर वर्णों को उत्पन्न करने वाली वैखरी है ।[2] टीकाकार का कथन है कि शान्ता पद से शकार रन्ती पद से रेफ तथा प्रेरणी पद से ईकार को ग्रहण करके श्री शब्द बना है ।[3]

निर्वचनान्तर करते हुए कहा गया है कि शान्ता, पश्या, मध्या तथा वैखरी के रूप में मूलाधार, नाभि, हृदय तथा कण्ठ में निवास करने वाली श्री विष्णु की सेवा करती है वह जया आदि शक्तियों द्वारा सेवनीय है । शरणागत के पापों को नष्ट करती है तथा सभी कामनाओं को प्रदान करती है शक्ति को

1- श्रद्धयेति । अस्मात् शकाररेफं चादाय ईप्सितपदादीकारं संयोज्य श्रीशब्द इति भावः । ल०तं० टी०50/80

2- शान्ताधारपदस्थास्मि पश्या रन्ती च नाभिगा ।
प्रेरणी च धिया मध्या सृष्टिर्णवक्त्रे तथार्णताम् ।। ल०तं०50/8 ।

3- लं० तं० टी० 50/81

प्रकाशित करने वाली, कल्याणमयी तथा ईप्सित रति है । वेदान्तन श्री को इसी रूप में जानते हैं[1] ।

अनपगामिनी -

एक मनोरंजक आख्यान इससे जुड़ा है प्राचीन काल में विश्वामित्र के कहने से सरस्वती ने अपने जल में वसिष्ठ को बहा लिया, तब लक्ष्मी ने ही ऋषियों के अनुरोध से वसिष्ठ को शत्रुओं से मुक्त कराया[2] ।

अश्वपूर्वा -

इस नाम के अक्षरों से तीन बातें निकलती हैं - अश्वरूपा, पुरूरूपा और वाहिनी । बुद्धि को अनेक विषयों में खींचकर दौड़ाने के कारण अश्वा और आत्मा के द्वारा शरीर का वहन करने के कारण वे वाहिनी है । यही नहीं योगारम्भ में घोड़े की हेष (हिनाहिनाना) ध्वनि के समान अनाहत नाद करने की भी सूचना इस नाम से मिलती है ।[3]

रथमध्या -

यह नाम नाड़ी-मध्य में पहुँच कर रथ की भांति ध्वनि करने के कारण पड़ा ।[4]

1- चक्षुः स्थानास्थिता चैवं शान्तापरयादमेदिनी ।
श्रयामि श्रयणीयास्मि शक्तिभारोमिरामि च ।।
शक्तेरुज्ज्वलिनी चास्मि शन्तमा रतिरीप्सिता।
इति ब्रुयन्ततत्वज्ञाः श्रियं मां विदुरञ्जसा। वही 50/82,83

2- वही- 50-67·74

3- वही - 50-75-76

4- वही - 50-77

हस्तिनादप्रबोधिनी -

व्योमरन्ध्र में लक्ष्मी हस्तिनाद उत्पन्न करती है[1]।

श्री - लक्ष्मी के इस सर्वाधिक प्राचीन नाम के विषय में कहा गया है कि वे सज्जनों की करुणा वाणी को सुनती है । उन्हें दुर्गुणों से मुक्त करती है, गुणों से विश्व को व्याप्त करती है । श्री विष्णु की देह है, नाभिमा अर्थात् परा और पश्यन्ती रूपा है । बुद्धि को प्रेरित करने वाली मध्यमा वाक् है, वर्णों की सृष्टि रूप वैखरी वाणी भी वे ही है ।[2] जया आदिशक्तियों के द्वारा सेव्य है ।

मा - प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत लक्ष्मी में ही परिमित हो जाता है ।[3]

श्रा - वेदों के द्वारा अन्वेषण किये जाने योग्य शरीर में वे ब्रह्मरूप धारणकर स्वाध्याय के अध्ययन में तत्पर विविध भावों की सृष्टि करती है ।[4]

सोस्मिता - स्मित का अभिप्राय है ब्रह्म का विकास लक्ष्मी उससे युक्त है ।[5]

हिरण्यवर्णा -

रण में भ्रमरी की भांति सभी प्राणियों के अन्तर में निहित होकर तैल धारा के समान अस्खलित श्रेष्ठनाद उत्पन्न करने के कारण प्रजापति ने लक्ष्मी का शब्द ब्रह्म मय नाम "हिरण्यवर्णा" रखा ।

1- वही- 50·78

2- वही - 50·78-82

3- वही - 50·88-89

4- वही - 50·92-93

5- वही- 50·94-95

हरिणी -

हरिणी के सदृश दूरधावन के कारण, योगियों के द्वारा भक्ति पूर्वक हरण अर्थात् स्नेहाबद्ध हो जानेके कारण, अथवा हरि (विष्णु) के द्वारा आश्लिष्ट की जाने के कारण यह नाम पड़ा । श्री सदैव हरिण-भासा है । सज्जनों के दुरितों, दुःखों दुर्व्यसनों और पापों का हरण करने वाली है[1]। हरि को वही कार्यों में ले जाती है । श्री ने हरिणी रूप को धारण कर अरण्य में विचरण किया, इसका उल्लेख देवी पुराण में भी है ।

सुवर्णस्त्रक -

शोभन वर्णों की सृष्टि करने वाली या विश्व को निवास के लिए भलीभांति वरण करने के कारण यह नाम प्रचलित हुआ ।[2]

रजतस्त्रक् -

इसका निर्वचन इस प्रकार से है राजतेर्मैस्त्रजः पद्मे राजन्ते च स्त्रजोऽमला । राजितारच प्रजः सर्वे स्त्रष्टारो जगतां मया ।।[3]

चन्द्रा -

चन्द्रमा के सदृश निरन्तर भक्तों के चित्त को द्रवित करने के कारण यह नाम पड़ा ।[4]

1- लक्ष्मीतंत्र 50,43-47

2- वही 50,49-50

3- लक्ष्मीतंत्र - 50-51-52

4- वही 50.54

हिरण्मयी -

श्री प्रकृति से परे त्रयीमयी व्योममण्डल में उदय होती है। संसार के हित-साधन के लिए हिरण्य में ही अवस्थित रहने के कारण यह नाम पड़ा।[1]

लक्ष्मी -

शुभाशुभ को लक्षित कराने के कारण श्री का यह सर्वाधिक प्रचलित नाम है। लय, निवास और निर्माण में प्रकृति को प्रेरित करना तथा ज्ञानस्वरूपा और लक्षणीया होना भी इसमें कारण है[2] यह नामकरण करने का श्रेय कपिल को है।

हिरण्यप्रकाशा -

इस नाम का सम्बन्ध भगवती श्री की हितकारिणी और रमणीय प्रकृति से है -जिसका अवलम्बन ऋषियों को अन्धकार से परे कर देता है।[3]

आर्द्रा -

दया से आर्द्र अन्तःकरण वाली लक्ष्मी अपने उपासकों के समस्त दोषों को दूर से ही दूरकर देती है।[4]

ज्वलन्ती -

महादेवी लक्ष्मी सम्पूर्ण प्राणियों के हृदयाकाश में प्रज्ज्वलित

1- लक्ष्मीतंत्र 50·58

2- वही 50·62

3- वही 50·96

4- वही 50·98·99

होती है ।[1] अपनी कान्ति से जगत को कान्तिमान् करने पर भी वे अशिखा है। अशिखा से अभिप्राय परा रूप है । पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के भेद से वे त्रिविधा है ।[2]

तृप्ता -

भगवती महालक्ष्मी की भगवान् विष्णु में अव्यभिचारिणी प्रीति है । वे बिना प्राकृत लोगों के ही नित्य तृप्ता है ।[3]

तर्पयन्ती -

वे अपने गुणों से विष्णु का तर्पण करती है और उनके गुणों से अपना । प्राणों का प्रेरणावश 72 हजार नाडियाँ और रसों से देहसागर को तृप्त करती हैं ।[4] सुषुम्ना नाडी-पथ से परमात्म तत्त्व की साक्षात् अनुभूति करने वाले योगियों के विमल योग दर्पण में बिम्बभाव को प्राप्त करके वे परमार्थ सुधारक से, जो चिन्मय है, सत्व को तृप्त करने वाली है[5]।

पद्मेस्थिता -

पद्म काल है और वे सम्पूर्ण काल का आकलन करने वाली है ।[6]

1- लक्ष्मीतंत्र - 50•98•102

2- वही - 50•100

3- वही - 50•102

4- वही - 50•104•7

5- वही - 50•104-7

6- वही - 50•111

पद्मवर्णा -

लक्ष्मी का शरीर पद्माकार वर्णों से अलंकृत है ।[1]

प्रभासा -

लक्ष्मी की प्रभा सदैव अक्षुण्ण और प्रकृष्ट रहती है ।[2]

वैदिक श्री सूक्तगत लक्ष्मी के नामों की परम्परा के प्रकाश में समझने के उपर्युक्त प्रयत्न में हम देखते हैं कि प्रारम्भ में लक्ष्मी का स्वरूप अत्यन्त व्यापक था । लक्ष्मी के आने पर हिरण्य,गो {पशुभाग} अश्व और पुत्र मित्रादि के रूप में पुरूष प्राप्ति का ऋषि को पूर्ण विश्वास था कि लक्ष्मी का वरण करने पर दारिद्रय दूर हो जाता है विल्व वनस्पती की उत्पत्ति लक्ष्मी के तप से हुई है ।

लक्ष्मी से प्रार्थना की गई है कि वे सम्पूर्ण अज्ञान और विघ्न तथा बहिरिन्द्रियों से उत्पन्न अलक्ष्मी को दूर करें । भूख प्यास,अभूति,असमृद्धि आदि को भी वे हाट से बाहर करने वाली है ।

लक्ष्मी के अपत्य-

कर्दम और चिक्लीत श्रीसूक्त में लक्ष्मी के पुत्र के रूप में उल्लिखित हैं ये दोनों ऋषि है कर्दन ऋषि के निवास करने पर श्री का निवास भी स्वाभाविक है इसीलिए उनसे प्रार्थना की गई है कि वे हमारे घर में लक्ष्मी का वास करायें । चिक्लीत ऋषि से भी यही प्रार्थना की गई है । ऋषि चिक्लीत स्निग्ध पदार्थों के द्रष्टा भी माने गये हैं ।

1- लक्ष्मीतंत्र - 50 ।13

2- वही -50।20

अपने उपर्युक्त गुणों के कारण श्री परवर्ती काल में इतनी अधिक लोकपूजा बनी कि उनके लाक्षणिक या प्रतीकात्मक स्वरूप का विस्मरण सा हो गया ।

षाड्गुण्य –

मैत्रायणी उपनिषद् में शब्द ब्रह्म, और परब्रह्म, ब्रह्म के दो रूपों का उल्लेख किया गया है ।[1] तंत्रों में भी ब्रह्म के यही दो रूप स्वीकार किये गये हैं और लक्ष्मीतंत्र को भी यही दो ब्रह्म मान्य हैं[2] परब्रह्म से उसकी शक्ति (लक्ष्मी) शब्द ब्रह्म के रूप में उदित होती है ।[3] लक्ष्मी ही जगत् के रूप में लक्षित होती है अथवा जगत् लक्ष्मी का ही रूप है ।[4] लक्ष्मीतंत्र में इसे जगत्प्रकृति भाव कहा गया है ।[5] जगत् के रूप में होने के लिए लक्ष्मी शब्द ब्रह्म के रूप को छह रूपों में धारण करती है । इसी को षाड्गुण्य कहा गया है ।

1- द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।

शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ।। मै0 उ0 22/6

2- शब्द ब्रह्मणि निष्णातः शब्दातीतं प्रपद्यते ।

तथा–

शब्दब्रह्मणि निष्णातः प्रापयेयुः परां श्रियम् ।

ल0तं051/32,22/3।

3- शब्दब्रह्मस्वरूपेण स्वशक्त्या स्वयमेव हि ।
मुक्तयेऽखिलजीवानामुदेमि परमेश्वरात् ।। वही 20/7

4- जगत्तया लक्ष्यमाणा सा लक्ष्मीरिति गीयते । अहिर्बु0, 3/9

5- जगत्प्रकृतिभावो मे यः सा शक्तिरितीर्यते ।

ल0तं02/29 ।

षेषडध्व निम्न हैं[1] -

1- वर्णाध्व 4- मन्त्राध्व

2- कलाध्व 5- पदाध्व तथा

3- तत्त्वाध्व 6- भुवनाध्व

अपनी शक्ति तथा अपनी इच्छा से ही लक्ष्मी जीवों पर अनुग्रह करने के लिए इन रूपों को स्वीकार करती है । यही अध्व को स्वीकार करने का प्रयोजन है ।[2]

1- <u>वर्णाध्व</u> -

शब्द ब्रह्म के रूप में लक्ष्मी के प्रथम उन्मेष का नाम वर्णाध्व है लक्ष्मी तंत्र में वर्णाध्वा को तीन रीतियों में विभाजित है {1} आधा {2} मध्यमा {3} परमा या अन्तिमा ।

{1} <u>आधा रीति</u> -

यह वर्णाध्व की प्रथमा अथवा आधा रीति है । वर्णाध्व की इस रीति के ज्ञान-मात्र से साधक लक्ष्मी {शब्दब्रह्म} की सरूपता को प्राप्त कर लेता है ।[3]

1- ------------------प्रभवामि षडध्वना ।

वार्णः कालामयश्चैव तात्त्विको मान्त्रिकस्तथा।
पादिको भौवनश्चैव षडध्वानः,प्रकीर्तिताः ।।

वही 22/9-11

2- ल0 तं0 20/7

3- शृणु वर्णाध्वनो रीतिमाद्यान्त्रिदशपुङ्गव ।
प्राप्नोति यत्परिज्ञानाद् साधको मत्सरूपताम् ।। ल0तं020/3

§2§ मध्यमा रीति-

लक्ष्मी सिसृक्षावस्था में अहन्ता नाम से विख्यात होती है तथा सृष्टि की अवस्था में परा शक्ति नाम से। परा शक्ति का उन्मेष होने पर पन्चदश स्वरों का आविर्भाव होता है। इन स्वरों को पञ्चदश दशाएं कहा गया है।

§3§ परमा रीति-

प्रयत्न और स्थान से भेद को प्राप्त होने वाली वैखरी ही वर्णाध्व की चरमा रीति है[1]।

वासुदेव आदि चार व्यूह तथा केशव आदि बारह व्यूहान्तर सोलह स्वरों के अधिष्ठातृ देवता है। लक्ष्मी, कीर्ति, जया और माया क्रमशः चार व्यूहों की शक्तियाँ हैं श्री, वागीश्वरी, कान्ति, क्रिया, शान्ति, विभूति, इच्छा, प्रीति रति, माया, धी और महिमा क्रमशः केशव आदि द्वादश व्यूहान्तरों की शक्तियाँ हैं[2]।

2- कालाध्व -

शब्दब्रह्म का द्वितीय उन्मेष कालाध्व से होता है। ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तथा तेज ये ईश्वर के छह गुण ही कला शब्द से अभिहित होते हैं अभिप्राय यह है कि ज्ञान आदि षड्गुणों के रूप में शब्दब्रह्म परिणमित होता है।[3] इसी को कलाध्व कहते हैं।

1- वैखरी चरमा रीतिः प्रयत्नस्थानभेदिनी वही, 20/30

2- वही, 20/33-35

3- शब्दब्रह्ममयी भूत्वा विवर्तेऽहं कलाध्वना।
कलाःज्ञानादयः प्रोक्ताः षड्गुणाः पारमेश्वराः ।। ल०तं०21/6,7

3- तत्त्वाध्व -

शब्दब्रह्म का तृतीय विवर्त (परिणाम) तत्त्व-मार्ग से होता है। वासुदेव आदि व्यूह पद्मनाभ आदि विभव तथा अन्य जो भी भावन्मयव्यूहान्तर या विभवान्तर है सभी तत्त्वाध्व के ही अन्तर्गत आते हैं[1]।

4- मन्त्राध्व -

पहले कालाध्व और तत्त्वाध्व को लेकर शब्दब्रह्म चिन्मय रूप मंत्र मार्ग में परिणमित होता है[2]। मन्त्राध्व कभी बीज रूप से, कभी पिण्ड रूप से कभी संज्ञा रूप से तथा कभी पद रूप से प्रवृत्त होता है[3]। मन्त्राध्व के बारे में कहा गया है कि भवसागर में मग्न जीवों का उत्तारण करने के लिए, भव में स्थित लोगों के भोग के लिए, वैराग्य उत्पन्न करने के लिए, आराधना की सिद्धि के लिए तथा मन के आलम्बन के लिए यह मन्त्राध्व होता है[4]।

5- पदाध्व -

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्य अवस्था में विद्यमान् साधक के ध्यान के लिए उन पदों के अधिष्ठातृ देवताओं के द्वारा स्वीकृत रूपों को पदाध्व कहते हैं।[5]

1- व्यूहाश्च विभवाश्चैव यच्चान्यद्भावन्मयम् ।
तत्त्वाध्वनो विकृतिः सा कीर्तिता परमात्मनः । वही 22/16

2- ल0तं0 22/17

3- चिल्लक्षणः षड्गुणात्म तस्य भेदश्चतुर्विधः ।
क्वचिद् बीजं क्वचित् पिण्डं, क्वचित् संज्ञा, क्वचित् पदम् ।। वही 19/10

4- वही, 21/11

5- वही, 22/22,23

6- भुवनाध्व -

माया से लेकर पृथिवी पर्यन्त भुवन पद्धति को भुवनाध्व कहते हैं[1] यह भुवनाध्व चौदह विभागों से युक्त है ।[2] भुवनाध्व को अशुद्ध तथा मल-पङ्कल कहा गया है ।[3]

इस प्रकार षडध्व से मुक्त होकर मुमुक्षु पर-ब्रह्म को प्राप्त करता है,शब्दब्रह्म ही षडध्व के रूप में परिणमित होता है । अतः मुमुक्षु शब्दब्रह्म से अतीत को अर्थात् पर-ब्रह्म को प्राप्त करता है ।[4]

षट्कोश -

षडध्व की भाँति षट्कोश लक्ष्मी के छह रूप हैं कोश का अर्थ है कुलाय अथवा शरीर[5] । निस्तरङ्ग समुद्र की आकृति के समान, पूर्णषाड्गुण्य, चैतन्य और आनन्द के समुद्र वासुदेव की आद्या अहन्ता लक्ष्मी है । पूर्णतः शान्त लक्ष्मी सिसृक्षा के रूप में उच्छूनता को प्राप्त हुई होती हुई षट्कोशत्व को प्राप्त होती है शक्ति, माया, प्रसूति, प्रकृति, ब्रह्माण्ड और जीवदेह-यही छह कोश हैं।[6]

1- मायादिक्षितिपर्यन्तायोक्ता भुवनपद्धतिः ।
भुवनाध्वा स विज्ञेयो ह्यशुद्धो मलपङ्कलः । वही 22/27-28

2- चतुर्दशविभागेस्थे प्राकृते भुवनाध्वनि । वही, 21/25

3- ल0तं0 22/28

4- ल0तं022/31,32

5- कोशः कुलाय पर्यायः शरीरापरनामवान् । वही 6/5

6- साहमेवाविधा शुद्धा क्वचिदुच्छूनतां गता ।
सिसृक्षालक्षणा देवी स्वतन्त्रा सच्चिदात्मिका ।।
षट्कोशतां समापदे सत्तार्द वैष्णवी परा।
शक्तिर्माया प्रसूतिश्च प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।।
ब्रह्माण्डं जीवदेहश्चेत्येते षट्कोशसंज्ञिताः ।। वही 6/1-4

शक्ति कोश -

शुद्ध मार्ग में प्रवृत्त होने वाली शक्ति प्रथम कोश है इस शुद्ध प्रथम उन्मेष रूप शक्तिकोश में सङ्कर्षण अहम् अर्थात् जीव के अभिमानी देवता हैं[1] सङ्कर्षण की महिषी का नाम श्री है जो ज्ञान और बल से सम्पन्न है।[2] ज्ञान बल से सम्पन्न सङ्कर्षण की महिषी श्री के समुन्मेष को प्रद्युम्न कहते हैं।

अन्य पांच कोश -

द्वितीय कोश माया कोश है। शक्ति कोश में शुद्ध सृष्टि का वर्णन है। मायाकोश से अशुद्ध सृष्टि आरम्भ हो जाती है अनिरुद्ध की महिषी का नाम रति है। इन्हीं को महालक्ष्मी कहा गया है। यही मायाकोश है।[3] यह राजसी महालक्ष्मी ही समग्र प्रपञ्च सृष्टि का कारण है। तृतीय कोश का नाम प्रसूति कोश है। राजसी महालक्ष्मी, तामसी महामाया और सात्त्विकी महाविद्या के समवाय को ही प्रसूति कोश कहते हैं।[4] इसके पश्चात् महालक्ष्मी में प्रद्युम्न के अंश से मानस धाता और श्री, महामाया में सङ्कर्षण के अंश से मानस रुद्र और त्रयी, महाविद्या में अनिरुद्ध के अंश से मानस केशव और गौरी उत्पन्न हुई।

1- ल0त0 6/5,6

2- वही, 6/7,8

3- अनिरुद्धस्य याहन्ता रतिरित्येव संज्ञिता।
सेव देवी महालक्ष्मीर्मायाकोशः स उच्यते। ल0त06/18

4- महालक्ष्मीमहामायामहाविद्यामयो महान्।
प्रसूतिर्नाम कोशो मे तृतीयः परिपठ्यते।।

अही 6/20

धाता और श्री, रुद्र और त्रयी तथा केशव और गौरी इसी प्रसूति कोश में उत्पन्न हुए । तत्पश्चात् धाता और त्रयी के साथ मिलकर अण्ड की उत्पत्ति हुई[1] । शंकर ने गौरी के साथ मिलकर उसका भेदन किया । उस अण्ड के मध्य में ब्रह्मा ने प्रधान की सृष्टि की केशव ने पद्मा के साथ उस अण्ड का पालन किया। अण्ड के मध्य में जो सदसदात्मक प्रधान था, उसे सलिल बनाकर वासुदेव या केशव ने पद्मा के साथ शयन किया । इसी प्रधान को प्रकृति कोश कहा गया है[2] । महत् से लेकर पृथिवी पर्यन्त तत्त्वों के साथ जिस अण्ड की सृष्टि की गयी, उसी को ब्रह्माण्ड कोश कहा गया है ।[3] इसके अतिरिक्त अङ्ग और प्रत्यङ्ग से युक्त प्राणियों के शरीर को षष्ठ कोश अथवा जानपद कोश कहा गया है ।[4] इसी को षट्कोश कहते हैं ।

1- ल० त० 5/7-12

2- प्रधानं सलिलीकृत्य तच्छेते पुरुषोत्तमः ।

सा प्रोक्ता प्रकृतिर्योनिर्गुणसाम्यस्वरूपिणी ।।

वही, 6/21,22

3- महदाद्यैः पृथिव्यन्तैरण्डं यन्निर्मितं सह ।

तद् ब्रह्माण्डमिति प्रोक्तं यत्र ब्रह्मा विराड्भूत ।।

वही, 6/23,24

4- अङ्गप्रत्यङ्गयुक्तं यच्छरीरं जीविनामिह ।

एषा कोशविधा षष्ठी क्रमात्तत्र तु गता ।। वही 6/24,25 ।

पञ्चकृत्य -

लक्ष्मीतंत्र में लक्ष्मी के पांच कृत्यों का वर्णन किया गया है । लक्ष्मी के पांच कृत्य हैं -

1- तिरोभाव 2- सृष्टि 3- स्थिति 4- संहृति 5- अनुग्रह[1]

1- तिरोभाव शक्ति -

लक्ष्मी तन्त्र के क्रम के अनुसार तिरोभाव लक्ष्मी का प्रथम कृत्य है । तिरोभाव का अर्थ है अन्यद्भाव । क्लेश, कर्म, विपाक, और आशय इन चार लक्षणों से युक्त, जीवकोश को बांधने वाली इस शक्ति का नाम तिरोभाव है ।[2]

2- सृष्टि शक्ति -

दूसरी शक्ति का नाम सृष्टि शक्ति है इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम दो प्रकार की सृष्टियों का उल्लेख है - (1) शुद्ध सृष्टि (2) अशुद्ध सृष्टि ।[3] शुद्ध सृष्टि में चातुर्व्यूह, व्यूहान्तर, विभव, विभवान्तर तथा अर्चारूप का आविर्भाव होता है । अशुद्ध सृष्टि तीन पर्वों में होती है । प्रथम पर्व में रजोगुण प्रधान महालक्ष्मी, तमोगुण प्रधान महामाया तथा सत्वगुण प्रधान महाविद्या का आविर्भाव

1- तस्याः मे पञ्चकृत्यानि नित्यानि त्रिदशेश्वर ।
तिरोभावस्तथा सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च ।
अनुग्रह इति प्रोक्तं मदीयं कर्मपञ्चकम् ।। वही 12/13,14

2- चतुर्भिर्लक्षणैरित्थम्भूता क्लेशनामकैः ।
बन्धनी जीवकोशस्य तिरोभावाभिधा क्रिया । ल०तं० 12/34,35

3- वही 12/36,37

हुआ । इसके पश्चात् प्रद्युम्न के अंश से महालक्ष्मी में मानस धाता और श्री सङ्कर्षण के अंश से महामाया में मानस रुद्र और त्रयी तथा अनिरुद्ध के अंश से महाविद्या में मानस के शव और गौरी की उत्पत्ति हुई उसके पश्चात् प्रधान को सलिल बना कर केशव श्री के साथ शयन रत हो गये । तृतीय पर्व में जल में सोते हुए केशव की नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई । नाभिकमल में धाता और त्रयी का पुनः आविर्भाव हुआ । इन तीनों से तामस महत् की और महत् से अहङ्कार की उत्पत्ति हुई । इस प्रकार पच्चीस तत्त्वों की उत्पत्ति हुई । तदनन्तर ब्रह्मा ने प्रजापति को उत्पन्न किया, प्रजापति ने मनुओं तथा चेतनों और अचेतनों की सृष्टि की । अशुद्ध सृष्टि है ।[1] यही लक्ष्मी की सृष्टि शक्ति है ।

3- स्थिति शक्ति -

लक्ष्मी की तीसरी शक्ति का नाम स्थिति शक्ति है आद्य सृष्टिक्षण तथा सञ्जिहीर्षाक्षण के मध्यवर्तियों का जो स्थैर्यकरण है, वह अनेक रूपों के साथ स्थिति शक्ति कहा गया है । लक्ष्मी तथा विष्णु द्वारा की गयी स्थिति चार प्रकार की है ।

4- संहृति शक्ति -

इस शक्ति के सात भेद है- (1) नित्या, (2) नैमित्तकी (3) प्राकृती (4) प्रासूती (5) मायी (6) शाक्ती तथा (7) आत्यन्तकी ।

1- वही, अध्याय 2-5

5- अनुग्रह शक्ति-

पाँचवी और अन्तिम शक्ति का नाम है अनुग्रह शक्ति । यह अनुग्रह शक्तिपात नाम से भी व्यवहृत किया जाता है[1]। क्लेशों से पीडित जीवों को लक्ष्मी करुणा से पूर्ण होकर देखती है । इस कृपा कटाक्ष से सभी जीव दुःखरहित हो जाते हैं इस कृपा कटाक्ष को लक्ष्मी की अनुग्रह नामक शक्ति कहा गया है । जिसका दूसरा नाम शक्तिपात है[2]।

1- सोऽनुग्रह इतिप्रोक्तः शक्तिपाताभराह्वयः । ल० तं० 13/8

2- अनुग्रहात्मिका शक्रशक्तिर्मे पञ्चमी स्मृता ।

अविधया समाविद्धा अस्मितादिवशीकृताः ।
मच्छक्त्यैव तिरोभूतास्तिरोधानाभिधानया ।।

निबद्धास्त्रिहोर्बन्धैः स्थानत्रयविवर्तिनः ।।
संसाराङ्गरमध्यस्थाः पच्यमानाः स्वकर्मणा ।
सुखाभिमानिनो दुःखे नित्यमज्ञानवर्जिताः ।।
ता योनीरनुधावन्तश्चराचरविभेदिनीः ।
अपूर्वापूर्वभूताभिश्चित्रिताभिः स्वदेहिभिः ।।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनाभिरहर्निशम्
जननानि प्रबुध्यन्तो मरणानि तथा तथा ।।
मया जीवाः समीक्ष्यन्ते दुःखविवर्जिताः ।
सोऽनुग्रह इति प्रोक्ताः शक्तिपातापराह्वयः ।।

ल० तं० 13/1-8

लक्ष्मी के इस शक्तिपात का क्षण कोई भी हो सकता है । यह शक्ति-पात न तो पुरुषकार से, न किसी अन्य हेतु से ही होता है । केवल स्वेच्छा से ही लक्ष्मी कभी भी-किसी पर भी अनुग्रह करती है । तब से लेकर वह जीव स्वच्छ अन्तकरण वाला होकर ईश्वर के साथ कर्मसाम्य को प्राप्त करके भक्ति पूर्वक समग्र क्लेश तथा बन्धनों को त्यागकर प्रकाशित होता हुआ, लक्ष्मी नारायण नामक पर ब्रह्म को प्राप्त करता है ।[1]

लक्ष्मी तंत्र के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया

लक्ष्मी तंत्र के अनुसार सृष्टि दो प्रकार की है-[2]

(1) शुद्ध-सृष्टि (2) अशुद्ध-सृष्टि

अशुद्ध सृष्टि तीन पर्वों में विभक्त है - प्रथम पर्व, द्वितीय पर्व तथा तृतीय पर्व ।[3]

शुद्ध सृष्टि -

लक्ष्मी तंत्र में शुद्ध-सृष्टि का वर्णन इस प्रकार है - सृष्टि के पूर्व पर ब्रह्मण पर वासुदेव पूर्णरूपेण शान्त, निर्विकार देशकाल आदि परिच्छेदों से रहित तथा सर्वव्यापी रहता है । उस समय वह तरङ्ग रहित समुद्र के समान,

---

1- अहमेव हि जानामि शक्तिपातक्षणं च तम् ।
नासौ पुरुषकारेणा न चाप्यन्येन हेतुना ।।
केवलं स्वेच्छयैवाहं प्रेक्षे कञ्चिद् कदाचन ।
ततः प्रभृति सस्वच्छस्वच्छान्तः करणः पुमान् ।।

विधूय विविधं बन्धं धोतमानस्ततस्ततः ।
प्राप्नोति परमं ब्रह्म लक्ष्मीनारायणात्मकम् ।। वही 13/10-14

षाड्गुण्य से पूर्ण रहता है ।[1] यह ब्रह्म का अमूर्त रूप कहा जाता है जिस प्रकार चन्द्रमा का उसकी ज्योत्सना के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है उसी प्रकार पर वासुदेव का उसकी शक्ति लक्ष्मी के साथ अपृथक् सिद्ध सम्बन्ध है ।[2] अमूर्त ब्रह्म "सर्वतः आदि विशेषणों से युक्त लक्ष्मी से विशिष्ट रहता है ।

चातुरात्म्य सृष्टि -

पर वासुदेव के शुद्ध सृष्टि के लिए प्रवृत्त होने पर उसके चार रूपों का आविर्भाव होता है । जिसे चातुरूप्य या चातुरात्म्य कहते हैं । पर, व्यूह, विभव, और अर्चा ये परब्रह्म के चार रूप है । इस सृष्टि में सत्त्व, रजस् तथा तमस् इन तीनों गुणों का सर्वथा राहित्य होता है । इस कारण यह शुद्ध सृष्टि है ।

चतुर्व्यूह -सृष्टि -

सृष्टि, स्थिति और संहार में सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का प्रायः वही स्थान हो जाता है जो अन्यत्र त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश का है ।

1- सर्वतः शान्त एवासौ निर्विकारः सनातनः ।
अनन्तदेशकालादिपरिच्छेदविवर्जितः ।।
महाविभूतिरित्युक्तः व्याप्तिः सा महती यतः ।
तद् ब्रह्म परमं धाम निरालम्बनभावनम् ।।
निस्तरङ्गमृताम्भोधिकल्पं षाड्गुण्यमुज्ज्वलम् । वही, 2/8-10

2- वही, 2/11

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय अवस्थाओं को भी चातुर्व्यूह में देखा जाता है । जाग्रदवस्था के अधिष्ठातृ देवता है । अनिरुद्ध, स्वप्न के प्रद्युम्न, सुषुप्ति के सङ्कर्षण तथा तुर्यावस्था के वासुदेव[1] । इस प्रकार तत्तद् गुणों के उन्मेष के अनुसार चातुर्व्यूह का आविर्भाव होता है ।

व्यूहों की शक्तियाँ -

लक्ष्मी तंत्र में इन चारों व्यूहों की शक्तियों का नामतः निर्देश किया गया है वासुदेव की शक्ति, लक्ष्मी, सङ्कर्षण की कीर्ति, प्रद्युम्न की जया तथा अनिरुद्ध की शक्ति माया है[2] । अपृथक्सिद्ध सम्बन्ध होने के कारण व्यूहों के साथ ही इन शक्तियों का आविर्भाव होता है ।

व्यूहान्तर -

उक्त चारों व्यूह अपने-अपने शरीरों को तीन-तीन स्वरूपों में विभाजित करते हैं । इस प्रकार जिन बारह देवों का आविर्भाव होता है उसे व्यूहान्तर कहते हैं ।[3] अर्थात् व्यूहस्थ वासुदेव से केशव, नारायण और माधव, सङ्कर्षण से गोविन्द, विष्णु और मधुसूदन; प्रद्युम्न से त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर; तथा अनिरुद्ध से हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर नामक व्यूहान्तरों का आविर्भाव होता है । श्री, वागीश्वरी, कान्ति, क्रिया, शान्ति, विभूति, इच्छा, प्रीति, रति, माया, धी तथा महिमा-ये बारह व्यूहान्तरों की शक्तियाँ है ।[4]

1- ल०तं० 2/49,59

2- वही 4/16

3- वासुदेवादयो देवा:प्रत्येक तु त्रिधा त्रिधा।
केशवादिस्वरूपेण विभजन्ति स्वक वपु:।।
एतद्व्यूहान्तरं नाम पञ्चरात्राभिभाषितम्।। वही, 4/27,28

4- वही, 20/35,36

विभव -

अनिरुद्ध से जगत् के हित के लिए पद्मनाभ आदि 38 विभवों का आविर्भाव होता है । इसी को अवतार या विभव कहते हैं । लक्ष्मीतंत्र के अनुसार विभवों का आविर्भाव अनिरुद्ध से होता है । इन विभवों से अनेक विभवान्तर आविर्भूत होते हैं ।

अर्चा -

ऊपर वर्णित रूपों के अतिरिक्त ईश्वर एक अन्य रूप धारण करता है । जिसे अर्चा अवतार कहते हैं । यह ईश्वर का वही रूप है जो देवालय आदि स्थानों पर प्रतिमा के रूप में विद्यमान होता है । यह अर्चा रूप भी षाड्गुण्य सम्पन्नतथा शुद्ध चिन्मय होता है[1] ।

ईश्वर का पर, व्यूह, व्यूहान्तर, विभव, विभवान्तर तथा अर्चा रूप में अवस्थित होना ही शुद्ध-सृष्टि है ।

अशुद्ध सृष्टि-

अशुद्ध सृष्टि तीन पर्वों में पूर्ण होती है जिन्हें क्रमशः प्रथम अथवा आद्य पर्व और द्वितीय अथवा अन्तिम पर्व कहा गया हैं । ये तीनों पर्व सत्व, रजस्, तथा तमस्, इन तीनों गुणों से पूर्ण है, अतएव इस सृष्टि को अशुद्ध सृष्टि कहा गया है ।

प्रथम पर्व -

जिस सिसृक्षा शक्ति से शुद्ध-सृष्टि का आविर्भाव होता है, उसी से अशुद्ध-सृष्टि का भी आविर्भाव होता है । ज्ञान ऐश्वर्य, तथा शक्ति नामक गुणों से

1- ल० तं०, 2/60, 4/6।

सत्व रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की उत्पत्ति होती है, जिस स्वच्छ ज्ञान सत्व गुण के रूप में और ऐश्वर्य रजोगुण के रूप में परिणत हो जाता है । इन्हीं गुणों को त्रैगुण्य कहा गया है ।[1] सृष्टि में रजोगुण प्रधान होता है, स्थिति में सत्त्वगुण प्रधान तथा संहृति में तमोगुण प्रधान होता है ।[2] लक्ष्मी से ही रजोगुण प्रधान महालक्ष्मी का आविर्भाव होता है जो जगत् की सृष्टि करती है ।[3] इस त्रैगुण्यमयी[4] महालक्ष्मी को अन्य कई नामों से अभिहित किया जाता है, यथा- महाश्री, चण्डा, चण्डिका, भद्रकाली, भद्रा, काली, दुर्गा, महेश्वरी त्रिगुणा, भगवत्पत्नी तथा भगवती आदि ।[5] लक्ष्मी से ही तमोगुण प्रधान महामाया आविर्भूत होती है जिसका उद्देश्य संहृति है ।[6] महामाया को महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, कृष्णा, एकवीर तथा कालरात्रि नामों से अभिनिधित किया जाता है ।[7]

1- यथेक्षुरसः स्वच्छो गुडत्वं प्रतिपद्यते ।
तद्वत्स्वच्छमयं ज्ञानं सत्त्वतां प्रतिपद्यते ।।
रजस्त्वं चममैश्वर्यं तमस्त्वं शक्तिरप्युत ।
एते त्रयो गुणाः शक्र त्रैगुण्यमिति शब्द्यते ।। ल0त0 3/5-7, 5/33

2- वही, 3/7,8

3- वही, 4/36

4- वही, 4/36

5- वही, 39-41

6- वही, 4/57

7- महाकाली महामाया, महामारी क्षुधा तृषा ।
निद्रा कृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ।। वही, 4/62

लक्ष्मी ने इस सृष्टि को भी पर्याप्त नहीं समझा, अतः उन्होंने सत्वगुण प्रधान रूप धारण किया । लक्ष्मी के इस रूप को महाविद्या कहा गया है । इसके अतिरिक्त महाविद्या, महावाणी, भारती वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी कामधेनु, वेदगर्भा, धीश्वरी, इनके नाम के अन्य पर्याय है ।[1] इनका मुख्य कृत्य है सृष्टि का पालन करना ।

इसके पश्चात् महालक्ष्मी में प्रद्युम्न के अंश से मानस धाता तथा श्री की उत्पत्ति हुई । सङ्कर्षण के अंश से महामाया में मानस रुद्र तथा त्रयी की उत्पत्ति हुई तथा अनिरुद्ध के अंश से महाविद्या से विष्णु तथा गौरी की उत्पत्ति हुई ।[2] इनमें धाता की त्रयी के साथ, रुद्र की गौरी के साथ तथा विष्णु की श्री के साथ दाम्पत्य रचना हुई ।[3]

संक्षेप में इस पर्व की सृष्टि को- षाड्गुण्य में से ज्ञान सत्वगुण के रूप में, ऐश्वर्य रजोगुण के रूप में तथा शक्ति तमोगुण के रूप में परिणमित होकर त्रैगुण्य-शरीर धारण करती है । इसके अनन्तर लक्ष्मी से रजोगुण प्रधान महालक्ष्मी, तमोगुण प्रधान महामाया तथा सत्वगुण प्रधान महाविद्या का आविर्भाव होता है ।

1- अपर्याप्तमिदं सर्गं मन्यमानाहमादिमम् ।
सत्वोन्मेषमयं रूपं भरामि स्मेन्दुसन्निभम् ।।
महाविद्या, महावाणी भारती वाक् सरस्वती ।
आर्या ब्राह्मी महाधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ।। 30 लं04/64,66 प्राधानिक रहस्य दुर्गा सप्तशती-16

2- वही, 5/7-13

3- ब्रह्मणस्तु त्रयीपत्नी साबभूव भमात्रया ।
रुद्रस्यदयिता गौरी वासुदेवस्य चाम्बुजा ।। वही 5/13,14

प्रद्युम्न के अंश से महालक्ष्मी में मानस धाता तथा श्री, सङ्कर्षण के अंश से महामाया में रुद्र तथा त्रयी, अनिरुद्ध के अंश से महाविद्या में विष्णु तथा गौरी आविर्भूत हुए । इनमें राजस ब्रह्मा की तामस त्रयी के साथ, तामस रुद्र की सात्विक गौरी के साथ तथा सात्विक विष्णु की राजस श्री के साथ दाम्पत्य कल्पनायें हुई ।

द्वितीय पर्व -

इस पर्व में उपर्युक्त दम्पतियों के कार्यों का वर्णन है ब्रह्मा ने त्रयी के साथ मिलकर अण्ड की सृष्टि की । रुद्र ने गौरी के साथ मिलकर इस अण्ड का भेदन किया । श्री के साथ मिलकर विष्णु ने अण्ड के मध्य में स्थित प्रधान की रक्षा की । यह प्रधान ब्रह्मा का कार्य था[1] । इस प्रकार पर्व की सृष्टि का मुख्य प्रयोजन है, प्रधान अथवा प्रकृति की सृष्टि ।

तृतीय पर्व -

द्वितीय पर्व में जिस प्रधान की सृष्टि हुई थी उसे त्रैगुण्य, प्रकृति आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है ।[2] प्रधान को सलिल बनाकर, विष्णु ने श्री के साथ योगनिद्रा का आश्रय लेकर जल में सोना आरम्भ किया ।[3]

1- भार्यया सह सम्भूय विरिन्चोऽण्डमजीजनत् ।
महाम्बया विभेदैतत्स गौर्य्या सह शङ्करः ।।
अण्डे मध्ये प्रधानं यत्कार्यमासीत्तु वेधसः ।
तदेतत्पालयामास पद्मया सह केशवः ।।
तदेतन्मध्यमं पर्व गुणानां परिकीर्तितम् ।। ल० त० 5/16-18

2- ल०त० 5/19

3- वही, 5/20,21

इसके पश्चात् सोते हुए विष्णु की नाभि से कालमय पद्म उत्पन्न हुआ ।[1]

विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल में ब्रह्मा पुनः त्रयी के साथ प्रादुर्भूत हुए । कमल तथा कमल से उत्पन्न द्वन्द्व अर्थात् हिरण्यगर्भ और त्रयी, इन तीनों को तामस महान् कहा गया है ।[2] महान् के तीन भेद है-§1§ प्राण, §2§ हिरण्यगर्भ तथा §3§ बुद्धि ।[3] प्राण का गुण है स्पन्द, बुद्धि का अध्यवसाय तथा पुरुष के धर्म और अधर्म ।[4] ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य को धर्म कहते हैं तथा अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य को अधर्म ।[5]

सृष्टि के लिए प्रेरित किये जाने पर उक्त महान से अहङ्कार की उत्पत्ति हुई ।[6] अहङ्कार के तीन भेद हुए । तामस, सात्त्विक और राजस।[7]

1- शयानस्य तदा पद्मभून्नाभ्याम् पुरन्दर ।
तत्कालमयमाख्यातं पङ्कजं यदपङ्कजम् ।। ल0सं0 वही, 5/22

2- पद्मं;पद्मोद्भवद्वन्द्वं तदेतत् त्रितयं सह ।
महास्तामस आख्यातो विकारः पूर्वबुद्धेः ।। वही, 5/31

3- प्राणो हिरण्यगर्भश्च बुद्धिश्चेति त्रिधाभिदा ।
पद्मपुस्त्रीसमालम्बान्महत्तत्वं तस्य शब्द्यते । वही, 5/32

4- वही, 5/33

5- वही, 5/34

6- महान्तमाविशान्त्येनं प्रेरयामि स्वसृष्टये ।
प्रेर्यमाणात्ततस्तस्मादहङ्कारश्च जज्ञिवान् ।। वही, 5/35

7- आविश्याशुमहङ्कारं सृष्टये प्रेरयाम्यहम् ।
स बभूव त्रिधा पूर्वं गुणव्यतिकरात्तदा ।। वही 5/37

तामस अहङ्कार को भूतादि, सात्त्विक अहङ्कार से शब्दतन्मात्र, शब्द तन्मात्र से शब्द तथा स्पर्श तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र से स्पर्श तथा रूप तन्मात्र, रूपतन्मात्र से रूप तथा रस तन्मात्र, से रस तथा गन्धतन्मात्र, गन्धतन्मात्र से गन्ध यही भूतादि अहङ्कार से होने वाली सृष्टि का क्रम है ।[1]

वैकारिक अहङ्कार से श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती है ।[2]

तैजस अहङ्कार से पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं-वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ तथा पायु ।[3] लक्ष्मी की ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति क्रमशः ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों में अधिष्ठित होकर कर्तव्यों में प्रवृत्त होती है ।[4] कर्मेन्द्रिय के

1- भूतादेः शब्दतन्मात्रं तन्मात्रच्छब्दसम्भवः । मत्प्रेरिताच्छब्दमात्रात्स्पर्शमात्रं बभूव ह ।
स्पर्शस्तु स्पर्शतन्मात्रात्तन्मात्रात्प्रेरितान्मया । तदासीद्रूपतन्मात्रं तस्माच्च प्रेरितान्मया
रूपमाविर्बभूवाथ रसमात्रं ततः परम । रसमात्रान्मयाक्षिप्तात्तस्माज्जज्ञे रसस्ततः ।
गन्धतन्मात्रमत्यासीत्तस्माच्च प्रेरितान्मया । जज्ञे गन्धः समुद्भूतस्तोयं भौतिकीमिदा
ल0तं05/38-42 ।

2- वही 5/50,52

3- वही, 5/51,43

4- या सा विज्ञानशक्तिर्मे पारम्पर्यक्रमागता ।
बुद्धीन्द्रियाण्यधिष्ठाय विषयेषु प्रवर्तते ।।
क्रियाशक्तिश्च या सा मे पारम्पर्यक्रमागता ।
कर्मेन्द्रियाण्यधिष्ठाय कर्तव्येषु प्रवर्तते ।। वही, 5/54,55

द्वारा मन संकल्प करता है ।[1] संकल्प मन का लक्षण और व्यापार है । ज्ञानेन्द्रियों में अहङ्कार अभिमान के रूप में रहता है । ज्ञाता का देश और काल के साथ जो अन्वय होता है उसी को अभिमान कहते हैं ।

बुद्धि ज्ञानेन्द्रिय गण में अध्यवसाय के रूप में स्थित रहती है । कर्मेन्द्रियगण में बुद्धि प्रयत्न के रूप में प्रवृत्त होती है ।[2]

निष्कर्ष यह है कि बुद्धि, अहङ्कार मन ये तीन अन्तःकरण है । इनमें से बुद्धि जब ज्ञानेन्द्रिय गण में स्थित होती है तब इसका लक्षण तथा व्यापार अध्यवसाय या निश्चय होता है तथा कर्मेन्द्रियगण में स्थित होने पर इसका लक्षण और व्यापार प्रयत्न होता है । अहङ्कार जब ज्ञानेन्द्रिय गण में स्थित होता है । तब इसका लक्षण और व्यापार अभिमान तथा कर्मेन्द्रियगण में स्थित होने पर संरम्भ होता है । मन के ज्ञानेन्द्रियगण में स्थित होने पर विकल्प तथा कर्मेन्द्रियगण में स्थित होने पर संकल्प इसका लक्षण तथा व्यापार होता है । यद्यपि अन्तःकरण की चर्चा सांख्य में भी तथापि उनके लक्षण और व्यापारों का यह विभाजन लक्ष्मीतंत्र की विशेषता है निम्नसारिण से यह स्पष्ट हो जायेगा -

	अन्तःकरण	ज्ञानेन्द्रियगण	कर्मेन्द्रियगण
1-	बुद्धि	अध्यवसाय	प्रयत्न
2-	अहङ्कार	अभिमान	संरम्भ
3-	मन	विकल्प	सङ्कल्प

1- ल० तं० 5/7।

2- वही, 5/76

इस प्रकार तेईस तत्वों की उत्पत्ति होती है । महान् से लेकर गन्धपर्यन्त तेइस तत्त्व अण्ड को उत्पन्न करते हैं ।[1] इस अण्ड से प्रजापति की उत्पत्ति हुई, प्रजापति से मनु उत्पन्न हुए, मनु से मारीचि प्रमुख मानव उत्पन्न हुए और उनसे चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई ।[2] यह सृष्टि का तृतीय पर्व है ।

लक्ष्मीतत्व

श्री वैष्णव-सम्प्रदाय में शक्ति रूपा लक्ष्मी के स्वरूप का विवेचन बड़े विस्तार से किया गया है । लक्ष्मी मातृरूपा है । फलतः नारायण को जीव के प्रति कृपा का उद्रेक कराने में लक्ष्मी ही साधनभूता है । लक्ष्मी के इस स्नेह-प्रीति जनित कृपा वैभव को पुरुषकार"वैभव कहा गया है और नारायण के इस प्रकार के वैभव को "उपाय" वैभव कहते हैं ।[3] लक्ष्मीपति भगवान् अपनी प्राप्ति में स्वयं उपाय रूप है और उनकी प्राप्ति में योग कराने वाली, घटक का कार्य करने वाली लक्ष्मी जी "पुरुषकार" रूपा है वही जीवों के अपराध के क्षमापन के लिए नारायण से सन्तत प्रार्थना किया करती है, लक्ष्मी मातृरूपा होने से उनका हृदय समधिक आर्द्र तथा कोमल होता है । और सन्तानरूपी जीव के सन्ताप को देखकर वे स्वतः दयार्द्र हो उठती है । भट्टार्यस्वामी ने निम्न पद्य में अपराध क्षमापन के निमित्त साधक के मनःस्थिति का विशद विवेचन किया है जब कहता है-

---

1- अन्योन्यानुग्रहेणैते त्रयोविंशतिसंख्यकाः।
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ।। वही,5/81,82

2- वही 5/82,83

3- लोकाचार्य के श्रीवचनभूषण"तथा वरमुनिकृत,उसकी व्याख्या में इस तत्त्व का विस्तार से विवेचन उपन्यस्त है । विशेष के लिए इन ग्रंथों की समीक्षा अत्यन्त आवश्यक है ।

माता यदि आपके प्रियतम नारायण अपराधी जीव के ऊपर कभी क्रुद्ध हो तो, आप उसकी ओर से जरूर पैरवी करती है । कि भगवान् आप क्रुद्ध क्यों होते हैं ? इस विशाल संसार में क्या कोई भी व्यक्ति निर्दोष हो सकता है ? नहीं कभी नहीं । तब इस बालकको अपराधी समझ कर कोप क्यों ? इस प्रकार भगवान् को समझा-बुझाकर आप उन्हें जीवों के प्रति दयार्द्र बनाती हैं उचित ही है ऐसा शोभन व्यवहार आप जैसी विश्वजननी का । लक्ष्मी के पुरुषकारत्व की यह बडी शोभन व्याख्या है-

पितेवत्वत्-प्रेयान् जननि । परिपूर्णागसि जने
हितेस्त्रोतोवृत्या भवति च कदाचित् कलुषधीः ।
किमेतत् निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः ।।

-भट्टार्यस्वामीः गुणरत्नकोष ।

जीव से ईश्वर तथा लक्ष्मी का सम्बन्ध समान होने पर क्या कारण है कि जीव ईश्वर का आश्रयण करने के पहले लक्ष्मी का आश्रयण करता है ? इसकी मीमांसा में लोकाचार्य का कथन है कि ईश्वर के पास निग्रह की भी शक्ति है, परन्तु लक्ष्मी अनुग्रहैकस्वभावा ही है, इसलिए लक्ष्मी,कृपा ईश्वर कृपा से श्रेष्ठ होती है तथ्य यह है कि भगवान् के शरण में जाना साधक की एक क्रिया है और उस क्रिया की समाप्ति होने पर ही वह भगवान् की कृपा पाने का अधिकारी होता है, परन्तु लक्ष्मी के लिए इस क्रिया की आवश्यकता नहीं होती । वह किसी क्रिया की अपेक्षा नहीं करती । मृदुलचित्ता लक्ष्मी अपराधी जीवों को हरिशरणागति का अधिकारी न देखकर भी उनके कल्यार्थ भगवान् से पैरवी करता है अपनी ओर से स्वतः (पुरुषकार) वह तो सामान्य प्रणाम से ही प्रसन्न होकर जीवों का मनोरथ पूर्ण कर देती है, इस तथ्य का प्रतिपादन महर्षि वाल्मीकि ने भी अपनी रामायण में सुन्दरकाण्ड में किया है -

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ।

अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ।।

गुणरत्नकोष से ऊपर उद्धृत श्लोक का तात्पर्य है श्री जानकी जी का पुरुषकारत्व । सीता" नाम की व्युत्पत्ति भी इसी तात्पर्य को हठ करती है । "सीता" उसे ही कहते हैं । जो अपनी चेष्टा से भगवान् को वश में करती है- सिनोति वशी करोति स्वचेष्टया भगवन्तं सा सीता । अर्थात् अपनी चेष्टा से भगवान् को वश में करने वाली होने के हेतु ही जनकनन्दिनी जानकी "सीता" नाम से पुकारी जाती है भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होते हैं इन्हीं गुणों के कारण वे जीवों के अपराधों की झटिति जान लेते हैं और उसे दण्ड देने के निमित्त तुरन्त उद्यत हो जाते हैं - परन्तु सीता जी अपने स्वाभाविक कारुण्य भाव से जीवों की ओर से इतना पुरुषकार करती है कि भगवान् के दोनों गुण-सर्वज्ञता तथा सर्वशक्तिमत्ता-निरुद्यम हो जाते हैं और भगवान् का सहज गुण, कृपालुता प्रकट हो जाता है भगवान् सोचते हैं कि समग्र प्राणियों की रक्षा करने में मैं ही समर्थ हूँ । इस प्रकार अपने सामर्थ्य के अनुसन्धान को भगवान् की "कृपा" कहते हैं -

रक्षणे सर्व भूतानामहमेव परो विभुः ।

इति सामर्थ्यसन्धाना कृपा सा पारमेश्वरी ।।

कृपा का निवास हृदय है, सर्वज्ञता का निवास मस्तिष्क है तथा सर्वशक्तिमत्ता का निवासस्थल बाहु है । समीपवर्तिनी होने से कृपादेवी हृदयस्थ भगवान् के ऊपर शीघ्रता से प्रभाव डालती है, अन्य दोनों शक्तियों के दूरवर्तिनी होने से उनका उतना प्रभाव नहीं होता ।

इस प्रकार ईश्वर तथा जीव का मध्यस्थ लक्ष्मी देवी करती है। लोकाचार्य का कहना है कि संश्लेष-दशा में जीव को वशीभूत करती है स्नेह और प्रेम

के उपदेश द्वारा ही वे दोनों को वश में करती है । उपदेश के द्वारा और ईश्वर का सौन्दर्य के द्वारा वशाभूत करती है । -

नारद पन्चरात्र का यह कथन इस शैली में किया गया है -

अहं मत्प्राप्त्युपायो वै साक्षात् लक्ष्मीपतिः

लक्ष्मी पुरुषकारेण वल्लभाप्राप्ति योगिनी ।।

कवि ने अपनी अलोक-सामान्य प्रतिभा के बल पर काट छांट कर जिस नारी-कल्पलता का सर्जन किया है वही लक्ष्मी है । वह नारी के सब गुणों से परिपूर्ण एक प्रेम प्रतिमा है- नितान्त सुन्दर कोमल, सरस तथा सरल । उसका बाह्यरूप जितना कमनीय है, उसका अन्तर विग्रह भी उतना ही मुग्धकारी है राधा साहित्य का सृष्टि है जिसका प्रेम अपार्थिव रूप में उल्लसित होता है जिसका सौन्दर्य स्वर्गीय सुषमा की एक झांकी प्रस्तुत करता है और जिसका हृदय अगाध स्नेहवारिधि से सिक्त अमृत का उत्स है ।

रासेश्वरी लक्ष्मी भी नित्य आनन्दमयी मूर्ति है । दोनों एक ही तत्व की युगलमूर्ति है । विष्णु रासेश्वर है, लक्ष्मी रासेश्वरी । ये नित्य रासेश्वरी भगवान् के रास की नित्य स्वामिनी है । इनके बिना भगवान रह ही नहीं सकते । लक्ष्मी कोई मृण्मयी मूर्ति नहीं, वह चिन्मयीविग्रहवती है । वह पार्थिव प्रतिमा नहीं, पराशक्ति का प्राकट्य है लक्ष्मी भारतीय वाङ्मय के सरोवर में प्रस्फुटित होने वाली सर्वश्रेष्ठ कनक-कंज-कलिका है" वह काव्य की अधिष्ठात्री है -भक्ति की निर्झरिणी है, कला की उत्स है । और प्रेम की प्रतिमा है । भारतीय वाङ्मय इस नारी रत्न की छाया व्यतिकर सौन्दर्य-सृष्टि से अनुप्राणित है ।

लक्ष्मी में तारुण्य है और कारुण्य है और लावण्य है वह क्षितितल के सम्पूर्ण लावण्य का सार है - लक्ष्मी एक अनुभूति है, एक भावना है, एक कल्पना है एक चिन्तना है एक माधुरी है लक्ष्मी भारतीय भक्ति और अनुरक्ति की सर्वोत्तम

अभिव्यक्ति है । भारतीय साधना और आराधना की परिणति का नाम है-राधा । वह गेया और ध्येया है; साध्या और आराध्या । लक्ष्मी को पाकर हमारा साहित्य धन्य हो उठा । इसकी कादम्बिनी साहित्य के गगन, मण्डल में छा गई, सरसता की वर्षा होने लगी, साहित्य का धरातल आप्लावित हो गया । कवियों की सुधाति-स्यन्दनी लेखनी नव जलधर के अन्तराल में संचरण करने वाली विद्युल्लेखा सी कनकवर्णी राधिका की अवतारणा में डूब गयी ।

जगत में राधा रासेश्वरी है, कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है, यही आद्या प्रकृति है । यह लक्ष्मी महाभावरूप है यह पुष्टि-साधना में स्वामिनी जी है । श्री सर्वस्वय है, उज्ज्वल रस की दिव्यज्योति है लक्ष्मी जी उसकी अंश विभूति है । महिषीगण वैभव विलास है और व्रजगोपियाँ कामव्यूह रूप है ।

देवी -

श्री विष्णु के सेवारूपी क्रीडा की नित्य-निवास स्थली होने से या श्रीकृष्ण के नेत्रों को अनन्त आनन्द देने वाली द्युति से समन्वित परमसुन्दरी होने के कारण ये देवी है ।

सर्वलक्ष्मीमयी -

समस्त लक्ष्मियों की अधिष्ठान आश्रय या आधार रूप होने के कारण, भगवान श्री विष्णु के छहों ऐश्वर्यों (ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य) की प्राणस्वरूपा या समस्त ऐश्वर्यों की मूलरूपा होने के कारण अथवा बैकुण्ठ की नारायवाक्ष- विलासिनी लक्ष्मी गण इन्हीं की वैभव विलास की अंशरूपा होने के कारण ये" सर्वलक्ष्मीमयी" कहलाती है ।

सर्वकान्ति -

सम्पूर्ण शोभा-सौन्दर्य की खानि, समस्त लक्ष्मियों तथा शोभाधिष्ठात्री देवियों की मूल उद्भवरूपा अथवा नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र की समस्त इच्छाओं की साक्षात् पूर्ति होने के कारण ये सर्वकान्ति है ।

एक प्रख्यात वैष्णव आचार्य भट्टाचार्य-स्वामी का बड़ा सुन्दर कथन है लक्ष्मी जी के प्रति जगन्नियन्ता महाविष्णु विश्व के साम्राज्य कार्य में इतने निमग्न रहते हैं कि मुझ जैसे दीन प्रजा की प्रार्थना उन्हें स्पर्श नहीं करती, प्रार्थना सुनकर भी अपनी व्यस्तता के कारण वे अन्य मनस्क और उदास प्रतीत होते हैं । तब पुत्रवत्सला लक्ष्मी आप मेरी सुध उन्हें दिलाया करना । और मेरी दीनता-हीनता तथा विवशता की बात उनके कानों में डालकर मेरे प्रति उनकी दयाके स्रोत को उद्रिक्त करना ।

पूर्ण सौन्दर्य अनन्त है उसकी तुलना नहीं हो सकती । सौन्दर्य के कण मात्र को प्राप्त कर विष्णु ने मोहिनी रूप से साक्षात् शङ्कर को भी मोहित कर दिया था[1] । इसकी कृपा से कामदेव[2] मुनिजनों मुनिजनों के मानस को मोहित कर दिया था । इसी की कृपा से कामदेव मुनिजनों के मानस को मोहित करता है ऐसा है यह सुन्दररूप भगवती त्रिपुरा-सुन्दरी का । त्रिपुरसुन्दरी के उपासक इसकी उपासना चन्द्रमा के माध्यम से किया करते हैं । इस चन्द्र की सोलह कलाएं हैं और सभी कलाये नित्य हैं । इसीलिए इसे "नित्यषोडशिका" की संज्ञा से पुकारते हैं।

1- सौन्दर्य लहरी का 5वां श्लोक

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजन सौभाग्य जननी
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् ।
स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयन लेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम्।। 5

15 कलायें ह्रास-वृद्धि करती हैं और 16वीं नित्या है।

पांचरात्र आगम में लक्ष्मी का स्वरूप -

तान्त्रिक पद्धति से भगवान विष्णु की उपासना का विशद वर्णन मिलता है, साथ ही उनकी प्रिय सहचरी कर्तुम कुर्तमन्यथा कुर्तुम समर्थ लक्ष्मी का पूजन प्रसंग भी दृष्टिगोचर होता है। अहिर्बुध्न्यसंहिता, जयसंहिता, नारद पांचरात्र-आगम आदि इसके प्रत्यक्षतः प्रमाण है। इन संहिताओं में नारायण-विष्णु के साथ शक्ति या लक्ष्मी का एक विशिष्ट सम्प्रदाय ही विकसित हुआ है. इसमें शक्ति का महत्व भागवत अर्थात् वैष्णव सम्प्रदाय में शाक्त साधना का क्रम प्रदर्शित करता है। जिसमें मंत्र मण्डल और यन्त्र इत्यादि का वर्णन आता है। इसके माध्यम से शक्ति उपासना स्थिर होती है तान्त्रिक विचारधारा का प्रभाव और अभ्यास सर्वथा इन संहिताओं में पूर्णतया परिलक्षित है।

पांचरात्र पद्धति की उपासना का परम लक्ष्य अद्वैत को ही स्थिर करना है। जो निर्वाण या निवृत्ति कहलाती है सती और पार्वती के स्वरूप की तरह ब्रह्म की शक्ति लक्ष्मी स्थिर होती है लक्ष्मी या शक्ति अवर्णनीय है, अचिन्त्या है, ब्रह्म से उसकी अपृथक् स्थिति है। उसे स्वरूपतः देखा नहीं जा सकता किन्तु शक्ति जब कार्यरत होती है तब उसको जाना जा सकता है।

यह शक्ति स्वच्छन्द शक्ति है, इसका प्रस्फुरण ही जगत् है। यह उदित और अस्त होने वाली तथा निमेष और अस्त होने वाली तथा निमेष और उन्मेषशालिनी है।[1] यह शक्ति निरपेक्ष है, आनन्दमयी है तथा नित्यापूर्णा है। जगत् को देखकर शक्ति लक्षित होती है, अतः वह लक्ष्मी है, विष्णुभाव का आश्रय

1- अहि० संहिता० पृ० 12

लेने के कारण वह श्री है । काम (इच्छा) पूर्ण करने के कारण "कमला" काल से परे होने से "पद्मा" विष्णु की सामर्थ्यरूपिणी होने से "विष्णुशक्ति" और अपने कार्यों से पति को प्रसन्न करने के कारण वह "विष्णुपत्नी" है । वह जगत् को अपने भीतर संकुचित करती है, अतः कुण्डलिनी है । शुद्ध सत्त्वाश्रया होने से वह "गौरी" है । गायकों की रक्षिका होने से वह "गायत्री" है ।[1] जगत् का सृजन करने के कारण वह प्रकृति" है । कृष्णरूप में विष्णु ही अवतार लेते हैं । वे साक्षात् भगवान् हैं । ब्रह्मा आदि देवों के स्वामी है, ये जगत् के एकमात्र आराध्य देव है । जो विशेषताएं विष्णु की है वे ही कृष्ण की भी हैं । कृष्ण के रूप में उनकी तीन पत्नियां हैं - रुक्मिणी, सत्यभामा और साम्भवती । इनके अवतार का प्रमुख उद्देश्य अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना है ।

शैव मत में जिस प्रकार शक्ति और शक्तिमान् का अभेद माना जाता है, वैष्णव मत में वैसा नहीं हैं । इस मत में लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति है । वह केवल परमात्मा के अधीन रहती है । अतः उससे भिन्न है ।[2] परमात्मा के समान ही लक्ष्मी नित्य है, मुक्त है, नानारूप-धारिणी है । पुराणों में कहा गया है कि जिनका कभी तिरोभाव नहीं होता वे जगन्माता लक्ष्मी नित्य हैं । जिस प्रकार विष्णु भगवान् सर्व-व्यापक हैं वैसे ही वे भी हैं -

नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तमः ।।[3]

1- गायत्रं वै गायत् शब्दरांशु- निरुक्त

2- भारतीय दर्शन, पृ० 495

3- वि०पु०, 1/8/17

इस बात का भी उल्लेख है कि विष्णु और लक्ष्मी का साथ नित्य है । हरि न्याय है तो ये नीति हैं, विष्णु बोध हैं और ये बुद्धि हैं, वे धर्म हैं और ये सत्क्रिया हैं । इसी प्रकार के विभिन्न उदाहरणों से इन दोनों के सतत साहचर्य का वर्णन है ।[1]

जिस प्रकार परमात्मा का शरीर दिव्य है, अप्राकृत है, लक्ष्मी भी उसी प्रकार दिव्यदेहधारिणी है । उसका कभी क्षरण (नाश) नहीं होता अतः वह अक्षरा है । इतना साम्य होते हुए भी वैषम्य यह है कि लक्ष्मी गुणों में भगवान् से कुछ न्यून है । इसका कार्य सृष्टि का संरक्षण और पालन है जैसे विष्णु के चतुर व्यूह वासुदेव- संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं उसी प्रकार लक्ष्मी के साथ भी लक्ष्मी, कीर्ति, जय, और माया ये चार स्वरूप प्रत्यक्ष होते हैं । विहगेन्द्र संहिता (3·5) में श्री", कीर्ति विजय श्रद्धा, स्मृति, मेधा धृति और करुणा ये अष्ट व्यूह वर्णित है, लेकिन लक्ष्मी तंत्र में श्री कामेश्वरी, शान्ति, क्रिया, शक्ति, विभूति, इच्छा, प्रीति, रति, माया, धीमहि और महिमा इस प्रकार बारह स्वरूप वर्णित हैं ।

नारायण विष्णु की शक्ति-

लक्ष्मी को नारायण की शक्ति माना गया है । महालक्ष्मी के द्वारा पूरी सृष्टि का उद्भव एवं विकास हुआ है । मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत वर्णित शक्ति चरित (दुर्गासप्तशती) में महालक्ष्मी के द्वारा ही त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)

1- विहगेन्द्र संहिता- 3·5

2- लक्ष्मी तंत्र-8/26-27

की सृष्टि हुई है । महालक्ष्मी के द्वारा ही सृजन, पालन और उपसंहार का कार्य सम्पन्न होता है । न कि इतर देवों के द्वारा, किन्तु भगवती ने सृष्टि पालन और संहार का कार्य त्रिदेवों को दिया अवश्य है तथापि निग्रह और अनुग्रह का कार्य अपने ही हाथों में या अपने ही आधिपत्य में सुरक्षित रखा है ।[1]

देवी उपासना का नैतिक दृष्टिकोण -

मूर्तियों का श्याम वर्ण रखा गया है,उनके इस काले रङ्ग का भी कुछ आधार है । काले रङ्ग का यह विशेषता है कि उस पर कोई दूसरा रङ्ग नहीं चढ़ सकता और जब काला रङ्क किसी वस्तु पर चढ़ जाता है । तो वह उतरता भी नही । इसमें सभी तरह के रङ्ग समा जाता है । और यह सब पर अपना प्रभुत्व रखता है । भगवान् के गुण जिन्हें प्राकृतिक नियम भी कहा जाता है । काले रङ्ग की तरह ही है जो बदल नहीं सकते और उसमें सब रङ्ग समा जाते हैं परन्तु वह काला का काला ही रहता है । प्राकृतिक नियम की अटलता का द्योतक यह काला रङ्ग रखा गया है ताकि उपासकों को मूर्ति के दर्शन करते ही इस तथ्य का स्मरण हो आए और बार-बार दर्शन करते रहने से उनके अन्तःकरण पर इस भाव का स्थिर छाप पड़ जाय ।

हिन्दू संस्कृति की उपासना पद्धति में जहाँ पुरुष देवताओं का स्थापना करके उनके गुणों व जीवन चरित्रों के अनुकरण की प्रेरणा दी गई है, वहाँ स्त्री जाति को सम्मानित करने के लिए भिन्न-भिन्न गुण व स्वभाव को देवियों की भी कल्पना की गई है । उनकी उपासना से भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों का वर्णन मिलता है। इसमें से लक्ष्मी, दुर्गा, काली, गायत्री,तारा, आदि का नाम उल्लेखनीय है ।

1- सौन्दर्य लहरी-
त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे ।
भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता ॥ 24 ॥

देवी उपासना की स्थापना का उद्देश्य यही है कि समाज में स्त्रियों के प्रति आदर और सम्मान के भाव जाग्रत हों । जिस तरह अपनी इष्ट देवी को जगतमाता के रूप में देखता है, उसी तरह से विश्व की हर स्त्री में वह अपने इष्टदेव का ध्यान करे और उसे पवित्र भाव से देखें ।

इतिहास साक्षी है कि बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी कभी-कभी इन्द्रियों को अपने वश में न रख सके, उनके पैर डगमगा गये और वह गलत रास्ते पर चल पड़े जिससे आज तक उनके ऋषित्व पर कलंक का टीका लगा हुआ है। विश्वामित्र जैसे महान तपस्वी ऋषि जिन्होंने नवीन सृष्टि की रचना का साहस किया, वह भी एक अप्सरा के रूप जाल में फंस गये और भोग-क्रीड़ाओं में दीर्घ समय तक लिप्त रहे जिससे उनका तेज क्षीण हो गया ।

समाज की इस निर्बल वृत्ति को अनुभव करते हुए ही देवी उपासना का आरम्भ किया गया ताकि देवियों के प्रति साधक गण के अन्तःकरण में पवित्र भावनाओं का संचार हो, समस्त नारी जाति में वह इष्ट देवी के दर्शन करें, उन्हें माता, बहिन, पुत्री के पवित्र भाव से देखे । धर्म के साथ जुड़ी हुई यह भावना साधक के मन में स्थिर हो जाती है और वह एक सभ्य मनुष्य की तरह समाज में विचरण करता है । यही देवी उपासना का रहस्य व लक्ष्य है । देवी उपासना के इस नैतिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जो साधक गायत्री, दुर्गा, लक्ष्मी, काली, आदि देवियों की साधना करते है, वही अपने-अपने चारित्रिक, मानसिक व आत्मिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल हो जाते हैं शेष तो अन्धकार में ही भटकते रहते हैं ।

भक्ति -

ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का महत्त्व बहुत अधिक है । उपनिषदों में ज्ञान का जो महत्त्व प्रतिपादित किया गया है वह ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान नहीं है,

अपितु ईश्वर का निरन्तर स्मरण ही ज्ञान है, ऐसा इन मतवालों का विचार है। यही भक्ति है। भक्ति में भी सर्वश्रेष्ठ स्थिति प्रपत्ति की है। प्रपत्ति का अर्थ है भगवान् (देवी) की शरण में जाना। जब सर्वतोभावेन भगवान् की शरण में चला जाता है तो उसकी रक्षा का भार भगवान् अपने हाथों में ले लेते हैं। जैसे - बिल्ली का बच्चा जब निःसहाय होकर माता की शरण में आता है तो बिल्ली उसे अपने मुँह में दबाकर सुरक्षित स्थान पर ले जाती है। इसी प्रकार बन्दरी का बच्चा अपनी माँ से चिपक जाता है और वह उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देती है। भक्त की स्थिति बिल्ली(मार्जार) और कपि के शिशु के समान है,उसकी चिन्ता का भार किसी और पर है। स्वयं उसे कुछ नहीं सोचना पड़ता। निम्बार्क मत में भी प्रपत्ति का इतना ही महत्त्व है। इन वैष्णवों को विदेह-मुक्ति ही मान्य है, जीवन्मुक्ति नहीं।

भारतीय उपासना पद्धति में देवी (शक्ति) उपासना के दो रूप हैं। (1) सहायिका के रूप में और (2) स्वतंत्र रूप में। सहायिका रूप में देवी या शक्ति अपने देवता या पुरुष के साथ प्रतिष्ठित की जाती है। हर-गौरी, शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण, विष्णु-लक्ष्मी सीता-राम आदि की मूर्तियों में गौरी, पार्वती, राधा लक्ष्मी और सीता अपने पुरुष हर-शिव-कृष्ण और राम की सहायिका है। तान्त्रिक साधना में भी जहाँ शक्तियों की पूजा की स्वतन्त्र मान्यता थी, पुरुष के साथ उसकी शक्ति के प्रदर्शन का नियम है। शक्तियों के पृथक् और स्वतंत्र रूप से पूजन तथा मूर्तीकरण का भी प्रचलन भारत में चला। शक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव के अनुसार ही आराध्य है।[1]

1- ता० वा० शा० द, पृ० 77

इस सृष्टि की उत्पत्ति शक्ति के द्वारा ही होता है । शिव अपने आप तो शवमात्र ही है । वे परमशिव अर्थात् पूर्ण शिव तभी बनते हैं । जब शक्ति के साथ उनका संयोग रहता है । "शिव तथा परमशिव एक होने पर भी ठीक एक नहीं है, क्योंकि शिव शक्ति-हीन प्रकाश-मात्र है, यह शिव होने पर भी वस्तुतः शव है या जडवत् है ।[1] शक्ति हीन शिव शिवतत्व में जो अनाश्रित शिव के नाम से शास्त्रों में प्रसिद्ध है, में चिदैक्य की ख्याति अर्थात् स्फुरण न रहने के कारण एक प्रकार से अविद्या से भरा है । इसलिए इसे अख्यातिमय कहा जाता है यह शिव विश्वोत्तीर्ण है, परन्तु शक्ति के योग से और उसकी समरसता के प्रभाव से वही शिव परम शिव पद को प्राप्त होता है ।[2]

मातृ-रूप में पूजा -

शाक्त मत में ईश्वर की पूजा मातृ-रूप में (शक्ति रूप में) होती है । इस मत के अनुसार इसी रूप में क्रियाशील रहता है । जिस प्रकार माता अपने शिशु के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहती है इस कारण उसे कोई अबला या निर्बला न समझ ले, इसी बात को लक्ष्य करके "महाकाल संहिता" में कहा गया है-"तुम न लड़की हो, न जवान हो, न बूढ़ी हो । तुम न पुरुष हो-न स्त्री और न इन दोनों से पृथक् । तुम अवर्णनीय हो, परिमाण से बाहर हो, द्वैत भावना से परे हो, तुम साक्षात् ब्रह्म हो ।[2]

1- ता०वा०शा०द०, भूमिकाभाग, पृ० 8

2- महाकाल सं०सुधा व्यास स्रोता ।

लक्ष्य -

शाक्त मत का लक्ष्य मोक्ष या अपने स्वरूप में अवस्थिति है । जीव अपने स्वरूप को भूलकर सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों के अनुसार दुःख भोगता रहता है । सकाम कर्म अन्ततः दुःख के ही जनक हैं । स्वर्ग का सुख भी अस्थायी ही है । अतः जीव अपने शिव-रूप की उपलब्धि के लिए यत्न करें । मोक्ष का अर्थ भी दुःखों से छुटकारा है ।

लक्ष्मी का उल्लेख उसके पौराणिक रूप में है । कहा गया है कि वह समुद्र से उत्पन्न होती है, चंचल है और दूसरे को छलना उसका स्वभाव है ।[1]

सौन्दर्य -

शक्ति और शील के साथ यदि किसी में सौन्दर्य भी हो तो उसके व्यक्तित्व में एक नवीनता आ जाती है । सौन्दर्य का अपना आकर्षण है, चराचर में ऐसा कोई नहीं कि जिस पर सौन्दर्य का जादू न चलता हो । उनका सौन्दर्य सचमुच मादक है । जो कोई देखता है वह अपनी सुध-बुध खो बैठता है । उनका सौन्दर्य वर्णनातीत है । संसार में जो भी सौन्दर्य है वह उन्हीं की तो देन है ।

1- पद्मावत् लक्ष्मी-समुद्र खण्ड, पृ० 420 ।

तान्त्रिक साधना प्रक्रिया में अनेक कार्य ऐसे हैं जिनको कार्य रूप में परिणत करना परमावश्यक होता है, यदि उन अभीष्ट क्रियाओं को निरर्थक समझ कर सर्वथा त्याज्य मान लिया जाय तो लक्ष्य की प्राप्ति त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है, अपितु विपरीत परिणाम परिलक्षित होने लगता है, यहाँ तक की साधक के प्राण तक चले जाने की पूर्णतया सम्भावना बन जाती है। अस्तु, इस अध्याय में हम कतिपय मुख्य क्रियाओं -काम्य प्रयोग, न्यास एवं मुद्राओं का ग्रहण करते हैं, पश्चात् श्री विद्या के समय कौल एवं मिश्रित मार्ग का अवलम्बन करेंगे। काम्य प्रयोग न्यास एवं मुद्राओं में प्रथम करणीय न्यास तदनन्तर मुद्राओं का गवेषणा करने के पश्चात् काम्य प्रयोग पर विचार किया जायेगा।

न्यास एवं मुद्रायें -

"न्यास" का अर्थ संयोजित करना होता है। न्यास शब्द संस्कृत के "नि" उपसर्ग पूर्वक अस् क्षेपणे धातु से घञ् प्रत्यय के प्रयोग से निष्पन्न होता है। इस प्रकार न्यास क्रिया से साधक अपने को अपने अभीष्ट देवता से संयोजित कर लेता है अथवा मंत्र का उच्चारण करते हुए न्यास क्रिया से मन्त्र-शक्ति को ही अपने में निक्षेपित कर लेता है। मुद्रा शब्द एक साथ युगपद्रूप से दो धातुओं का योग होने के कारण निष्पन्न होता है। इसमें 95 मुद हर्षे एवं रा दाने दो धातु स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है, इस प्रकार मुद्रा शब्द का अर्थ -"मुदं हर्षं राति ददाति इति मुद्रा" अर्थात् जो क्रिया असीम, हर्ष प्रदान करे वह मुद्रा{क्रिया कहलायेगा}

साधना के परिप्रेक्ष्य में मुद्राओं का प्रदर्शन इष्ट के समक्ष इसलिए किया जाता है । कि इष्ट प्रीतियुक्त होकर साधक की इष्टापूर्ति सम्पादित करें । मुद्राओं का प्रदर्शन मन्त्र-जप करते हुए किया जाता है ।

आधुनिक युग में "न्यास एवंमुद्रा" का विचित्र तालेक्य दृष्टिगोचर होता है । यदि कोई भी व्यक्ति अपनी मुद्रा (धन के अर्थ में प्रयुक्त) का न्यास करता है और राष्ट्र की प्रगति में उसका सदुपयोग किया जाता है तो उन साधारण उससे लाभान्वित होता ही है । अतः न्यास एवं मुद्रा की उपयोगिता समष्टि के अर्थ में भी उतनी खरी है जितनी व्यष्टि साधक के लिए उपयोगी है ।

"न्यास" -

साधक पूजा आसन पर विराजमान होने के पश्चात् पवित्र होकर पवित्री धारण करने के पश्चात् आचमन, शिखा बन्धनादि क्रियाओं को सम्पादित कर श्रीविद्या के पूजार्थ मन्त्र जपार्थ विनियोग करता है, जिसमें मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता (शक्ति) ऋषि, छन्द, बीज (देवता का मुख्य शब्द) शक्ति एवं कीलक का नाम ग्रहण करता है ।

उपरोक्त क्रियाओं को सम्पन्न कर चुकने पर "न्यास" क्रिया प्रारम्भ करता है । सर्वप्रथम ऋषि छन्द, देवता, बीज, शक्ति एवंकीलक जो समाम्नात् है, अतः प्रथमतः इनका न्यास होता है, जो निम्नवत् है -

1- ऋष्यादिन्यास -

इस सम्प्रदाय के ऋषि भगवान् दक्षिणामूर्ति जो हैं अतः दक्षिणामूर्ति का

1- श्रीविद्या तन्त्रम् और श्रीविद्यानित्यार्चनपद्धति,

मन्त्रमहोदधि एकादश तरङ्ग ।

न्यास मूर्धा (सिर) पर, पंक्ति छंद का मुख में त्रिपुर सुन्दरी देवता का हृदय में, बीज (ऐं) का गुह्य-प्रदेश में, त्रिपुर सुन्दरी देवता का हृदय में, बीज (ऐं) का गुह्य-प्रदेश में, शक्ति (सौ०) का पैरों में तथा कीलक (क्लीं) का नाभि में किया जाता है ।

2- कर शुद्धि न्यास-

क्योंकि समस्त क्रियायें हाथों से ही सम्भव है, अस्तु ऋष्यादि न्यास के शीघ्र पश्चात् ही कर शुद्धि न्यास किया जाता है । इसका कारण यह है कि यदि कहीं ज्ञान एवं अज्ञान में अपवित्र वस्तुओं का स्पर्श हाथों से हुआ हो तो मन्त्र बल से पवित्र हो जाय । सर्वप्रथम क्रमशः मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा में न्यास का पश्चात् क्रमशः अङ्गुष्ठ, तर्जनी एवं करतल कर पृष्ठ में न्यास किया जाता है ।

3- आसन न्यास-

इस न्यास क्रम में आसनों का नाम ग्रहण करते हुए शरीर के विभिन्न अङ्गों में न्यास किया जाता है, जिसमें देव्यासन का पैरों में चक्रासन का जङ्घों में सर्वमन्त्रासन का जानुओं में तथा साध्यसिद्धासन का लिङ्ग में न्यास होता है ।

4- षडङ्ग न्यास-

षडङ्ग न्यासमन्त्र के पाँच, तीन, एक-एक और पाँच वर्णों से क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र में न्यास किया जाता है ।

5- जगद्वशीकरणन्यास-

मान्त्राक्षरों से अमृत बरसाती हुई और उससे अपने शरीर को आप्लावित करती हुई, प्रदीप कलिका के समान आकारवाली ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सौभाग्यदा देवी

का ध्यान करते हुए मूल मन्त्र के प्रारम्भ में प्रणव (ॐ) तथा अन्त में "नमः" लगाकर मध्यमा एवं अनामिका से शिर में न्यास किया जाता है । पश्चात् वाम कर्ण में "परसौभाग्यदण्डिनी मुद्रा" करके वाम दिशा में शिर से पैर तक प्रणवादि एवं नमः अन्त वाले मूल-मन्त्र का न्यास किया जाता है ।

साधक अपने को लोकों का कर्ता मानता हुआ "त्रिखण्डा मुद्रा" से मन्त्र द्वारा प्रणव एवं नमः युक्त मंत्र से ललाट में न्यास करता है ।

"रिपुजिह्वाग्रहण मुद्रा" को दर्शाते हुए-"समस्त शत्रुओं को निगृहीत करने की भावना से प्रणवादि नमोन्तमूल मन्त्र का पादमूल में न्यास किया जाता है ।

इसी प्रकार मुख में पश्चात दक्षिण कर्ण से वामकर्ण तक उसी प्रकार न्यासकर, कण्ठ से मुख तक न्यास किया जाता है । पश्चात् प्रणव पुटित विद्या का सर्वाङ्ग में न्यास किया जाता है, पश्चात् योनि मुद्रा का प्रदर्शन कर त्रिपुर सुन्दरी को प्रणाम किया जाता है ।

6- सम्मोहन न्यास-

देवी की आभा से लाल वर्ण वाले विश्व का ध्यान करते हुए अङ्गुष्ठ एवं अनामिका द्वारा ब्रह्मरन्ध्र, मणिबन्ध एवं ललाट में मूलविद्या का न्यास किया जाता है ।

7- अक्षर न्यास (संहार न्यास) -

यह न्यास वास्तव में संहार न्यास कहलाता है । दोनों पैर, अङ्घ्रि, जानु, कटिभाग, लिङ्गपीठ, नाभि, बगल, स्तन, कक्ष, दोनों कर्ण, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, नेत्र, कान एवं कर्णाङ्कुलो में यथाक्रमेण मन्त्र के एक एक अक्षर का न्यास किया जाता है ।

8- वाग्देवता न्यास -

संहार न्यास के अव्यवहित पश्चात् वाग्देवता न्यास किया जाता है। उसके बीजों के नाम एवं स्थान विधि निम्न हैं -

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं लृं एं ऐं ओं, औं, अं अः ब्लूं

वशिनावाग्देवतायेनमः शिरासे।

कं, खं गं घं ङं कलह्रीं कामेश्वरी " " ललाटे

चं छं जं झं ञं न्व्लीं मोहिनी " " भ्रूमध्ये

टं ठं डं ढं णं य्लूं विमला " " कण्ठे।

तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणा " " हृदि

पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं-सर्वेश्व जयिनी " " नाभौ।

यं रं लं वं ह्म्ल्व्यूं सर्वेश्वरी " " मूलाधारे।

शं षं सं हं लं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनी " " ऊर्वादिपादान्तम्।

9- सृष्टि न्यास-

ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, नेत्र, कान, नासिका, गण्ड, दांत, ओष्ठ, जिह्वा, मुख, पीठ, सर्वाङ्ग, हृदय, स्तन, कुक्षि, एवं लिङ्ग पर क्रमशः एक एक वर्ण का न्यास किया जाता है। इसके अनन्तर मूल मन्त्र से व्यापक न्यास का विधान किया जाता है।

10- स्थिति न्यास-

सृष्टि न्यास के पश्चात् ही स्थिति न्यास का प्राविधान होने के कारण दोनों हाथ की अङ्गुष्ठ सहित दसों अंगुलियों, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, हृदय, नाभि से पैर तक कण्ठ से नाभि तक, ब्रह्मरन्ध्र से कण्ठ तक तथा दोनों पैर को

समस्त अंगुलियों में क्रमशः मन्त्र के एक-एक वर्ण का न्यास किया जाता है ।

11- पंचावृत्ति न्यास-

मूल मन्त्र की पांच आवृत्तियां होने के कारण यह उपरोक्त संज्ञा वाला है । यह न्यास पांच प्रकार का होता है । साधक श्रीमत्त्रिपुर सुन्दरी की तद्रूपता प्राप्त करने के लिए इसका न्यास सम्पादित करता है ।

शिर, मुख, दोनों नेत्र, दोनो कान, दोनों नासिका, दोनों गण्ड, दोनों ओष्ठ, मुख, कूप दोनों दन्तपंक्तियां तथा मुख में क्रमशः श्रीविद्या के एक एक वर्ण का न्यास होता है । यह प्रथम न्यास है ।

शिखा, सिर, ललाट, भ्रू, नासिका एवं मुख में मन्त्र के छः वर्णों का तथा दोनों हाथों की सन्धि एवं अग्र भाग में शेष वर्णों का न्यास होता है । यह द्वितीय न्यास कहलाता है ।

तृतीय न्यास में शिर, ललाट, दोनों नेत्र, मुख एवं जिह्वा पर मन्त्र के 6 वर्ण तथा दोनों पैर की संधियों एवं उनके अग्रभाग पर शेष वर्णों का न्यास किया जाता है ।

चतुर्थ न्यास में मातृकाओं का न्यास किया जाता है । स्वर स्थानों में मन्त्र के सोलह वर्णों का न्यास किया जाता है ।

पंचम में ललाट, कण्ठ, हृदय, नाभि, मूलाधार, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, गुदा, आधार, हृदय ब्रह्मरन्ध्र, दोनों हाथ-पैर तथा पुनः हृदय में मन्त्र के एक एक वर्ण का न्यास किया जाता है । इसके अनन्तर प्रणवयुक्त मन्त्र का सर्वाङ्ग में तथा मूल विद्या के पश्चात् नमः संयुक्त कर हृदय में न्यास किया जाता है ।

12- षोढा न्यास[1] -

सौभाग्य प्राप्ति की इच्छा से साधक षोढा न्यास करता है। इसमें 6 प्रकार का अलग अलग न्यास होने के कारण इसे षोढा न्यास कहा जाता है, जो निम्न है -

1- गणेश मातृका न्यास 4 - योगिनी मातृका न्यास
2- ग्रहमातृका न्यास 5- राशि मातृका न्यास
3- नक्षत्र मातृका न्यास 6- पीठ मातृका न्यास

इसमें से प्रत्येक में दक्षिणामूर्ति ऋषि एवं छन्द गायत्री है, अपने अपने क्रम में क्रमशः सभी देवता है। प्रधान न्यास के पूर्व षडङ्गन्यास करना पड़ता है। पश्चात् ध्यान का विधान होने से ध्यान कर प्रधान न्यास अ से प्रारम्भ कर क्ष अक्षर तक प्रत्येक में सम्पन्न होता है।

मुद्राएं[2] -

मन्त्र जप करते समय मुद्राओं का प्रदर्शन किया जाता है। इससे समस्त देवताओं को मोद होता है। समस्त पापों का क्षय होता है, समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त होती है। अस्तु यह मुद्रा कहलाती है। देवताओं की प्रसन्नता चित्त की शुद्धि और विविध रोगों के नाश में मुद्राओं से बड़ी सहायता प्राप्त

1- षोढान्यासादयोन्यासाः कार्य्याः सौभाग्यवांछया मन्त्रमहोद0 ।।/48

2- मन्त्र महोदधि एकादश तरङ्ग।

होती है ।

यद्यपि योगशास्त्र में असंख्य मुद्राओं का वर्णन उपलब्ध होता है तथापि "लक्ष्मी" उपासना में निम्न मुद्राएं इस प्रकार हैं -

1- कमल मुद्रा -

इसमें दोनों हाथों की कनिष्ठका और अंगुष्ठ को मिलाकर शेष अंगुलियों को खुला रख कर हाथों को मिलाये हुए प्रदर्शन किया जाता है ।

2- योनि मुद्रा -

दोनों मध्यमाओं के नीचे से बायीं तर्जना के ऊपर दाहिना अनामिका और दाहिनी तर्जनी पर बायीं अनामिका रखकर दोनों तर्जनियों से बांधकर दोनों

1-अ- अं मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च । कुलार्णवतन्त्र {17/57}

ब- मुद्राः प्रवक्ष्यामिथाभिः मादन्ते सर्वदेवताः । शारदा तिलक 3/106

स- मोदनात् सर्वदेवानां द्रावणात् पाप सन्ततेः ।तस्मान्मुद्रेयमाख्याता सर्वकामार्थ साधिनां । मुदंराती मुद्रा स्यात् येनेकांगुष्ठरेषु ।
स्वल्पभेदात् कोप हर्षोत्प्राणिनां जनयत्यतः ।
तेनैव सर्वदेवानां मुद्राहर्षे प्रदामता ।। यामलतन्त्र

द- मुद्राः देवता- सन्निधापकाः । पूजाप्रकाश, पृ0 123
मुदं करोति देवानां राक्षसान् द्रावयन्ति च । विष्णु संहिता

य- मुदं राती ददातीति मुद्रा । अतएव तद्दर्शनेन देवता हर्षोत्पत्तिः ।
राघव भट्ट{ मुद्राएं एवं उपचार, पृ012 }

मध्यमा ऊपर रखे । योनि मुद्रा का लक्षण -

मिथः कनिष्ठके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके,
आनामिकोर्ध्वं संश्लिष्ट दार्घमध्यमयोरधः,
अङ्गुष्ठाद्वयं न्यस्येद योनिमुद्रेयमोरिता ।।

योनि मुद्रा का प्रदर्शन कई तरह से किया जाता है । अधुना नव प्रधान मुद्राओं का वर्णन उनके लक्षण सहित किया जाता है ।

विश्व में प्रचलित प्रायः सभी धर्मों में "मुद्रा" का अपना विशेष स्थान रहा है, किन्तु भारतीय सनातन धर्म के अन्तर्गत आगम शास्त्र अर्थात् तन्त्रों में मुद्राओं का विवरण जितने वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित ढंग से विस्तार के साथ उपलब्ध होता है, अन्यत्र दुर्लभ है । "मुद्रा" शब्द के अनेक अर्थहोते हैं किन्तु धर्म के कर्म-काण्ड के प्रसङ्ग में देव पूजा करते समय हाथ की अङ्गुलियों द्वारा जो सार्थक प्रदर्शन किया जाता है, उससे प्रकट होने वाली विशेष आकृतियों को भी "मुद्रा" नाम से जाना जाता है ।

एकाक्षर बीज मन्त्र की न्यास विधि

ऋष्यादिन्यासः-

यदि एकाक्षरी बीज मन्त्र "श्रीं" है तो न्यास इस प्रकार होगा ।

श्रीः भृगु ऋषये नमः शिरसि, निवृद् छन्दसे नमः मुखे,
श्री लक्ष्मी देवताये नमः हृदि, ॐ श्रं बीजाय नमः गुह्ये,
ॐ ईं शक्तये नमः पादयोः । ॐश्रीं बीजाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यास -

ॐ श्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ श्रीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ श्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ श्रैं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ श्रौं कनिष्ठकाभ्यां नमः, ॐ श्रः करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः । इस प्रकार करन्यास होगा ।

हृदयादिषड्गन्यासः -

ॐ श्रां हृदयाय नमः, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रूं शिखाये वषट्, ॐ श्रैं कवचाय हुम्, ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रः अस्त्राय फट् ।

ध्यानः - इस प्रकार न्यास विधि का ध्यान करें ।

ॐ कान्त्या कांचनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैर्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृत घटैरासिच्यमानां श्रियम् ।

बिभ्राणां परमब्जयुग्मय-भयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां

क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललिता-वदेऽरविन्दास्थिताम् ।।

दशाक्षर लक्ष्मी मन्त्र

"ॐ नमः कमलवासिन्यै स्वाहा"

इस मंत्र के ऋषि दक्ष, विराट छन्द और लक्ष्मी देवता है ।

ऋष्यादिन्यास -

दक्ष ऋषये नमः शिरसे । । विराटछन्दसे नमः मुखे 2 । श्रियेदेवताये नमः हृदि 3 । विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे 4 ।

करन्यास -

ॐ देव्यै नमोगुष्ठाभ्यां नमः । 1 । ॐ पद्मिन्यै नमस्तर्जनीभ्यां नमः 2।

ॐ विष्णुपत्न्यै नमो मध्यमाभ्यां नमः 3 । ॐ वरदायै नमोऽनामिकाभ्यां नमः4 ।

ॐ कमलायै नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः 5 ।

नेत्रहीनपञ्चाङ्गन्यास-

ॐ देव्यै नमोहृदयाय नमः । 1 । ॐ पद्मिनन्यै नमः शिरसे स्वाहा 2 ।

ॐ विष्णुपत्न्यै नमः । शिखायै वषट् 3 । ॐ वरदायै नमः कवचाय हुम 4 ।

ॐ कमलायै नमः अस्त्राय फट् 5 ।

इस मंत्र की विलक्षणता यह है कि इसमें नेत्र का न्यास नहीं है ।

इस प्रकार यह नेत्रहीन अङ्ग न्यास है ।

ध्यान -

ॐ आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजे बिभ्रती

दानं पद्मयुगाभये च वपुषा सौदामिनीसन्निभा ।

मुक्ताहार विराजमान-पृथुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिना

पायाद्वः कमला कटाक्ष विभवैरानन्दयन्ती हरिम् ।।

द्वादशाक्षर महालक्ष्मी मन्त्र

"ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौ जगत्प्रसूत्यै नमः" यह बारह अक्षरों वाला

मन्त्र है ।

ऋष्यादिन्यासः -

ॐ ब्रह्मऋषये नमः शिरसि 1 । गायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे 2 ।
श्री जगन्माता महालक्ष्म्यै नमः हृदि 3 । श्री बीजाय नमः गुह्ये । विनियोगाय
नमः सर्वाङ्गे 5 ।

करन्यासः -

मूल से हाथ-धोकर ॐ ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः 1 । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां
नमः 2 । ॐ श्रीं मध्यमाभ्यां नमः 3 । ॐ क्लीं अनामिकाभ्यां नमः 4 ।
ॐ सौ कनिष्ठिकाभ्यां नमः 5 । ॐ जगत्प्रसूत्यै करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः 6 ।

मन्त्रवर्णन्यासः -

ॐ ह्रीं नमः मुखे 2 । ॐ श्रीं नमः हृदये 3 । ॐ क्लीं नमः
गुह्ये 4 । ॐ सौ नमः पादयोः 5 । इस प्रकार-न्यास करके हृदय पर हाथ
रखकर सप्तवर्ण करे । इसमें क्रम यह है - ॐ जं नमः त्वचि 6 । ॐ गत नमः रक्ते 7 ।
प्रं नमः मांसे 8 । ॐ सूं नमः मेदसि 9 । ॐत्यै नमः अस्थिन 10 । ॐ नं नमः
मज्जायाम् 11 । ॐ मं नमः शुक्रे 12 ।

मन्त्रवर्णन्यास के बाद फिर से करन्यास हृदयादिषड्गन्यास करना
चाहिए, इसके बाद उधान का स्मरण करे । उसके पश्चात् ध्यान करें ।

ध्यान् -

बालार्कद्युतिमिन्दुखण्डविलसत्कोटीरहारोज्ज्वलां
रत्नाकल्पविभूषितां कुचनतां शालेः करैर्मञ्जरीम् ।
पद्मंकौस्तुभरत्नमप्यविरतं सम्भ्रिभ्रतीं सस्मितां
फुल्लाम्भोजविलोचनत्रययुतां ध्यायेत्पराम्बिकाम् ।। 1-15 तक ।

सप्तविंशत्यर महालक्ष्मी मंत्र

"ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद-प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः" यह सत्ताइस अक्षरों वाला मन्त्र है ।

ऋष्यादिन्यास -

ॐ ब्रह्मऋषये नमः शिरसि । ॐ गायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे- 2 । ॐ महालक्ष्मी देवतायै नमः हृदि 3 । ॐ श्रीं बीजाय नमः गुह्ये 4 । ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः 5 । ॐ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे इति ।

करन्यास -

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले श्रीं ह्रीं श्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । । ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये श्रीं ह्रीं श्रीं तर्जनीभ्यां नमः 2 । ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं मध्यमाभ्यां नमः 3 । ॐ श्रीं श्रीं प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं अनामिकाभ्यां नमः 4। ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै श्रीं ह्रीं श्रीं कनिष्ठकाभ्यां नमः5। इति करन्यासः।

नेत्रहीनपञ्चाङ्गन्यास-

ॐ देव्यै नमो हृदयाय नमः । । ॐ पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा 2 । ॐ विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट् 3 । ॐ वरदायै नमः कवचाय हुम् 4 । ॐ कमलायै नमः अस्त्राय फट् 5 ।

इस मंत्र की विलक्षणता यह है कि इसमें नेत्र का न्यास नहीं है इस प्रकार यह नेत्रहीन अङ्ग न्यास है ।

ध्यानम् -

ॐ सिंदूरारुणकान्तिमब्जवसतिं सौंदर्यवारान्निधिं ।

कोटीरांगदहार कुण्डलकरासूत्रादिभिर्भूषिताम् ।

हस्ताब्जैर्वसुपत्रमब्जयुगलदर्शौ वहन्तो परमावीतं

परिचारिकाभिरनिशं ध्यायेत्प्रिया शार्ङ्गिणः ।।

लक्ष्मी मन्त्र के द्वारा विभिन्न द्रव्यों से अग्नि में, आहुति डालने से विविध प्रकार के मनोरथों की सिद्धि हो जाती है । यथा-वश्य आकर्षण विद्वेषण, मोहन, ताडन, उत्पादन छेदन, मारण प्रतिबंधन आदि ।

काम्य प्रयोग -

धन-धान्य की समृद्धि प्राप्त करने के लिए साधक को एकाक्षर,लक्ष्मी बीज मंत्र[1] का बारह लाख मंत्र का जप करे । जप के बाद साधक, मधु, घी तथा शक्कर के साथ तिल से होम करे अथवा मधु, घी तथा शहद से परिप्लुत बेल के फलों से होम करें । ऐसा करने से धन धान्य समृद्धि की प्राप्त होती है । यदि साधक वक्ष-प्रमाण जल में खड़ा होकर इस मंत्र का तीन लाख जप करे तो वह वांछित धन प्राप्त करता है ।

साधक अशोक की समिधाओं से प्रदीप्त अग्नि में घी से सिक्त चावलों से यदि होम करें तो शीघ्र ही तीनों लोकों को वश में कर लेता है । मदार की समिधाओं से प्रदीप्त शुद्ध अग्नि में चावल से दस लाख होम करे तो चिरन्तन राज्यश्री को प्राप्त करता है । यदि साधक खैर की समिधा से प्रदीप्त अग्नि में मधु,घी,तथा

1- मन्त्र महार्णव,द्वितीय भाग, कमलात्मिका म०खण्डे त्रयोदशस्तरंगः ।

शक्कर से युक्त चावलों से होम करें तो राजा शीघ्र वश में हो जाता है और उसको महालक्ष्मी बढ़ती है ।

दशाक्षर लक्ष्मी मंत्र[1] का साधक जितेन्द्रिय होकर दश लाख मंत्र का जप करें । जप का दशांश मधु, घी तथा शक्कर से सिक्त लाल कमलों से होम करे । इस प्रकार जो समुद्र में गिरने वाली नदी में कण्ठ मात्र जल में खड़ा होकर देवी की पूजा करता है वह सम्पत्तियों का धाम बन जाता है ।

इस दशाक्षर मंत्र से नन्धावर्त फूलों से एक हजार होम करें । पूर्णमासी में मधु, घी, तथा शक्कर से युक्त बेलों से होम करे । पञ्चमी को बड़े कमल के फूलों से और शुक्रवार को सुगन्धित अन्य बड़े फूलों से हवन करें । इस प्रकार जो करता है वह एक वर्ष में समस्त सम्पत्तियों का निधि बन जाता है ।

द्वादशाक्षर महालक्ष्मी मन्त्र[2] से मनुष्य आयु की प्राप्ति के लिए प्रदीप्त अग्नि में एक हजार आठ बार घी से सिक्त दूबों से दश रात्रि तक होम करें । घी से युक्त गिलोय से सात दिन तक जो जो एक हजार आठ बार होम करता है वह सौ वर्ष तक जीवित रहता है । रविवार से प्रारम्भ करके दश रात्रियों तक प्रतिदिन जो घी से सिक्त तिलों से होम करता है वह दीर्घायु प्राप्त करता है । घी से सिक्त मदार की समिधाओं से होम करने से मनुष्य निश्चित रूप से आरोग्य प्राप्त करता है ।

जो साधक कण्ठ तक जल में सूर्योदय के समय खड़ा होकर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर देवी का ध्यान करके एक हजार आठ आहुतियों का होम करता है वह तत्काल आरोग्य प्राप्त करता है । और उसकी कामनायें भी पूर्ण हो जाती हैं ।

1- मन्त्र महार्णव, द्वितीय भाग, कमलात्मिका मन्त्रखण्डे त्रयोदशस्तरंगः ।

2- "

चावलों से नित्य होम करने वालों को भी शीघ्र ही निश्चित रूप से महती लक्ष्मी प्राप्त होती है । घृत से युक्त लक्ष्मी वल्ली (मेष श्रृंगी) और नन्द्यावर्त के पुष्पों से तथा पीली सरसों से जो साधक होम करता है वह भी महती समृद्धि को प्राप्त करता है ।

गुड मिश्रित हविष्य से होम करने से साधक धनवान होता है । जपा पुष्पों से एक हजार आठ बार होम करने,उसकी, भस्म, को नामवल्ली से समन्वित कर जप करके उससे तिलक लगाने से साधक सभी को वश में कर लेता है । (द्वादशाक्षर महालक्ष्मी मन्त्र का)

पलाश की समिधाओं और पुष्पों से होम करने से साधक ब्राह्मणों को वश में कर लेता है । चमेली के पुष्पों से होम करने से साधक राजा को शुभ लाल कमलों से होम करने से शूद्रों को वश में कर लेता है । महुये के पुष्पों से होम करने से साधक स्त्रियों को वश में कर लेता है ।

त्रयोविंशत्यक्षर लक्ष्मी मन्त्र[1] का प्रतिदिन एक सौ आठ बार जपने से लक्ष्मी प्रसन्न हो द्रव्य प्रदान करती है । ये मन्त्र इस प्रकार है -

"ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं लक्ष्मीरागच्छागच्छ मम मन्दिरे तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा।"

यह तेईस अक्षरों वाला मन्त्र है ।

सप्तविंशत्यक्षर महालक्ष्मी मन्त्र[2] का साधक को एक लाख मन्त्र का जप करें । इसके बाद मधु, घी तथा शक्कर से युक्त बेल के फलों से नियमानुसार दशांश होम करना चाहिए । ऐसा करने से उसके घर में देवी अपने घर को भूलकर निवास करती है । यदि राजा चन्दन के जल से एक लाख कमलों का सिक्त करके

1- मन्त्र महार्णव-द्वितीयभाग,कमलात्मिका म० खण्डे त्रयोदशस्तरंग: ।

हवन करें तो बिना युद्ध के शत्रु के राज्य को प्राप्त करता है ।

दूब, सहदेई, लक्ष्मी वल्ली, विष्णुक्रान्ता, मधुव्रता, मुशली, इन्द्रवारुणी, नागरमोथा, लज्जालू, पीतचन्दन, कपूर, श्वेत चन्दन, अकोल, गोरोचन, बेल, नागकेसर, तथा कुष्ठ को हल्दी के रस में पीस कर एक सौ आठ मन्त्र का जाप करके तिलक लगाने से मन्त्रिगण साधक के वश में होकर रातदिन तत्पर रहते हैं ।

अधिक धन की इच्छा करता हुआ सदा सत्याचारी रहकर साधक लक्ष्मी के मन्त्र का जाप करे और पूर्व की ओर मुख करके बैठे तथा सत्य बोले शुद्ध और जितेन्द्रिय होकर गन्ध-पुष्प आदि से साधक अपनी पूजा नित्य करें । कहीं पर अपवित्र होकर न शयन करे । व्यर्थ भूमि न कुरेदे । बेल गूमा या कमल को सिर पर न धारण करे और नमक या तेल अकेले-अकेले न खाये । कभी मलिन न रहे । निन्दित अन्न न खाये । गूमा, बेल तथा कमल को पैरों से कभी न लांघे । सहदेई, इन्द्र वारुणी, लक्ष्मीलता, विष्णुक्रान्ता, घीकुआर, कमल तथा प्रवाल सदा सिर पर धारण करे । इस प्रकार के आचारों से युक्त होकर नित्य विष्णु भक्त और व्रत में निष्ठावान् होकर जो रहता है वह देव दुर्लभ महती समृद्धि को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सम्यक विधि से अनुष्ठान करने पर पुरश्चरण द्वारा त्रैलोक्य की समस्त वस्तुओं की प्राप्ति की जा सकती है । काम्य-प्रयोग को ध्यान में रखकर साधक समस्त अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि साधना प्रक्रिया

पूर्णतया वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है, क्योंकर तान्त्रिक क्षेत्र में तथ्य शत प्रतिशत सत्य सिद्ध होता है । यदि कोई भी साधक सम्यक प्रकार से गुरु के निर्देशन में कोई भी सिद्धयर्थ कार्य प्रारम्भ करता है साथ ही साथ समस्त उपचारों को यथाविधि प्रयुक्त करता है, तो साधना एवं सिद्धि उभय की प्राप्ति सुनिश्चित है । न्यास में शक्ति का आरोपण किया जाता है जिससे दैवीय शक्ति का संचालन होने लगता है । मुद्राओं का प्रयोग तो सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । इसके द्वारा असाध्य रोगों का निवारण देखा जाता है । काम्य प्रयोग तो इस बात की प्रामाणिकता ही सिद्ध करता है कि कोई भी कार्य निरुद्देश्य सम्भव नहीं है । सकाम होकर ही जगत् संचालित है, निष्काम भाव से नहीं ।

पंचम अध्याय

श्रीसूक्त और स्तोत्रों का दार्शनिक अध्ययन ।

"श्रीसूक्त" और स्तोत्रों का दार्शनिक विवेचन

ब्रह्म विद्या ही वैदिक धर्म का सार है । श्वेताश्वतरोपनिषद का कथन है कि ब्रह्म विद्या अतिगुह्य तत्त्व होने के कारण सामान्य जन से अज्ञेय, मुण्डकोपनिषद ﴾ 3/2/6﴿ का उद्घोषपूर्वक कथन है कि सन्यास आश्रमी योग साधन के माध्यम से पुरुषार्थ का मार्ग प्रशस्त कर लेता है । प्रत्यक्ष,अप्रत्यक्ष रूप से वेदों का उद्देश्य जीव का परमात्मा के साथ ही एकीकरण ही है । उपनिषदें जो वेदों के हृदय ही है ने कतिपय प्रश्नों के उत्तर सहजता से ही प्रदान करती है -यथा- क्या जगत का कोई कारण विशेष है ? कौन इसकी रक्षा करता है ? प्रलय के समय आश्रयभूत तत्त्व कहा ? जीव का परम लक्ष्य क्या है ? जीवन का क्या महत्त्व या अर्थ है जिस-जिस की इच्छा की जाती है । उन समस्त पदार्थों की प्राप्ति क्यों नही होती ? अनिच्छित घटनाओं की प्राप्ति क्यों होती है ? बन्धन क्या है ? पशु आत्मा का पराभव कैसे दूर किया जा सकता है ? इन समस्त तत्त्वों-प्रश्नों के उत्तर उपनिषदों के माध्यम से हमारे सुधी विचारकों एवं ऋषियों ने अन्वेषित किये हैं । "श्रीसूक्त" एवं "लक्ष्मीसूक्तों" के माध्यम से हम उन तत्त्वों का उत्तर प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं -

ऋग्वेद के परिशिष्ट भाग में "श्रीसूक्त" और "लक्ष्मीसूक्त" एक साथ संकलित किये गये है । वैदिक परम्परा में लक्ष्मी श्रीसूक्त की 16 ऋचायें तत्पश्चात ही 13 ऋचायें लक्ष्मीसूक्त के रूप में संकलित है । इन कुल 29 ऋचाओं में "श्री" एवं "लक्ष्मी" के स्वरूप, और उनके कृतित्व का पूर्ण विवरण वर्णित है । श्रीसूक्त मुख्यतया रसायन-शास्त्र का वर्णन किया गया है । जिसमें बिल्व को प्रधानता दी गयी है । "श्री" एवं लक्ष्मी का साक्षात् सम्बन्ध पालन की कार्य करने वाले विष्णु से है -

"श्रयते या सा श्रीः" जो परम्ब्रह्म का आश्रयण कर स्थिर रहे अथवा परम्ब्रह्म ही जिसके आश्रय में रहे वह श्री कहलाती है। "श्री" शोभादायक तत्व है। "श्री" का निवास मस्तक एवं चेहरे पर स्पष्ट रूप से श्रीवान् पुरुषों पर देखा जा सकता है।

लक्ष्मी जीवन दायक तत्त्व है। लक्ष्मी के अभाव में जीवन कष्ट कर हो जाता है यदि श्री है तो लक्ष्मी के न रहने पर भी जीवन धारा चलती रहती है, किन्तु श्रीहीन होने पर लक्ष्मी का सर्वदा के लिए लोप हो जाता है।

त्रिगुणमयी परमेश्वरी महालक्ष्मी ही सबका कारण है वह दृश्य और अदृश्य रूप से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किये हुए है। अपनी चार भुजाओं में मातुलिङ्ग, गदा, खेट, एवं पानपात्र और मस्तक पर नाग·लिङ्ग तथा योनि इन वस्तुओं को धारण करती है। तपाये हुए सुवर्ण के समान उनकी कान्ति और आभूषण दोनों ही है।

महाप्रलय के पश्चात् सम्पूर्ण लोक को शून्य देखकर तमोगुण रूपी उपाधि के द्वारा एक अन्य रूप धारण किया -

"कामस्तदग्रेऽसीत्" (नासदीय सूक्त ऋ0)

उसके मन में काम (इच्छा) से उत्पन्न हुई कि "एकोऽहम् बहुस्याम" अर्थात् मैं अकेली ही हूँ अपने को कई रूपों में प्रगट कर बहुत सी हो जाऊ, अर्थात् सृष्टि का विकास हो ऐसा सोचते ही यह रूप एक नारी के रूप में प्रकट हुआ जिसके शरीर की कान्ति उत्कृष्ट काजल की भांति थी। सुभ्रुवी, सुनयना, और क्षीण कटिवाली थी। चार भुजाओं में ढाल, तलवार, प्याले (पात्र) और कटे हुए मस्तक से सुशोभित थी और वक्षस्थल पर कबन्ध की और मस्तक पर मुण्डों की माला धारण किये हुए थी। उस देवी ने महालक्ष्मी से अपना नाम और कर्म बताने की प्रार्थना की।

महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, एक वीटा कालरात्रि, इत्यै नाम और कर्मों के द्वारा लोक में विख्यात हो ।

दूसरे सत्वगुण के द्वारा दूसरा स्वरूप उत्पन्न किया । जो चन्द्रमा के समान गौरवर्ण, वाला था । हाथों में अक्षमाला, अङ्कुश, वाण, तथा पुस्तक भी धारण किये हुए थी । महाविद्या महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी । इस प्रकार का नामकरण करने के पश्चात् महालक्ष्मी ने दोनों को अपने-अपने गुणों के अनुरूप स्त्री एवं पुरुष के जोड़े को उत्पन्न करने का आदेश दिया ।

महालक्ष्मी ने स्वमेव हिरण्यगर्भ का जोड़े को उत्पन्न किया । जिनके नाम ब्रह्मा, विधि, विरंचि, धाता और श्री स्त्री की श्री, पद्मा, कमला, लक्ष्मी नामकरण किया । महाकाली ने शङ्कर को और एक गौरी स्त्री को उत्पन्न किया । नामकरण करते हुए, रुद्र, शङ्कर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचन के नाम से तथा स्त्री को त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षय और स्वाहा नाम से सम्बोधित किया । पुरुष का रङ्ग श्वेत लाल भुजा, कण्ठ में नील चिन्ह और मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट धारण किये हुए था ।

महासरस्वती ने गोरे रङ्ग की स्त्री और श्याम रङ्ग के पुरुष को प्रगट किया । नामकरण करते हुए विष्णु, कृष्ण हृषीकेश, वासुदेव और जनार्दन, तथा स्त्री को उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी सुभगा और शिवा कहा । इस प्रकार तीनों ज्योतियां तत्काल पुरुष रूप को प्राप्त हुई ।

महालक्ष्मी ने त्रयी विद्या रूपा सरस्वती को ब्रह्मा के लिए रुद्र को वरदायनी गौरी तथा भगवान् वासुदेव को लक्ष्मी पत्नीरूप में दे दिया । सरस्वती के साथ संयुक्त होकर ब्रह्मा जी ने ब्रह्माण्ड का सृजन, लक्ष्मी के साथ

मिलकर विष्णु या वासुदेव ने पालन, और परम पराक्रमी भगवान् रुद्र ने गौरी के साथ उसका भेदन किया । उस ब्रह्माण्ड में प्रधान {महतत्व} आदि कार्य समूह- पंच महाभूतात्मक समस्त स्थावर जंगम रूप जगत् की उत्पत्ति हुई, लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु जगत का पालन, पोषण गौरी के साथ शङ्कर प्रलय का कार्य में सम्पादन करते हैं । महालक्ष्मी ही सर्वसत्वमयी तथा सब तत्वों की अधीश्वरी हैं । निराकार और साकार रूप में रहकर सत्या ज्ञान-चित्त, महामाया आदि नामान्तरों से इस महालक्ष्मी का निरूपण किया जाता है ।

श्रीदेव्य अथर्व शीर्ष उपनिषद में भगवती महालक्ष्मी ने अपने स्वरूप का वर्णन देवताओं के द्वारा शंका प्रकट किये जाने पर अपने स्वरूप का जो परिचय दिया है । वह मननीय है ।

मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ । मुझसे प्रकृति पुरुषात्मक शब्द रूप और असत् रूप जगत् उत्पन्न हुआ । मैं आनन्द और आनन्दरूप हूँ मैं ही विज्ञान और विज्ञानरूपा हूँ । सर्वथा ज्ञेय ब्रह्म और जीव मैं ही हूँ और अपंचीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ । यह सारा दृश्य जगत भी मेरा ही स्वरूप है । वेद {ज्ञान} और अवेद {अज्ञान} मैं ही हूँ । अविद्या और अविद्या भी मैं ही हूँ । अजा और अनजा अर्थात् प्रकृति और उससे भिन्न भी मैं हूँ, नीचे ऊपर, अगल-बगल, सर्वत्र भी मैं ही हूँ ।

मैं रुद्रों और वसुओं के रूप में संचार करती हूँ । आदित्यों और विश्वदेवों के रूप में भ्रमण करती हूँ । मित्र और वरुण, इन्द्र एवं अग्नि और दोनों अश्विनो का भरण-पोषण करती हूँ । सोम, त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ । त्रैलोक्य को मापने वाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापति को भी मैं ही धारण करती हूँ । देवों को उत्तम हवि पहुँचाने वाले और सोमरस निकालने वाले यजमान के लिए हविर्द्रव्यों से युक्त धन-धारण करती हूँ । मैं सम्पूर्ण जगत की ईश्वरी, उपासकों को धन देने वाली, ब्रह्मरूप, और यजन करने योग्य देवों में मुख्य हूँ । मैं आत्मस्वरूप पर आकाशादि का निर्माण करती हूँ । मेरा स्थान {योगि} आत्मस्वरूप को धारण करने वाली बुद्धि वृत्य में है अथवा समुद्र के अन्दर जल में है ।

श्रीसूक्त -

ऋग्वेद संहिता के परिशिष्ट भाग में संग्रहीत श्रीसूक्त और लक्ष्मी सूक्त जिनकी संज्ञा श्रीसूक्त ही है 29 ऋचाओं में वर्णित है, जिसमें से 16 ऋचायें श्रीसूक्त की और 13 ऋचायें लक्ष्मी सूक्त की है । श्रीसूक्त के 15 ऋचाओं में श्री का पूरा स्वरूप वर्णित है, और सोलहवीं ऋचा में विधान । इसी के साथ लक्ष्मी सूक्त में चौबीस ऋचा तक स्वरूप एवं प्रसाद की महिमा का वर्णन और पच्चीसवें से अन्त तक फलश्रुति वर्णित है । सर्वप्रथम पहले हम श्रीसूक्त को ले रहे हैं ।

।। श्रीसूक्तं ।।

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।

चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।। 1 ।।

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।

यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।। 2 ।।

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनाद प्रबोधिनीम् ।

श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।। 3 ।।

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।

पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ।। 4 ।।

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।

तां पद्मनेमिं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि ।। 5 ।।

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।

तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।। 6 ।।

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।

प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ।। 7 ।।

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।

अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।। 8 ।।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।। 9 ।।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।

पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।। 10 ।।

कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभव कर्दम ।

श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ।। 11 ।।

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।

नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।। 12 ।।

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीं ।

चंद्रां हिरामयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।। 13 ।।

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीं ।

चंद्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।। 14 ।।

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीं ।

यस्यां हिरण्य प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहं ।। 15 ।।

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहं ।

श्रियः पंचदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ।। 16 ।।

1- ऋग्वेद-संहिता - दशम मण्डलस्य परिशिष्ट खैलिकानि सूक्तानि ।।

पृष्ठ 523-528

2- वेदार्थ पारिजातः - श्रीसूक्त

3- शाक्त प्रमोदः - श्रीसूक्त

4- वैदिक खिल सूक्तः एक अध्ययन- पृ0 सं0 231-234

पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षि पद्मसम्भवे ।

तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यलभाम्यहं ।। 17 ।।

अश्वदायी गोदायी धनदायी महाधने ।

धन मे "जुषता" देवि सर्वकामांश्च देहि मे ।। 18 ।।

पुत्रपौत्रधनधान्यं हस्त्यश्वादिगवे रथ ।

प्रजानां भवसी माता आयुष्मंतं करोतु मे ।। 19 ।।

धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।

धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमश्नुते ।। 20 ।।

वैनतेय सोम पिब सोम पिबतु वृत्रहा ।

सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ।। 21 ।।

न क्रोधो न च मात्सर्य न लोभो नाशुभा मतिः ।

भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ।। 22 ।।

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरा शुकगन्धमाल्यशोभे ।

भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यं ।। 23 ।।

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियां ।

विष्णो प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ।। 24 ।।

महालक्ष्मी च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि ।

तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात् ।। 25 ।।

पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।

विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सं निधत्स्व ।। 26 ।।

आनन्दः कर्दमश्रीतश्चिक्लीत इव विश्रुतः ।

ऋषयः श्रियपुत्राश्च श्रीदेवाः श्रिया ।। 27 ।।

श्री वर्चस्वमायुष्मारोग्यमाविधात् पवमानं महीयते ।

धान्यं धन पशु बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ।।28।।

ऋणरोगादि दारिद्र्यं पापक्षुदपमृत्यवः ।

भयः शोकमनस्तापा नश्यतु मम सर्वदा ।। 29 ।।

हिरण्यवर्णां ------- ------------------------------आवह ।।।

"हिरण्यवर्णाम्" इस पन्द्रह मन्त्रों वाले श्रीसूक्त के आनन्द, कर्दम, चिक्लीत और इन्दरासुत ऋषि है इस सूक्त की पहली तीन ऋचायें अनुष्टुपछन्द में, चौथा बृहती, पांचवी और छठी त्रिष्टुप-इससे आगे की आठ ऋचायें अनुष्टुप् छन्द में तथा पन्द्रहवा प्रस्तार पंक्ति छन्द में निबद्ध है । इस तरह इस सूक्त के मंत्र नाना छन्दों वाले हैं । इसके देवता अग्नि है । बीज, शक्ति, और कालकसम्बन्धी मत- मतान्तरो का उल्लेख मूल में उल्लिखित है । इस सूक्त का विनियोग लक्ष्मी प्रसन्नता के लिए किये जाने वाले जप या होम में किया जाता है ।

श्रुति में बताया गया है कि अग्नि से ऋग्वेद की उत्पत्ति होता है । तदनुसार ही प्रस्तुत मंत्र में अग्नि को "जातवेदा" शब्द से संबोधित किया गया है। शानकी भी उत्पत्ति अग्नि के प्रसाद से होती है । यह अग्नि उत्पन्न हुए सभी भुवनों और उनमें विद्यमान ऐश्वर्यों को जानता है । इस मंत्र में उसी अग्नि से प्रार्थना की गई है कि हे अग्नि देवता, आप सुवर्ण सदृश वर्ण अथवा कान्ति वाली सुवर्ण के समान पीले चमकीले स्वरूप वाली, यहाँ लक्ष्मी के निर्मल शरीर की चर्चा यह दिखाने के लिए की गई है कि लक्ष्मी का विग्रह सदा समस्त दोषों से रहित होता है । लक्ष्मी का स्वरूप और यह लक्ष्मी शब्द भी अत्यन्त स्पृहणीय है । यह सबको सहारा देती है । हरित वर्ण वाली, यद्यपि श्री (लक्ष्मी) गौर वर्ण की है तब भी श्यामल शरीर हरि (विष्णु) के वर्ण के साथ उसके मिलने से श्री हरि हरितवर्ण के हो जाते हैं, और श्री हरि के हरित वर्ण में प्रतिफलित श्री भी हरित वर्ण की हो जाती है । अथवा यह लक्ष्मी हरिणी का रूप धारण कर लेता है अथवा यह सुवर्ण के समान उज्ज्वल सौन्दर्य और लावण्य से विभूषित है अथवा हरिणी (मृगी के समान विशाल

लोचनों वाली है नानार्थरत्नमाला में हरिणा शब्द के ये सब अर्थ आये हैं । अथवा यह लक्ष्मी हरिणी के समान अत्यन्त चंचल स्वभाव की है । सुवर्ण (सोना) और रजत (चांदी) के पुष्पों की इसकी माला है (अथवा यह सोने चांदी के गहने पहने हुई है । लक्ष्मी ने हरिणी का स्वरूप धारण किया था, इसकी कथा विष्णुपुराण में भी वर्णित है । यह हरि को चेतना प्रदान करने वाली है और हरि के आश्रय में आने वालों को पुरुषकार (उद्यम) में प्रवृत्त करती है, इसलिए भी इसको हरिणी कहते हैं । यह श्री चन्द्रमा के समान प्रकाश वाली है अथवा चन्द्रमा के रूप में विद्यमान है, चन्द्रमा के समान षोडशकलाओं से परिपूर्ण है । चन्द्रमा की पन्द्रह कलाएं घटती बढ़ती रहती है, किन्तु उसकी षोडशीरूपा जैसी निर्विकार कूटस्थ नित्य है, उसी तरह से श्री की भी पन्द्रह कलाओं के अनन्तानन्त प्रपंच की सृष्टि होती है किन्तु अधिष्ठानभूत षोडशी कथा निर्विकार और क्षयातिशय से रहित होती है । सातोपनिषद में इसको ब्रह्म सत्ता का ही सामान्य स्वरूप बताया गया है । अथवा यह लक्ष्मी चन्द्रमा के समान आह्लाद को देने वाली है हिरण्मयी शब्द का अर्थ है परमज्योति ब्रह्मस्वरूप भगवद्गीता में यह ब्रह्म चन्द्र, सूर्य प्रभृति ज्योतियों का भी प्रकाशक कहा गया है और श्रुति कहती है कि इस ब्रह्म के प्रकाश से ही अन्य सभी ज्योतियां प्रकाशित होती हैं अथवा इस लक्ष्मी का विग्रह ज्योतिर्मय है इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यह लक्ष्मी निर्गुण निराकार स्वरूप, सगुण निराकार ब्रह्मस्वरूप और सगुण साकार स्वरूप वाली भी है ऐसी सुवर्ण प्रचुर आभूषणों को इस अधिष्ठात्री देवी की हे अग्नि देवता, आप मेरे पास ले आइये । अग्नि सभी देवताओं को यज्ञ में बुला के ले आने वाला देवता है । अतः उनको भी सूक्त के इस

प्रथम मंत्र में प्रार्थना की गई है कि आप मेरे पास उस श्री को ले आइये जिससे कि मैं धन-धान्य से सम्पन्न हो जाऊँ । अथवा जिनसे सभी वेदों की उत्पत्ति हुई है, वे परमेश्वर यहाँ "जातवेदा" शब्द से सम्बोधित हुए हैं । परमेश्वर विष्णुनारायण सभी जीवों के अन्तर्यामी हैं । लक्ष्मी उन्हीं का स्वरूप है । विष्णु की प्राणेश्वरी उनके हृदय की स्वामिनी श्री को बुला ले आना उन्हीं के वश की बात है । अथवा हिरण्य प्रभृति सकल धनधान्य से परिपूर्ण, हिरण्य के समान स्पृहणीय सभी कल्याण गुणगणों से परिपूर्ण लक्ष्मी भगवान् और चेतन भक्तों को सभी प्रकार की सम्पत्ति से भर देने वाली है अथवा इस लक्ष्मी में उत्तम स्त्रियों के सभी सामुद्रिक शास्त्र के वर्णित लक्षण विद्यमान है । यह सर्वलक्षणसम्पन्न, समस्त कल्याण गुण सम्पन्न, धन-धान्य से परिपूर्ण शरीर वाली लक्ष्मी हमारे ऊपर कृपा करें । इस मंत्र में अग्नि देवता से यही प्रार्थना की गई है ।

हे अग्नि देवता आप कभी न जाने वाली सुस्थिर लक्ष्मी को मेरे लिए बुलाओ, जिसके आने पर कि मैं सुवर्ण, मणि रत्न, गाय, घोड़ा, हाथी आदि धन-सम्पत्ति को तथा पुत्र, कलत्र (स्त्री) मित्र, दास, दासी, प्रभृति जनसम्पत्ति को प्राप्त कर सकूँ ।

अथवा हे जातवेदो अग्ने, आप ऋग्वेद प्रभृति चारों वेदों के कारणभूत परमेश्वर है आप अपने पास ही सदा रहने वाली सीता, राधा, श्रीलक्ष्मी, आदि रूपों में विराजमान देवी की स्थापना मेरे हृदय में सुस्थिर कर दीजिये, जिससे कि मैं उनकी उपासना कर सकूँ । अथवा मातृवात्सल्य के कारण अनेक दोषों के रहते हुए भी यह माता जीवों को नहीं छोड़ती और वह भगवान से भी कभी अलग नहीं होती ।

उस माँ शक्ति को आप मेरे हृदय में विराजमान कर दीजियेओर उसी के साथ आप भी विराजमान होइये। उस माता के हृदय में निवास करने पर मैं ज्योर्तिमय ब्रह्मात्म विज्ञान, कामदुधा भक्ति, अभीष्ट भक्ति, देव मनुष्य प्रभृति की अनुकूलता ओर आपके गुणों को स्मरण करने की सामर्थ्य मैं प्राप्त कर सकूं। उस भगवती की कृपादृष्टि से ही सभी अभीष्ट पदार्थ सुलभ हो सकते हैं।

जिसके आगे-आगे घोडे चलते हैं, रथ जिसके जिसके मध्य में है, अर्थात् जिसकी सेना के मध्य भाग में रथ चल रहे हैं। अथवा जिसके परकोटे के पहले आंगन में घोड़े और मध्य के आंगन में रथ विराजमान है तृतीय प्राकारस्थ आंगन में और हाथियों की चिंघाड़ में वह लक्ष्मी जागती है अर्थात् उस लक्ष्मी के निवास स्थान के पहले परकोटे से घिरी जगह में घोडे दूसरे परकोटे से घिरी जगह से रथ और तीसरे परकोटे से घिरी जगह में हाथी बांधे जाते हैं। हाथी भगवती के शयन स्थान के पास में ही रहते हैं, अतः उनके चिंघाड़ने से प्रातः काल भगवती की निद्रा टूटती है। इसके भगवती के निरतिशय ऐश्वर्य का बोध होता है अथवा स्वायम्भु आगम के वचन के अनुसार यह भगवती अपने आसन पद्मदल पर स्थित हाथियों के नाद से प्रतिदिन जागती है। यह भगवती रथों के समूह बीच में निवास करती है। अथवा मदमाते हाथियों के तेज नाद से यह अपने आगे की सूचना देती है, अथवा हाथी के ऊपर विराजमान दुन्दुभि के अथवा उसके गले में लटके घण्टा के नाद से यह भगवती निद्रा त्याग करती है। भगवती लक्ष्मी भगवान् विष्णु का सहारा लेने से श्री कहलाती है इनका अपना अनन्त ऐश्वर्य है, तो भी ये भगवान् का आश्रय जीवों के कल्याण के लिये लेती है। यह देवी लक्ष्मी भगवान के साथ क्रीड़ा करती है।

यह परवशता उन्होंने इसलिए स्वीकार की है कि इस तरह से भगवान् को प्रसन्नकर वे जीवों को सब प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न कर सके । अथवा लक्ष्मी देवी इसलिए है कि वह नित्य स्वप्रकाश ब्रह्मात्म संविद् स्वरूप है अथवा यह अविद्या और उसके कार्य प्रपंच को ब्रह्मविद्या के सहारे जीत लेने का कारण देवी कहलाती है अथवा यह देवी इसलिए है कि यह महिष शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, मधुकैटभ, प्रभृति असुरों को नष्ट कर देती है । अनन्तब्रह्माण्ड की सृष्टि, संहार लीला में यह सदा लगी रहती है, यह उनका खेल है, इसलिए भी यह देवी कहलाती है अभावग्रस्त, दुःखी प्राणी इनका सहारा लेते हैं, इनकी शरण में आते हैं, इसलिए भी इनको श्री कहा जाता है । उस ऐश्वर्यशालिनी लक्ष्मी को मैं अपने समीप बुला रहा हूँ । यह श्री देवी यहाँ आकर मुझे धन-धान्य, ऐश्वर्य से सम्पन्न करे जिससे कि मैं प्रसन्न सुखी हो सकूँ ।

इस मंत्र का आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार से होगा अश्वः आदि के साथ निवास करने वाला वह लक्ष्मी हीसीता, राधा, रुक्मिणी आदि के रूप में पूजी जाती है यह अनन्त ब्रह्माण्ड की जननी है, परम ऐश्वर्यशालिनी है । हाथी, घोड़ा, रथ आदि ऐश्वर्य को देने वाली यह है श्री राघवेन्द्र राम की प्राणेश्वरी यही है । श्रीराम के सारे ऐश्वर्य की यही स्वामिनी है यह उनकी पट्टमहिषी है । अतः यह उनके उक्त सारे ऐश्वर्य के बीच में रहे और हाथी के नाद के साथ जगे, यह स्वाभाविक है । जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय की लीला करने वाली, इनके साथ खेलने वाली, भक्तों की अविद्या को जीतने वाली, स्वप्रकाश परमात्मा के स्वरूप में विद्यमान यह लक्ष्मी देवी पद से सम्बोधन योग्य है । उस देवी लक्ष्मी को मैं अपने समीप बुलाता हूँ। यह श्रीहरि की सेवा में सदा लगी रहती है । सर्वथा निरपेक्ष भाव से यह हरि का भजन करती है । अतः इसको श्री या भक्ति के नाम से जाना जाता है । जैसे

निर्मल स्वच्छ बहते हुए गंगा जल का अविच्छिन्न प्रवाह समुद्र की तरफ ही सदा दौड़ता है । उसी तरह से ह्लादिनी शक्ति से संचालित, भगवान् के गुणों के श्रवण से द्रवीभूत निर्मल मन की गति भगवान् की ओर ही सदा प्रवाहित होने लगती है । इसी स्थिति को भक्ति के नाम से जाना जाता है । राधा के रूप में आराधन योग्य भी यह लक्ष्मी ही है । अन्य सब प्राणी भी इसी की सेवा करते हैं । ब्रह्मा प्रभृति देवतागण भी जिसकी कृपादृष्टि की प्राप्ति के लिए अनन्तकाल तक तपस्या करते रहते हैं, उस लक्ष्मी की साधारण जन उपासना करें, यह तो कैमुतिक न्याय से सिद्ध है । भागवत में भी यह बात प्रतिपादित है ।

सौन्दर्य माधुर्य, लावण्य सौम्य सौगन्ध्य, सौकुमार्य आदि गुणों की अधिष्ठात्री महाशक्तियाँ इन्हीं लोकोत्तर गुणों का विग्रह धारण करके अवतीर्ण होती है । ये सब महाशक्तियाँ लक्ष्मी की दासियाँ है और उन्हीं के आश्रय में रहती हैं । म्रदिमा (मृदुता) की अधिष्ठात्री महाशक्ति के चरणकमल की सुकुमारता को देखकर कमल भी लज्जित हो जाते हैं, अरविन्द का पराग भी उसके चरण का स्पर्श करने में संकोच का अनुभव करती है, कमल के कोमल अङ्कुरों की मृदुता भी वहाँ कर्कश प्रतीत होती है, उस लक्ष्मी के करकमलों का सर्वातिशायी कोमल अर्थ लोकोत्तर है वह मृदुता की अधिष्ठात्री महाशक्ति भी उस लक्ष्मी के चरण कमलों की सेवा करते समय अपने करकमलों में कठोरता का अनुभव करती है और उनसे लक्ष्मी के चरणकमलों का स्पर्श करने में संकोच करते हुए केवल पादपीठ की ही सेवा करती है ।।

भागवत में बताया गया है कि जिसकी भगवान् में भक्ति है, उसके पास अपने सारे गुणों के साथ देवगण निवास करते हैं हरि से जिसकी भक्ति नहीं है, उसमें

उत्कृष्ट गुणों का निवास कैसे हो सकता है । हरि भक्तों की सभी अभिलाषाओं को परम वात्सल्य के साथ पूरा करने वाली यह लक्ष्मी ही है । भगवान् से भी यह अधिक स्नेह करने वाली है अपनी अकारण करुणा के कारण यह लक्ष्मी "मेरी शरण में आओ" इस तरह की उक्तियों पर भी बिना विचार किये सर्वत्र रक्षक रूप में उपस्थित हो जाती है । और उनको बालक के समान अपनी गोद में बैठाकर भयमुक्त कर देती है अथवा यह श्री अपने भक्तों के समस्त दोषों को नष्ट कर देती है । अथवा इस लक्ष्मी के पुरुषोत्तम भगवान प्रियतम है, फणपति [नागराज] शेषशय्या है, वेदात्मा विहगेश्वर गरुण वाहन है, जगन्मोहिनी माया यवनिका है, अपनी पत्नियों के साथ ब्रह्मा ईश्वर [शिव] प्रभृति इनकी आराधना करते हैं । इस श्री के लोकोत्तर नाम और महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? चतुःश्लोकी में श्री के उक्त स्वरूप का वर्णन किया गया है, यह लक्ष्मी मेरे जैसे शरणागत को सारी अयोग्यताओं के रहते हुए भी अपनी अकारण करुणा की लीला के कारण ही सर्वैश्वर्य सम्पन्न बना दे ।

अथवा विष्णुरूप हरि के द्वारा लक्ष्मी के रूप में, भगवान राम के द्वारा सीता के रूप में जो स्वीकार की जाती है, उसको श्री कहते हैं । जिसके लिए समुद्र मथा गया, जिसके लिए समुद्र बाँधा गया, इसको भी श्री कहते है । सारे जगत् को यह श्री अपने गुणों से बढ़ाने वाली है किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि श्री अन्य सब प्राणी आपकी ही सहारा लेते हैं और आप अपने प्रियतम श्री विष्णु का सहारा लेती है । आप अपने शरण में आये प्राणियों की बात सुनती है और उनकी बात को अपने प्रियतम को भी सुनाती है । हे जननि आप शरणागत प्राणियों के सभी दोषों को नष्ट कर देती है और इस सारी पृथ्वी को गुणों से भर देती है । इसलिए विद्वद्गण आपको श्री के नाम से जानते हैं ।

हे श्री, आप ब्रह्मात्मक सुखस्वरूप हे अथवा आप मन और वाणी के अगोचर स्वरूप वाली है । "को ह वै प्रजापतिः"। इत्यादि श्रुतियों द्वारा यह अर्थ प्रतिपादित है जैसे भूताकाश का वाचक आकाश शब्द श्रुतियों में ब्रह्म के लक्षण से लक्षित होने के कारण ब्रह्म का वाचक हो जाता है, उसी तरह से ब्रह्म के रूप से लक्षित होने से प्रस्तुत स्थल में श्री को भी ब्रह्मरूप ही माना गया है । जैसे विष्णु पद से निर्गुण निराकार सगुण निराकार और सगुण साकार यह त्रिविध ब्रह्म प्रतिपादित है,उसी तरह से श्रीपद से भी वही त्रिविध ब्रह्म बोधित होता है देवी, भागवत में देवी का यह स्वरूप वर्णित है यह लक्ष्मी अनन्त ब्रह्माण्ड की जननी होने से सगुण निराकार ब्रह्म-स्वरूपा, अनन्त प्रपंच की अधिष्ठान स्वरूपा उनको सत्ता में लाने वाली तथा स्फूर्ति देने वाली, सबका प्रकाश करने वाली समस्त विशेषताओं से अतीत, वाणी और मन की भी अगोचर होने से निगुण निराकार ब्रह्मस्वरूपा तथा श्रुतिरूपी सामन्तिनी {सौभाग्यवती} जिसकी चरण की धूलि को सिन्दूर की जगह लगाती है, वह लक्ष्मी सीता, राधा आदि के रूप में सगुण साकार ब्रह्मस्वरूप में अवतरित होती है । ब्रह्म-स्वरूपा यह लक्ष्मी अनन्तमहिमा और वैभव को धारण करने वाली है । जैसे श्रीहरि अपनी अनन्त महिमा के कारण इयत्ता से परिमित नहीं हो सकते, उसी तरह से लक्ष्मी को भी अनन्त महिमा इयत्ता से परिच्छिन्न नहीं की जा सकती । अतः श्लोकों में भी इसी बात का वर्णन किया गया । अतः उक्त और वक्ष्यमाण सभी गुणों से सम्पन्न लक्ष्मी को मैं बुलाता हूँ ।

यह लक्ष्मी कैसी है ? मन्दमुस्कान से सुशोभित है अथवा अतिशय विकास से सुशोभित है अपराधी जनों को भी बिना शंका के अपना सहारा देने के लिए

नित्य मन्दरस हास के साथ अपना अनुग्रह प्रगट करता रहता है अथवा इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि मैं उस लक्ष्मी के प्रति लाकास हूँ, उसका दर्शन करने के लिए लालायित हूँ सब जगह से निराश होने के बाद भी उस लक्ष्मी के गुणों को सुनकर उसके प्रति आशावान हूँ, क्योंकि वह लक्ष्मी आशा रूपी कल्पलता की जननी है। यह लक्ष्मी सुवर्ण के प्राकारवाली है, अथवा इसका गृह अथवा वर्ण सुवर्ण का सा है। इसका प्रासाद सुवर्ण का है अथवा तपे हुए सोने के समान देदीप्यमान इसका वर्ण है अथवा सुवर्ण ही इस लक्ष्मी की आकृति है इस प्रकार अनन्त वैभव से सम्पन्न होते हुए भी यह लक्ष्मी करुणा से आर्द्र है अथवा यह रुद्र स्वरूप वाले आर्द्रा नक्षत्र में प्रसन्न होती है। अथवा भक्तों का कष्ट देखकर यह दया से भर जाती है। स्वयं प्रकाशमान यह लक्ष्मी सारे विश्व को भी अपने प्रकाश से आलोकित करती है। क्योंकि चन्द्र, सूर्य प्रभृति ज्योतियों को भी प्रकाशित करने वाली है, यह लक्ष्मी नित्यतृप्त है, स्व-स्वरूपभूत परमानन्द सुधासिन्धु से परिपूर्ण है, इसकी समस्त कामनाएं तृप्त हैं और यह दूसरों की कामनाओं को भी पूरा करती है, उनको भी उनके वास्तविक स्वरूप का बोध करा देती है, जिसमें कि वे भी सब प्रकार से निःस्पृह हो जाते हैं।

अथवा यह लक्ष्मी अपने द्वारा किये गये भगवान् के स्वरूप, गुण और विभूति के अनुभव से अथवा उसके आलिंगन से उत्पन्न आनन्द से परितृप्त है। वह अपने भक्तों को भी इन्हीं अनुभवों से परिपूर्ण कर तृप्त कर देती है। अथवा यह लक्ष्मी भगवद्गीता में प्रतिपादित आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी इन चार प्रकार के अधिकारियों को उनका मनोरथ पूराकर तृप्त करने वाली है। यह अपने सौन्दर्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य प्रभृति गुणों के अनुरूप सुन्दर, सुगन्धयुक्त, सुकुमार कमल पर आसीन है। यह पद्मवर्णा है, वाल्मीकि रामायण के अनुसार सर्वलक्षण सम्पन्न उत्तम नारी है।

इसके हाथ पैर, लोचनप्रान्त अरुण वर्ण के हैं, अथवा यह पद्म के समान वर्ण और विग्रह वाली है इसका सब कोई सहारा लेते हैं। यह अपने भक्तों और अपने प्रभु को अपने गुणों से चन्द्रमा के समान आह्लादित करता है, यह प्रभासमात्र है, भगवान् के आनन्द से जनित हर्ष से इसकी कान्ति बढ़ गई है। पद्म को ही सब कुछ मानने वालों की सारी अभिलाषाओं को पूरा कर यह प्रकाशमान है, जैसा कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित है-"वह राम लंका के राज्य पर राक्षसेन्द्र विभीषण को अभिषिक्त कर कृतकृत्य हो गये और सब प्रकार की चिन्ता से मुक्त होकर प्रमुदित हो उठे। यह लक्ष्मी भगवान् नारायण के प्रेम से सम्पन्न है। अथवा ब्रह्मा प्रभृति देवगण अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए इसकी सेवा करते हैं। यह सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी परमात्मा की प्रेम से सेवा करती है। अथवा भगवान् श्रीराम अथवा श्रीकृष्ण इसकी सेवा करते हैं। यह उदार है इच्छा से अधिक देने के कारण यह परम उदार है। इसका वैभव अनन्त है, सभी वेदान्त इसी का प्रतिपादन करते हैं।

अथवा यह लक्ष्मी कमल के वन में अथवा भक्तों के हृदय में निवास करने वाली है कमल से भी अधिक कोमल है अथवा कमल की पराग के समान वर्णवाला है। इस प्रसिद्ध सर्वाश्रयणीय लक्ष्मी को मैं अपने हृदय में बुला रहा हूँ। अथवा यह सुख स्वरूप है। भगवान् को भी सुख देने वाली है जैसाकि कहा गया है- "भगवान् के देवता का रूप धारण करने पर यह देवी और मनुष्य रूप धारण करने पर यह मानुषी बन जाती है। राघव का अवतार लेने पर सीता और श्रीकृष्ण का जन्म लेने पर यह रुक्मिणी बनी थी। इसी तरह से यह लक्ष्मी अन्य अवतारों में भी सदा उनके साथ रही है"। अपनी इच्छा से धारण किये गये अनेक उज्ज्वल भगवान् को अभिप्रेत विग्रह को

यह धारण करने वाली है । सुवर्ण के प्राकार (परकोटा) में परिवृत्त आनन्दमय महामणि में मण्डप में यह निवास करने वाली है । अनुकूल विषय में इसकी दृष्टि दया से भरी रहती है । प्रतिकूल विषय में इसकी दृष्टि उसको भस्म कर देने वाली रहती है । किसी ने कहा भी है - हे देवि, अनुकूल मनुष्यों पर आपकी दृष्टि दया से भरी रहती है जो आपसे द्वेष करते हैं, उनको आपकी वही दृष्टि उद्विग्न कर देती है ।

यह लक्ष्मी चन्द्रमा के समान प्रकाशमान, चन्द्रमा के समान मनोरम अथवा चन्द्रमा के समान आह्लाददायिनी प्रकृष्ट तेजोमयी, यश से प्रकाशमान, इन्द्र प्रभृति देवताओं के द्वारा प्रीतिपूर्वक सेवित अथवा उन देवताओं पर प्रसन्न, अतिशय उदार अथवा प्रगल्भचित्त वाली, पद्मलतारूप, पद्म-सदृश आकार वाली, पद्म की माला वाली अथवा पद्मिनी नारी के लक्षणों से युक्त, कामकला स्वरूपिणी अथवा अनुस्वार सहित चतुर्थ स्वर वाली है । इसका मुख प्रकाशबिन्दु से, स्तन प्रकाश और विमर्शबिन्दुओं से, और उनके सामरस्य से इसकी योनि बना है, अथवा ब्रह्म-चैतन्य से मुख, जीव और ईश्वर, तत् और त्वम् पदार्थों से स्तन तथा इनके सामरस्य से योनि बनी है । कामकला का यही स्वरूप तन्त्रशास्त्र में ध्येय के रूप में वर्णित है । अथवा अकार का अर्थ है विष्णु, उसकी पत्नी लक्ष्मी ई के नाम से बोधित होती है। ईकार से अभिहित होती है । उस श्री को मैं इस लोक में शरण में जाना है और यह सबके सुलभ भी है, इसीलिए मैं उसकी शरण में हूँ । वह सर्वोत्कृष्ट है, उसका हृदय दया से भरा है, यह परम सुलभ है, अतः मैंने आपकी शरण ली है । हे लक्ष्मी, मेरी दरिद्रता को आप दूर करो, इसलिए मैं आपकी सेवा करता हूँ मुझे शरणागत को आप अपनी शरण में लो । रामायण में कहा गया है -

"जनकपुत्री माता प्रणाम करने मात्र से प्रसन्न हो जाने वाली है । ए राक्षसियों, आने वाले महान् भय से हमारी रक्षा करने में यही समर्थ हो सकती है ।।

हे आदित्य के समान वर्णवाली, सूर्य के समान देदीप्यमान स्वरूप वाली, अथवा सूर्य के समान प्रकाशान्तर निरपेक्ष स्वयं प्रकाश स्वरूपवाली हे लक्ष्मी । सूर्य को सजातीय प्रकाश की अपेक्षा नहीं रहती तो भी चक्षु, मन, आत्मा प्रभृति की सहायता से ही उसका प्रकाश होता है, किन्तु प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप से अभिन्न पर-ब्रह्मस्वरूपिणी श्री सजातीय विजातीय सर्वविध-प्रकाश के बिना अपेक्षा किये ही स्वयं प्रकाश स्वरूपिणी है, अतः लक्ष्मी में विद्यमान प्रकाश निरुपाधिक है । हे श्री, तुम्हारे द्वारा प्रवर्तित नियम के कारण ही वनस्पति में बिना पुष्प के ही फल लग जाते हैं । ऐसी वनस्पतियों में श्रेष्ठ बिल्व फल आप से ही प्रादुर्भूत हुआ है । वामन पुराण में बताया गया है कि लक्ष्मी के हाथ से बिल्वफल की उत्पत्ति हुई है। आपके हाथ से क्षुधा और पिपासा रूपी मलिनता से भरी हुई, भूख और प्यास जीव के धर्म है पर-ब्रह्म इन मलिनताओं से अतीत है। इसलिए यह सारा ऐश्वर्य मल अविद्यामूलक है । इस तरह की क्षुधा और पिपासा रूपी मलों से भरी हुई ज्येष्ठा, अर्थात् लक्ष्मी से पहले उत्पन्न हुई अलक्ष्मी का, अर्थात् दरिद्रता का मैं नाशकर देना चाहता हूँ । जैसे ज्ञान, अज्ञान पूर्वक है, उसी तरह से लक्ष्मी भी दरिद्रता के साथ ही रहती है । देवों की अपेक्षा असुर ज्येष्ठ और बलवान होते हैं, उनका आधिक्य भी रहता है, क्योंकि अनादि काल से संसार में, उनकी जड़े गहरी जमी हुई हैं । जैसे चावल आदि को भूनने वाली भाड़ में चावल, यव, गोधूम आदि मे भी अपने पूर्व रूप में नहीं रह पाते, तब उनसे अंकुर आदि की उत्पत्ति होना तो असम्भव ही है।

उसी तरह से अविद्या, भूख, प्यास, काम, क्रोध रूपी भाठ वाले अन्तः करण में और इस संसार में ज्ञान, भक्ति, शान्ति, सन्तोष आदि गुणों की स्थिति भी अत्यन्त दुर्लभ है । इस स्थिति में भी अनादि काल से पहाड़ की गुफा में विद्यमान अन्धकार प्रदीप की प्रथम लौ के देखते ही जैसे भागा जाता है, प्रकाश के साथ वह संघर्ष नहीं कर पाता, उस तरह से अनादि अविद्या के कारण बढ़ा हुआ काम, क्रोध, अविद्या आदि का आवेग भक्ति, विद्या, शान्ति आदि के प्रादुर्भाव के साथ ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि बुद्धि सदा सद्गुणों के साथ ही पक्षपात करती है । बौद्धाचार्य धर्मकीर्ति ने भी अपने ग्रंथ प्रमाण वार्तिक में इस बात को स्वीकार किया है । इसीलिए अन्त में देवपक्ष की विजय और असुरपक्ष की पराजय होती है । इसी न्याय से लक्ष्मी का अनुग्रह होने पर अनादि काल से प्रवृद्ध क्षुत्पिपासामयी ज्येष्ठा अलक्ष्मी का भी नाश हो ही जाता है ।

उत्पन्न होने के बाद इस बिल्व वृक्ष के पके हुए अथवा बिना पके हुए फल आपके अनुग्रह के कारण ही आन्तर इन्द्रिय मन, बुद्धि, अहङ्कार नामक अन्तः करण की और बाह्य दरिद्रता आदि अलक्ष्मी के निवारण में सदा समर्थ रहते हैं अथवा उक्त फलों के द्वारा हवन आदि करने पर अथवा भोजन के रूप में उनका ग्रहण करने पर अन्तःकरण स्थित अज्ञान अथवा शरीर के भीतर विद्यमान रोग आदि अभावों का निवारण हो जाता है । इससे दारिद्र्य भी नष्ट हो जाता है । आपकी कृपा मेरे ऊपर ऐसी हो कि बिल्व के हवन, भक्षण आदि से मेरा अज्ञान और दारिद्र्य नष्ट हो जाय ।

हे श्री महादेव के मित्र कुबेर, कीर्ति का अभिमानिनी देवता दक्षकन्या, जो कि कुबेर के खजाने में निवास करती है, वह सारी सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी

मणिभद्र नामक कोषाध्यक्ष के साथ अथवा चिन्तामणि के साथ मेरे समीप आ जाय। अथवा देवताओं का मित्र कल्पवृक्ष चिन्तामणि प्रभृति रत्नों के साथ मेरे पास आ जाय। अथवा उन देवताओं के मित्र भगवान् नारायण अपना कौस्तुभमणि के साथ, मेरे पास आ जाय। ये सब मेरे पास आकर मैं जिस राष्ट्र में अथवा देश में उत्पन्न हुआ हूँ, वहाँ भी धन-कोष, धन्य-धान्य आदि से मुझे समृद्ध बना दें किन्तु जिस राष्ट्र में मेरा जन्म हो, वहाँ-वहाँ मेरे पास आकर ये मुझे कीर्ति और समृद्धि प्रदान करें अथवा मुझे और मेरे राष्ट्र को भी कीर्ति और समृद्धि प्रदान करें। सर्वेश्वरी, सर्वकारणभूता भगवती लक्ष्मी सबसे अधिक सभी कार्यों को सम्पन्न करने में समर्थ है उसका अनुग्रह होने पर रुद्र अथवा नारायण भी अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य से भक्तों को अनुगृहीत करने आते ही हैं।

हे लक्ष्मी, आप मेरी अभूति (अनैश्वर्य) और असमृद्धि को मेरे घर से निकाल कर दूर भगा दीजिये। आपकी कृपादृष्टि जिस पर पड़ती है, वही ईश्वर अर्थात् समर्थ हो सकता है। जहाँ पर आपकी कृपादृष्टि अधिक रहती है, वह तो परब्रह्म अथवा परमेश्वर ही हो जाता है। जहाँ पर आपकी कृपादृष्टि दो-तीन बार पड़ता है, वह इन्द्र प्रभृति का स्थान ग्रहण करता है। इस विषय का प्रतिपादन गुणरत्न कोशकार ने "अपाङ्गा भूयांसो" इत्यादि श्लोक में किया है। इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि लक्ष्मी, जहाँ आपके बहुतविषयक कृपा कटाक्ष बरसते हैं, वह तो परब्रह्म ही बन जाता है। यह कृपादृष्टि जहाँ दो तीन बार पड़ता है, वह परब्रह्म से नीचे के इन्द्र प्रभृति पदों को प्राप्त कर लेता है। इसलिए उक्त पदों की प्राप्ति के निमित्त के रूप में आपके कृपा कटाक्ष को ही शास्त्र प्रमुख कारण के रूप में

वर्णित करते हैं । इस सम्बन्ध में आप की ही स्तुति में शास्त्र प्रवृत्त है जैसे किसी राजधानी की धन सम्पत्ति का वर्णन करने से उसके परिपालक राजा की ही प्रशंसा होती है । उसी तरह से परब्रह्म-शतमुख (इन्द्र) आदि के वर्णन से भी उस लक्ष्मी के माहात्म्य का ही वर्णन होता है । भगवान् विष्णु का सारा ऐश्वर्य लक्ष्मी के ही अधीन रहे इससे उनमें कोई वैगुण्य नहीं आवेगा । जैसे माणिक्य अपनी कान्ति के कारण बहुमूल्य होता है, उसमें कोई वैगुण्य नहीं मिलता, उसी तरह से कौस्तुभ आदि मणियों की कान्ति भी लक्ष्मी की कान्ति के कारण ही है । अतः स्वयं लक्ष्मी ही निरुपाधिक कान्ति और ऐश्वर्य वाली है, अन्य सारी समृद्धियाँ उस लक्ष्मी के ही अधीन हैं यह लक्ष्मी भगवान् का ही निरुपाधिक स्वरूप है अतः सब कुछ लक्ष्मी के अधीन रहने पर भी भगवान् का सारा वैभव स्वायत्त ही रहता है, पराधीन नहीं । इसी बात को गुणरत्न कोशकार ने स्व "श्रीस्तवं" इस श्लोक में कहा है ।

घ्राणेन्द्रिय से ग्राह्य गुण गन्ध जिसका प्रमापक है अथवा जिसके पुर में यह गृह में प्रवेश के साधन दरवाजे सुगन्ध से सुवासित है जो स्वयं दुराधर्ष है, देव दानव प्रभृति जिसके प्रभाव को दबा नहीं सकते, जो स्वयं धन-धान्यादि से सदा सम्पन्न है । करीष अर्थात् गोमय में जो निवास करने वाली है, अथवा शुष्क गोमय (गोहरी) वाली अर्थात् गाय, घोड़ा आदि पशुधन से जो सम्पन्न है, उन सभी प्राणियों की स्वामिनी सभी आधारों को सत्ता और स्फूर्ति देने वाली शक्ति-स्वरूपिणी भगवती लक्ष्मी को मैं अपने पास बुलाता हूँ ।।9।।

अन्तःकरण की अभिलाषा को संकल्प को अथवा गमन, आगमन प्रभृति चेष्टाओं को वाणी की सत्यता को, गो, महिष आदि को, क्षीर प्रभृति अदनीय चतुर्विध भक्ष्यादि पदार्थों को हम लक्ष्मी की कृपा से सदा प्राप्त कर सकें। हे लक्ष्मी आपके अनुग्रह से ही हमारे मन, वाणी और शरीर की संकल्प चेष्टा लक्षण क्रियाएं शुभ और सफल हों। आपके उपासकों को सम्पत्ति और यश की प्राप्ति सदा होती रहे।

हे लक्ष्मी, आप कर्दम नाम के प्रकृष्ट गुणसम्पन्न अपने पुत्र के कारण पुत्रवती हैं। यास्क के निरुक्त में "जा" का अर्थ पुत्र (अपत्य) किया गया है। हे कर्दम आप जैसे सुपुत्र के कारण लक्ष्मी पुत्रवती हुई थीं। हे पुत्र कर्दम, आप मेरे घर में निवास कीजिये और कमल की माला धारण करने वाली अपनी माता लक्ष्मी को भी आप मेरे घर ले आइये। कर्दम प्रजापति ने अपनी तपस्या से देवहूति को सुख सुविधा के दिव्य विमान का घर बना दिया था और उसमें सारा वैभव एकत्र कर दिया था। इसका कारण यही था कि वे लक्ष्मी के सुयोग्य पुत्र थे। पुत्र के वात्सल्य के कारण लक्ष्मी उनकी इच्छा के अनुसार किसी घर में निवास करे, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

जल की अभिमानिनी देवता "आपः" नाम से अभिहित है। यह जल देवता स्नेहपूर्ण वातावरण की सृष्टि करें, क्योंकि सोमात्मक जल देवता स्नेह में ओत प्रोत है। यह जगत् अग्नीषोमात्मक है, अतः इसमें शोषण और आप्यायन क्रियाएं निरन्तर चलती रहती हैं। अग्नि की प्रधानता में काठिन्य और बलसम्पन्न कार्यों की उत्पत्ति होती है। और सोम की प्रधानता में स्नेह प्रधान कार्यों की। बिना स्नेह के कोई भी वस्तु एक दूसरे से मिल या जुट नहीं सकती। इसके बिना एक परमाणु

दूसरे परमाणु से और एक द्वयणुक दूसरे द्वयणुक से नहीं जुट सकता । स्नेह के कारण ही एक मित्र दूसरे मित्र के साथ और पत्नी पति के साथ स्नेह से रहते हैं । देव, मनुष्य सभी प्राणी स्नेह से आविष्ट होकर सौहार्दपूर्ण वातावरण का सृष्टि करते, यह सोमात्मक जल देवता का ही प्रसाद है ।

हे चिक्लीत नामक लक्ष्मी के पुत्र आप मेरे घर में निवास कीजिये । और क्रीडनशीलादेवी अपनी माता लक्ष्मी को भी आप मेरे ही घर निवास कराइये । वेद और वेदान्त जानने योग्य सच्चिदानन्दात्मक मूलतत्व ही सारे प्रपंच का निमित्त कारण और उपादान कारण है । जैसे बीज में अंकुर को उत्पन्न करने वाली शक्ति रहती है, उसी तरह से ब्रह्म में प्रपंच को उत्पन्न करने वाली शक्ति विद्यमान है । अधिष्ठान के साथ शक्ति अथवा शक्ति के साथ ब्रह्म इन दोनों वाक्यों से एक ही अर्थ का बोध होता है इनमें से अधिष्ठान के साथ शक्ति को विमर्श प्रधान प्रकाश और शक्ति के साथ ब्रह्म को प्रकाशप्रधानविमर्श के नाम से तान्त्रिकगण जानते हैं जैसे ठंडे और गरम तारों के मिलने पर ही बिजली का प्रकाश होता है, उसी तरह से प्रकाश और विमर्श ब्रह्म और उसकी शक्ति से ही अग्नीषोमात्मक जगत् की अभिव्यक्ति होती है । सूर्य और चन्द्र, अग्नि और जल के रूपमें भी ये ही अभिव्यक्त होते हैं । सृष्टि के समय उसकी अभिवृद्धि के लिए स्नेह, प्रीति, सामञ्जस्य आदि की अपेक्षा रहती है । माता का वात्सल्य, पति, पत्नी, मित्र आदि का स्नेह यह सब लक्ष्मी के प्रसाद से ही प्राप्त होता है जैसे अधिष्ठान की सत्ता और स्फूर्ति से ही उसमें अध्यस्त समस्त पदार्थ सत्तावान् और स्फूर्तिमान् दिखाई पड़ते हैं, उसी तरह से साधिष्ठान शक्ति अर्थात् लक्ष्मी से ही स्नेह, वात्सल्य, प्रीति प्रभृति का अन्यत्र संक्रमण

(प्रसार) होता है जैसे अस्ति (विद्यमान है) और भाति (प्रकाशित हो रहा है) ये दो ब्रह्म के ही स्वरूप सर्वत्र अनुभूत होते हैं उसी तरह से इष्ट प्रिय आदि रूपों में भासित हो रही वस्तु भी ब्रह्म का ही स्वरूप है । उक्त ब्रह्म ही सभी प्राणियों का परम प्रेमास्पद है सर्वातिशायिनी प्रेमास्पदता अपनी आत्मा में ही पर्यवसित होती है वृहदारण्यक श्रुति भी कहती है कि अपने लिए ही सब कुछ प्रिय होता है।

यह प्रत्यगात्मा चितिस्वरूपिणी ब्रह्मात्मिका, तत्पदार्थात्मिका लक्ष्मी का ही रूपान्तर है इसीलिए तत्पदार्थबोध्य जीव को यहाँ लक्ष्मी का पुत्र कहा गया है वह परम प्रेमास्पद है उसके ऊपर माता का अत्यन्त स्नेह है अतः उसके प्रेम से चिक्लिन्न (आर्द्र) है अतः उस लक्ष्मी के पुत्र जीव को यहाँ चिक्लीत अथवा कर्दम के नाम से जाना जाता है । इस तरह से चिक्लीत और कर्दम अभिन्न व्यक्ति है । निरतिशय परम प्रेमास्पद होने से ही प्रत्यक् ओ (पराक्) आत्मा का अन्यत्र दिव्य दम्पती के रूप में वर्णन मिलता है जैसे कि कवि कुल गुरु कालिदास ने रघुवंश के प्रथम श्लोक में कहा है - "वाणी (शब्द) और अर्थ के ज्ञान के लिये मैं शब्द और अर्थ के समान सम्पृक्त,जगत के माता-पिता,पार्वती और परमेश्वर (शिव) को प्रणाम करता हूँ । भगवान् शङ्कराचार्य ने प्रत्यक् (जीव) और पराग् (परमेश्वर) आत्मा का जल उसकी तरंग के रूप में वर्णन किया है । तरङ्गे जैसे समुद्र के ऊपर लहराती है, उसी तरह से लक्ष्मी भी विष्णु के वक्षस्थल पर विराजमान रहती है राधा श्रीकृष्ण की गोद में और राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी कामेश्वर के अङ्क में निवास करती है।प्रस्तुत स्थल में ब्रह्म चित्स्वरूपिणी लक्ष्मी के परम प्रेम का आस्पद होने से प्रत्यक् स्वरूप जीवात्मा ही कर्दम अथवा चिक्लीत के नाम से कहा गया है अतिशय पुत्रवात्सल्य के कारण माता अपने प्रिय पुत्र के अधीन होकर पुत्र की इच्छा के अनुसार ही सब कुछ

करती है, उसी तरह से कर्दम अथवा चिक्लीत के प्रसाद से सब ऐश्वर्यों से परिपूर्ण तत्पदार्थात्मिका (ब्रह्मात्मस्वरूपिणी) भगवती लक्ष्मी भी उनकी इच्छानुसार ही जहाँ वे कहते हैं वहाँ निवास करती है । अतः चिक्लीत से यह प्रार्थना करना उचित ही है कि आप माता लक्ष्मी को मेरे कुल में निवास करने के लिए कहिये ।।12।।

क्षीर सागर से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी सदा क्लिन्न रहती है दया से इनका हृदय भरा रहता है, अथवा ये रुद्रदेवता आर्द्रानक्षत्र स्वरूपिणी हैं । इनके हाथ में पुष्कर (पद्म) विराजमान है । अथवा हाथी की सूँड का अग्रभाग अभिषेक के लिए सदा इनके सामने रहते हैं । "अभिधान चिन्तामणि" में पुष्कर शब्द शुण्डाग्र के अर्थ में भी पठित हैं तदनुसार दिग्गजों की सूँड का अग्रभाग सदा लक्ष्मी की सेवामें लगा रहता है, यह अर्थ होगा । अथवा यह लक्ष्मी प्रेमलता रूप है । यह लक्ष्मी चित्तत्व का सार और शक्तिस्वरूपिणी है, अतः यह पुष्पिमती है पुष्टिप्रद, पुष्टिरूप अथवा पुष्टि की अभिमानिनी देवता है । दुर्गासप्तशती में बताया गया है कि यह देवी सभी प्राणियों में पुष्टि के रूपमें रहती है । यह पिङ्गलवर्ण है, तपे हुए सोने के समान इनका वर्ण है । पद्म की माला धारण करने वाली, चन्द्रमा के समान आह्लादित करने वाली अथवा चन्द्रमा के समान मुखवाली, ज्योतिर्मयी सभी ज्योतियों को प्रकाशित करने वाली अथवा ब्रह्मस्वरूपिणी यह लक्ष्मी दिव्य लक्षण वाली विष्णु की पत्नी है । हे जातवेद, वेद के आविर्भावक नारायण आप मेरे लिए उस लक्ष्मी को बुला दीजिये ।

अकारण करुणा से दयार्द्र हृदयवाली, वेत्र दण्ड को हाथ में धारण करने वाली अथवा रत्न आदि से अलंकृत दण्ड को धारण करने वाली अथवा सभी प्राणियों को शिक्षा देने वाली, यष्टि दण्ड को धारण करने वाली, धर्मदण्ड का स्वरूप धारण करने वाली अथवा सज्जनों को सहारा देने वाली, शोभन वर्ण वाली अथवा सुवर्ण के

समान वर्ण वाली अथवा आह्लादनस्वरूपिणी होने के गहनों से सुशोभित, सूर्य के समान प्रकाशमान, अथवा सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाश देने वाली, अथवा सूर्यस्वरूपिणी अथवा सूर्य के समान स्थावर और जंगम जगत् की आत्मभूत अथवा आदि कारणभूत उस ब्रह्म ज्योतिस्वरूपिणी लक्ष्मी को, हे जातवेद अग्ने परमेश्वर मेरे लिए बुला दीजिये ।। 14 ।।

हे जातवेद जात प्रज्ञ, जात {उत्पन्न} और अजात सभी पदार्थों को जानने वाले सभी वेदों के कारणभूत अतएव सर्वज्ञानयुक्त सर्वज्ञ परमेश्वर लोक, वेद और वरिष्ठ ब्रह्मवेत्ताओं की गोष्ठी में सभी जगत के कारण के रूप में अथवा सारे ऐश्वर्य के देने वाली के रूप में जो प्रसिद्ध है, उस अनपायिनी नित्यलक्षण वाली लक्ष्मी को आप मेरे लिए बुला दीजिये अथवा मेरे पास ले आइये । उस लक्ष्मी के प्रसन्न होने पर अथवा पास में बुला लेने पर प्रभूत सुवर्ण गाय, धेनु, दास, दासी, घोड़े और पुरुष अर्थात् पुत्र, मित्र, बान्धव आदि की प्राप्ति होती है ।

जो अधिकारी पुरुष, त्रैवर्णिक उपनीत व्यक्ति लक्ष्मी को चाहता है अथवा परब्रह्म के आकार वाली चित्तवृत्ति को चाहता है वह बाह्य और आभ्यन्तर से पवित्र होकर अर्थात् मिट्टी, जल आदि बाह्य शरीर की शुद्धि और काम क्रोध-अहंकार प्रभृति का त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि करके-अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर ले । तब प्रतिदिन पूर्वोक्त पन्द्रह ऋचाओं से आहवनीय आवसथ्य अथवा यथोक्त संस्कारों संस्कृत, लौकिक अग्नि में हवन करे और सदा उक्त पन्द्रह ऋचाओं वाले श्रीदेवता वाले सूक्त का पाठ करे । हे जातवेद अग्ने, उसको आप पूर्वोक्त तथा आगे कहे गये फल को प्रदान करें । इस प्रकार श्रीसूक्त का पाठ और उसके हवन करने वाला व्यक्ति यदि सकाम है तो अभीष्ट फल की सिद्धि होती है और यदि वह

निष्काम है, तो उसको निरावरण मोक्ष का अथवा लक्ष्मी के अनुग्रह की प्राप्ति होती है ।। 16 ।।

पद्म के समान वर्तुल, सुन्दर और सुगन्धयुक्त मुख वाली हे लक्ष्मि, आप मुझे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को अथवा लोकोत्तर प्रेमतत्त्व को देने वाली है । इससे मुझे सुख और स्थिरता मिलती है । हे पद्म के समान कोमल जंघा वाली हे पद्म के समान नेत्र वाली लक्ष्मि अथवा पद अर्थात् भगवान् नारायण के चरण कमल के सदृश्या शोभा जिनके नेत्रों की है, वह पद्माक्षी लक्ष्मी ﴾पद्माक्षि शब्द की इस मंत्र में दूसरी आवृत्ति आदर प्रदर्शन के लिए है । अथवा अतिविशाल नेत्र वाले होने से यह भगवती लक्ष्मी सबको देखने वाली" अथवा सबको जानने वाली है । अर्थात् सर्वसाक्षी भगवति, पद्मसम्भवे, कमल से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मि । अथवा "हेमकोश" के अनुसार पद्म शब्द यहाँ असंख्यात वस्तु का वाचक है ।आनन शब्द से मुख सहित शिर बोधित होता है तब पद्मानना शब्द का अर्थ होगा असंख्य शिरवाली, अर्थात् सहस्रशीर्षा विराट के समान अनन्त मुखवाली । इसका अभिप्राय यह है कि सभी प्राणियों के शिर आपके ही शिर है उरु शब्द पादवाची भी है, अतः अनन्तपाद अर्थात् चरण वाली भी आप ही है, सहस्रपाद् विराट आपका ही स्वरूप है । पद्म संख्या वाली आँखे आपके है । अतः आप पद्माक्षि अर्थात् सहस्रलोचन वाली है अनन्त लोकों की उत्पत्ति भी आप से ही होती है, अतः आप पद्मसम्भवा है । अथवा पद्मपद सभी निधियों का बोध कराता है आप अनन्त पद्मापद्म प्रभृति निधियों की उत्पत्ति करने वाली है ।"सीतोपनिषद्" प्रभृति ग्रंथों में निधियों का लक्ष्मी की विभूति के रूप में वर्णन है । हे सब निधियों का आदिकारणभूत लक्ष्मी आप मुझे वह

सब कुछ दीजिये, जिससे कि मैं सारी सुख-सुविधाओं के साथ जी सकूं ।। 17 ।।

हे पद्मानने, पदम के समान कोमल सुगन्धमय सुन्दरमुख वाली लक्ष्मि हे पद्मिनि, पदम का आश्रय लेने वाली पदमलता रूप नायिके महालक्ष्मि, पद्मपत्र पर आसन लगाकर बैठने वाली अर्थात् कमलासन पर आरूढ़ लक्ष्मी, पदम के पत्र और पुष्प जिनको अत्यन्त प्रिय है जो पदम पत्र के समान आयतन भौं वाली हैं, कर्णप्रान्त को जिसके नेत्र छूते हैं, जो सारे जगत् को प्रसन्न करने वाली है । तृप्त करने वाली है, सारे जगत् के प्राणियों के जो मनोनुकूल है, सबके मनोरथों को पूरा करने वाली है, ऐसी हे दयामयि लक्ष्मी, आप सभी पापों का नाश कर देने वाले अपने चरण कमलों को मेरे ऊपर रखिये, जिससे कि मैं कृतार्थ हो जाऊं ।। 18 ।।

हे अश्वों को देने वाली, गायों को देने वाली, धन को देने वाली, अथवा धेनु, वाणी और पटुता (निपुणता) प्रभृति गुणों से युक्त इन्द्रियों को देने वाली, गायों को देने वाली, धन को देने वाली, अथवा धेनु वाणी और पटुता (निपुणता) प्रभृति गुणों से युक्त इन्द्रियों को देने वाली, कुबेर के समान सभी प्रकार के ऐश्वर्य को देने वाली है । महाधनवाली अपरिमित उत्कृष्ट बहुमूल्य धन-धान्य सम्पत्ति से परिपूर्ण करने वाली हे लक्ष्मी आप मुझे धनपद वाद्य सुवर्ण, मणि, रत्न, गाय, घोड़ा, हाथी, नौकर-चाकर, राज्य, साम्राज्य आदि समस्त सम्पत्ति मेरे घर में जुटा दीजिये । हे देवि क्रीड़ा और कौतुक के लिए जगत् का निर्माण करने वाली लक्ष्मी मेरे जैसे तुम्हारे उपासक को आप जल्दी ही सब कामनाओं को पूरा कर दीजिये, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चतुर्विध पुरुषार्थ को आप मुझे प्राप्त करा दीजिये ।। 19 ।।

हे लक्ष्मी, आप मुझे पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, हाथी, घोड़ा खच्चर रथ आदि ऐश्वर्य से सम्पन्न कर दीजिये। पुत्र, पितरों को पुनामक नरक से त्राण दिलाता है। दुर्गन्ध घाव और भयानक अन्धकार से भरे दुःखमय स्थान को पुनामक नरक कहा गया है पुत्र के पुत्र को पौत्र कहते हैं। इसमें पुत्री के पुत्र दौहित्र का भी समावेश हो जाता है। सुवर्णादि सम्पत्ति धन कहलाती है। व्रीहि, यव, गोधूम [गेहूँ] प्रभृति को धान्य कहते हैं हाथी अश्व, खच्चर और रथ प्रभृति समृद्धि से समन्वित पुत्रादि को हे लक्ष्मी, आप हमें दीजिये हे लक्ष्मी, आप सारी प्रजा की माता है ई निपात आश्चर्य अर्थ में प्रयुक्त है। बिना किसी साधन सम्पत्ति के अपने भक्तों को आप यह सब कुछ दे देती है, यह आश्चर्य की बात है। यह इसलिए सम्भव है कि आप समस्त शक्तियों से सम्पन्न है अतः आपपुत्र प्रभृति ऊपर वर्णित सारे ऐश्वर्य को मेरे लिये जुटा दीजिये और आपकी स्तुति करने वाले मुझे जैसे प्राणियों को आप प्रशस्त दीर्घ आयु प्रदान कीजिये ।। 20 ।।

अग्निनामक देवता धन का अभिमानी अथवा अधिष्ठाता है। सबको प्राणआयु प्रदान करने वाला वायु देवता भी धन का अधिपति है। इसी तरह से सारे जगत् के नेत्रों को शक्ति प्रदान करने वाला सूर्य, आठ वसु देवता, परम ऐश्वर्यशाली देवराजइन्द्र, महान् महिमाशाली देवों का स्वामी देवगुरु बृहस्पति, सबका वरणीय वरुण और दोनों अश्विनी कुमार ये सब देवता भी हमारे लिये धन प्रदान करने वाले हैं, क्योंकि अग्नि के समान ही ये भी धन के अभिमानी अथवा अधिष्ठाता देवता है। इन तरह से ये सब धन की उत्पत्ति में कारणभूत तथा धन प्रदान करने वाले हैं। अथवा भू प्रभृति सात व्याहृतियों के देवता अग्नि प्रभृति है। अतः इन

देवताओं का रूप में यहाँ सात व्याहृतियाँ ही धन के रूप में विवक्षित है । इसका अभिप्राय यह होगा कि भू प्रभृति सातों लोक धन धान्य आदि से समृद्ध है अथवा व्याहृति के द्वारा हे लक्ष्मी, आप समस्त वेदराशि समस्त लोक स्थावर जंगमात्मक समस्त जगत् के ऐश्वर्य के रूप में विराजमान हैं । इस पृथिवी में ही वज्र {हीरा} इन्द्रनील {नीलम} गारुत्मत {पन्ना}, सुवर्ण, रजत, गोमेद, पोखराज इत्यादि रत्न तथा पेट्रोल कोयला आदि धन सम्पत्ति विद्यमान है, इस बात को आजकल के वैज्ञानिक भी मानते है इसीलिए अर्थ की परिभाषा कौटिल्य ने "मनुष्य द्वारा सेवित भूमि" की है । मनुष्य जिसके द्वारा स्वयं प्रसन्न रहता है और दूसरों को भी प्रसन्न करता है कि व्युत्पत्ति के आधार पर प्रीणन हेतु और प्रीणनकर्त्री लक्ष्मी भी धन पद से अभिहित होती है ।

पूर्वोक्त सभी देवताओं को धन स्वरूप बताया गया है । उसी धन से यज्ञ, व्रत, दान प्रभृति सत्कर्म सम्पन्न होते हैं । यह धन अग्नि के प्रसाद से प्राप्त होता है । अब इस मंत्र में यज्ञ की प्रशंसा करते हुए गरुण से प्रार्थना की जा रही है कि हे वैनतेय हे विनता को आनन्दित करने वाले गरुड़, आप हमारे द्वारा सम्पादित सोमरस का पान कीजिये । आपके साथ वृत्रासुर का वध करने वाले इन्द्र भी सोमपान करें । सोमयोग से संबद्ध सोमयाजी ऋत्विग्गण मुझे भी सोमरस का अपना भाग दें । अथवा पहले मंत्र में देवताओं को धन-स्वरूप बताया गया है धन से ही यज्ञ आदि सम्पन्न होते हैं इस यज्ञ का साधन सोम है यह सोम गरुड़ और इन्द्र की कृपा से मिल सकता है अतः इस मंत्र की इतनी स्तुति की गयी है । अथवा गरुड़ विष्णु के समान लक्ष्मी का भी वाहन है । जैसा कि "कान्तस्ते" इस श्लोक में प्रतिपादित है।

गरुड़ लक्ष्मी का वाहन है और उनका निकटवर्ती है, इसलिए उस पर लक्ष्मी की विशेष कृपा रहती है । इस तरह से गरुड़ को प्रसन्न करना भी लक्ष्मी की प्रसन्नता का एक कारण है । अत्यन्त आर्त भक्त इस तरह की प्रार्थना करता है कि वैनतेय, आप हमारे यज्ञ में सोम पान कीजिये । इन्द्र उपेन्द्र का स्वरूप धारण करने वाले लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के भ्राता है अतः उनसे भी यहाँ सोम पान की प्रार्थना की जाती है । वृत्रहा पद अन्य देवताओं का भी उपलक्षक है सोमी पद का अर्थ सोम याग करने वाले ऋत्विक्गण है । दूसरा सोमी पद सोमयाग, संबन्धी इस अर्थ को अभिव्यक्त करता है । सोमयाग के सम्पादन के लिये संकल्पित-धन गो प्रभृति दशविध द्रव्य में से किसी एक के साथ क्रय-विक्रय रूप सम्बन्ध से सम्पादित सोम का पान यहाँ विवक्षित है । अथवा इसका यह अर्थ कर सकते हैं कि याग के सम्पादक धन से अभिन्न रूप में विद्यमान सोमरस को देवताओं के लिए दिया जाय । अथवा शरीर को क्लेश देकर ही सोमरस निकाला जा सकता है और लक्ष्मी के प्रसाद से ही सोमरस प्राप्त हो सकता है, अतः सोमपद का अर्थ भी आरोप द्वारा धन किया जा सकता है, ऐसा कुछ लोगों का विचार है ।।

जिन्होंने पूर्वजन्म में या इस जन्म में पुण्य कर्म किये हैं, ऐसे भक्तों आस्तिक बुद्धि के साथ, श्रद्धा के साथ श्रीसूक्त का जप करने पर क्रोध नहीं आता, उनके मन में मात्सर्य अर्थात् दूसरे की उन्नति को देखकर उनका मन असहिष्णु नहीं बन पाता । दूसरे की वस्तु को अपनी बना लेने की इच्छा के रूप में प्रकट होने वाला लोभ भी उनके मन को कलुषित नहीं कर पाता तथा उनके मन में अन्य भी किसी प्रकार के अशुभ विचार पैदा नहीं होते । अथवा जन्मान्तर में जिन्होंने धर्म-कर्म किये हैं

उनके मन में इस जन्म में भी उनके जप, पाठ आदि में लवलीन रहने से किसी प्रकार का विकार नहीं आता, जिसकी जानकारी वाणी चक्षु के विकार से मिल सकती हो। ऐसा भक्त सदा निर्विकार भाव से श्रीसूक्त का जप करता रहे, अर्थात् उसके इस कार्य में लक्ष्मी के प्रसाद से कोई विघ्न उपस्थित नहीं होगा ।। 23 ।।

हे कमल में निवास करने वाली, कमल को हाथों में धारण करने वाली लक्ष्मी, आपकी शोभा धवलतर (अत्यन्त सफेद) वस्त्र गन्ध और माला को धारण करने से और भी बढ़ गयी है हे अतिशय सौभाग्यशालिनी भगवती लक्ष्मी, अथवा षड्विध ऐश्वर्य से सम्पन्न लक्ष्मी अथवा उत्पत्ति, प्रलय आदि के ज्ञान से सम्पन्न लक्ष्मी, हे हरिवल्लभे हरि जिसका वल्लभ है अथवा हरि की जो वल्लभा है इन दोनों ही अर्थों को यह संबोधन व्यक्त करता है । हे मनोज्ञे, लोकोत्तर सौन्दर्य के प्रतिक्षण नये-नये से प्रतीत हो रहे अनेक रूपों को आप दिखाकर सब लोगों को विस्मय में डाल देने वाली है । स्तोत्ररत्न में बताया गया है कि वह लक्ष्मी अपनी विश्वरूपता के कारण सदा सबके अनुभव में आती रहती है और सबको अपने नये-नये रूपों से चकित करती रहती है, गुण, रूप और अपने हाव-भाव से सदा सबको भुलावे में डाले रहती है । यह भी सदा केवल आपके ही पास रह सकती है । इस तरह से यह लक्ष्मी सदा तीनों भुवनों के सारे ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी है, सारा ऐश्वर्य इन्हीं के प्रसाद से प्राप्त हो सकता है । उस लक्ष्मी से इस मंत्र में प्रार्थना की गई है कि आप मेरे प्रति अनुकूल होइये । भगवती शब्द में अतिशय अर्थ में मतुप प्रत्यय किया गया है वैयाकरणों का कहना है कि भूम (बहुलता) निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अतिशायित करना, सम्बन्ध और अस्ति की विवक्षा में मतुप् आदि प्रत्ययों का

विधान होना है समग्र, ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान, और वैराग्य इन षड्विध गुणों को शास्त्र में "भग" के नाम से अभिहित किया गया है, उत्पत्ति प्रलय, सभी प्राणियों के आगमन और गमन का स्थान, विद्या और अविद्या इन सबको जानने वाले को भगवान् कहा जाता है ।।

हे लक्ष्मी, आपके प्रसाद से मेरे और जैसे तुम्हारेभक्त के सदा सब देश और काल में ऋण, रोग, दारिद्र्य, पाप क्षुधा {भूख} प्यास और अपमृत्यु ये सब नष्ट हो जाय। सदा दुर्गति का अनुभव करने वाले को दरिद्र कहते हैं। लक्ष्मी से इस मंत्र में प्रार्थना की है कि यह दरिद्रता का भाव मेरा सदा-सदा के लिए नष्ट हो जायँ। अपमृत्यु के अनेक प्रकार होते हैं। जैसे कि बन्धु-बान्धव आदि अथवा दूसरे लोग अपमान कर दे, ऋण, रोग आदि के कारण मरण का ऐसी दुःस्थिति उत्पन्न हो जाय, चाटुकार, तस्कर {चोर} अथवा दुष्टों के द्वारा पराभूत कर दिये जाने पर अथवा सर्वस्व लूट लिये जाने पर, डाकू लोगों के द्वारा बलात् सब धन लूट लिये जाने पर, ग्रह आदि की पीड़ा से पराभूत होने पर अथवा राजा आदि के द्वारा सर्वस्व अपहरण कर लिये जाने पर मर्मान्तिक पीड़ा होती है। इन सबका अपमृत्यु में समावेश किया जाता है। इसी तरह से हे हे लक्ष्मी, भय और शोक से उत्पन्न होने वाले मानसिक ताप {दुःख} भी मेरे सदा सदा के लिए नष्ट हो जाय। राजा प्रभृति के द्वारा दिये जाने वाले दण्ड से भय की उत्पत्ति होती है और प्रिय व्यक्ति या वस्तु के वियोग से शोक उत्पन्न होता है। इनसे उत्पन्न होने वाली चिन्ता को ही मानसिक ताप {दुःख} कही जाता है। यह सब नष्ट हो जाय, ऐसी इस मंत्र से भगवती लक्ष्मी से प्रार्थना की गयी है।

श्री सूक्त का जप करने वाले उपासक को लक्ष्मी ब्रह्मा प्रभृति के अथवा अपने विशिष्ट तेज को आयुष्य और आरोग्य को प्रदान करे । साथ ही उत्तम लोक, पवित्र स्थल अथवा अत्यन्त पवित्रता के साथ प्रशंसा को भी ऐसा व्यक्ति प्राप्त करता है । व्रीहि प्रभृति धान्य, मणि-हिरण्य प्रभृति धन, गाय, घोड़ा आदि पशु और पुत्र, पौत्र, नाती आदि के रूप में वह बहुसंख्यक सन्तति को भी करता है साथ ही यह श्रीसूक्त का मापक पूरे सौ वर्ष की आयु पाता है ।

भक्तों के लिये भगवान् जैसे प्रतिक्षण अनोखे से लगते हैं, उसी तरह से यह भगवती लक्ष्मी भी अपने अनन्त माधुर्य, सौन्दर्य, लावण्य प्रभृति गुणों के कारण नये-नये रूपों में उनके सामने उपस्थित रहती है । यह लक्ष्मी चंचला होते हुए भी कभी भी उनके चरण-कमल को नहीं छोड़ती । भगवान् विश्व शरीर है सारे विश्व के ~~लिए~~ साथ लक्ष्मी का भी शरीर उनका ही है, अतः वे उसको सदा देखते रहते हैं, अपने सहज प्रत्यक्ष से उसका सदा साक्षात्कार करते रहते हैं यह लक्ष्मी सदा उनके गाढ आलिंगन में बंधी रहती है, तो भी गुण रूप और अपने हावभाव से वह भगवान् को भी विस्मय में डाल देती है, इन सब बातों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह लक्ष्मी सदा आपके पास रहे, यह उचित ही है ।

यह लक्ष्मी के साथ विराजमान भगवान विष्णु का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ । यह लक्ष्मी भगवान् विष्णु के देवदेह धारण करने पर देवी और मानव शरीर धारण करने पर मानुषी देह धारण कर लेती है । इस तरह से भगवती लक्ष्मी भगवान् विष्णु के उस देह के अनुरूप देह धारण कर लेती है । देव तिर्यक अथवा मनुष्य योनि में भगवान पुरुष के रूप में और भगवती लक्ष्मी स्त्री के रूप में अवतरित होती है । इनसे बढ़कर

इस विश्व में और कोई नहीं है । इस तरह से भगवान् विष्णु सदा अपने सभी रूपों से समान रूप वाली, शील, वय (अवस्था) और वृत्त में समान, सदा अनुगमन करने वाली लक्ष्मी का अपनी सर्वज्ञता के आधार पर सदा साक्षात्कार करने वाले भी भगवान् विष्णु अत्यन्त उत्कण्ठा के कारण प्रतिक्षण लक्ष्मी को अपूर्व, अनोखे रूप में ही देखते रहते हैं ।

भगवान् को लक्ष्मी अत्यन्त प्रिय है यह जानकर ही भक्तगण लक्ष्मी के अनन्त गुणगणों को सुनाते हैं और कल्पना करते हैं कि लक्ष्मी के गुणों को सुनकर भगवान् को बाहें हर्षातिरेक में फूल उठती है और इस तरह से उनके कपड़े सैकड़ों बार कट जाते हैं लक्ष्मी का सहारा लेने से ही भक्त को अपने स्वरूप का बोध होता है । लक्ष्मी को भी स्वरूप लाभ देने वाले श्रीपति भगवान् नारायण है । हे रंगनाथ, तुम्हारे वक्ष स्थल पर निवास करने वाले, षाड्गुण्य से परिपूर्ण भगवती लक्ष्मी को हम आपसे भी बढ़कर मानते हैं । ऐसा करने से हमारे कानों को तो सुख मिलता है, किन्तु चक्षु विवश हो जाते हैं, निराश हो जाते हैं लक्ष्मी के गुणों को सुनकर भगवान् विष्णु परम सन्तुष्ट हो जाते हैं । इससे अपरिमित कन्चुकों के स्फुटन में समर्थ गात्रपरिपोष की सूचना मिलती है उत्तरनारायण सूक्त के "श्रीश्च ते" मन्त्र में तथा अन्य मंत्रों और श्लोकों में कहा गया है कि लक्ष्मी और श्री आपकी ही पत्नियाँ हैं । वेद, रामायण, पुराण प्रभृति में सर्वत्र भगवान् के ही गुणों का वर्णन है।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रभृति शब्दों में इसी महत्व का वर्णन किया गया है। यह श्रीतत्व, सगुण, निर्गुण ब्रह्मतत्व के रूप में सर्वत्र वर्णित है । रामायण में प्रधानतया सीता चरित ही वर्णित है । पतिव्रता के चरित के अंग के रूप में पति का वर्णन भी आवश्यक है, अतः श्रीराम का चरित अंगभूत है सीता का चरित होने से ही

श्री रामचन्द्र ने उसका वर्णन लव-कुश से सुना, अन्यथा रामचन्द्र जैसे धीरोदात्त नायक को अपने ही चरित के श्रवण में प्रवृत्ति कभी भी नहीं हो सकती ।

लक्ष्मी के कृपा कटाक्ष से मनुष्य ऐश्वर्यशाली बन जाता है और उससे वञ्चित मनुष्य सदा नाना प्रकार की दुर्गति भोगता रहता है, इस बात को गुणरत्नकोशकार ने "एकोमुक्तातपत्र" प्रभृति श्लोक में बहुत ही सुन्दर आलंकारिक भाषा में व्यक्त किया है वे कहते हैं कि कोई व्यक्ति मतवाले हाथी पर बैठकर घूमता है। उसके मस्तक पर मुक्ताजटित छत्र विराजमान रहता है । उसके छत्र में लगी मणियों के मस्तक के मुकुट पर जटित मणि के साथ संघर्ष होने पर उससे मधुर-ध्वनि की सृष्टि होती है । वह अपने चरणों पर नतमस्तक सामान्य भूमिपालों को कुछ नहीं गिनता । यह ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है । इसके विपरीत एक दूसरा व्यक्ति भी है, जिसके पास अपना घर नहीं है । वह अपनी दीन-हीन दशा के कारण सर्वत्र दाँत दिखाता रहता है, घिघियाता रहता है, अपनी दीनता का प्रदर्शन करता रहता है । हे रंगराजप्रणयिनि लक्ष्मी, ये दोनों ही स्थितियां आपके कृपाकटाक्ष के उन्मीलन और निमीलन के कारण होती है । जिस पर आपकी कृपा हो जाती है, वह पहली स्थिति में और जिस पर नहीं होती वह दूसरी स्थिति में रहता है ।

"सीतोपनिषद्" की पद्धति से इच्छा, ज्ञान, क्रियारूप, प्रत्यक्ष तीन शक्तियों के सहारे उस "सिता तत्व" का अनुमान उसी तरह होता है, जैसे कि अङ्कुर से बीज का अनुमान होता है । अनन्त ब्रह्माण्ड की सन्तति की उत्पत्ति सीता तत्व की इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्ति से ही होती है । ब्रह्म की सत्ता और सीतातत्व की सत्ता एक ही है । केवल ब्रह्मसत्ता सामान्य ही नहीं, किन्तु मूलप्रकृति रूप होने से यही प्रकृति, अर्थात् प्रणव (ॐकार) की भी प्रकृति यह सीता तत्व ही है ।

यही मायातत्व भी है इनमें से विष्णु प्रपन्च के बीजरूप है और माया लक्ष्मी ईकाररूप और ईकार वाच्य भी है । सीता पदस्थित सकार सत्व, अमृत, प्रभृति और सोम का वाचक है । लक्ष्मी से युक्त प्रणव, विराट का प्रस्तार और विराट का वैभव ये सब तकारपद के वाच्य है ईश्वररूपिणी सीता ही सोम और अमृत के अवयवभूत दिव्य अलङ्कार माला, मुक्तामणि प्रभृति आभरणों से अलंकृत होकर महामाया के रूप में अव्यक्त रहते हुए भी लक्ष्मी के रूप में व्यक्त होती है । इससे यह सिद्ध होता है कि सामान्य नृपति से लेकर सम्राट् पर्यन्त जो ऐश्वर्य की अभिवृद्धि दिखाई पड़ती है, मेरु प्रभृति में उन्नति दिखाई देती है, चन्दन, कुसुम प्रभृति में मङ्गलप्रद भाव, मणि सूर्य, दीपक प्रभृति में उज्जवलता, हिमालय, मन्दर प्रभृति में गरिमा यज्ञादि में पुण्य साधनता, गंगा प्रभृति तीर्थों में पावनता, अष्टसिद्धि, नवनिधि प्रभृति में भाग्य की महिमा तथा इसके अतिरिक्त भी जो कुछ धान्य, धात्य, ऐश्वर्यमय पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, वह सब लक्ष्मी के कृपा कटाक्ष के केवल विन्दु मात्र है । "आकुग्राम" प्रभृति श्लोक में गुणरत्न कोशकार ने लक्ष्मी की इस महिमा का वर्णन किया है - सीतोपनिषद में सीतातत्व का वर्णन किया गया है । अब यह सीतातत्व लक्ष्मी के स्वरूप से अभिन्न है । इसीलिए पूरे सीतोपनिषद को उद्धृत कर यहाँ उसकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है । यह इसलिए आवश्यक है कि पूर्व प्रदर्शित इस बात को सिद्ध किया जाय कि भगवान विष्णु के रामावतार के अवसर पर लक्ष्मी सीता के रूप में अवतरित होती है । और पूरा रामायण में सीता का ही चरित मुख्य रूप से प्रतिपादित है पूरी सीतोपनिषद का संक्षेप में यह अभिप्राय है -

जिस संवित्तत्व (सीता तत्व) के आधार पर इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति की सत्ता स्फुरित होती है अथवा उक्त तीनों शक्तियाँ जिसकी सत्ता को

रूप में गणना होती है, उसी तरह से प्रकृत में "सीता" पदगत स,ई,ता इन तीन वर्णों में प्रकृति विकारात्मक प्रपञ्च और अर्धमात्रात्मक स्वरूप में ब्रह्मसत्ता सामान्य मूल सीता तत्त्व विद्यमान है ।

ईकार स्वरूपिणी सीता और अमृत से उत्पन्न दिव्यमाला, मुक्तामणि जटित दिव्य अलंकारों से विभूषित व्यक्त शरीर को धारण करती है साकारात्मिका शब्द ब्रह्ममयी सीता स्वाध्याय काल में प्रसन्न होकर सारे प्रपंच को सृष्टि करती है । सृष्टि की शब्दपूर्वकता "स भूरिति" प्रभृति श्रुतियों में सुनी गई है । स्मृति में भी बताया गया है कि "उस महेश्वर ने वैदिक शब्दों से प्रपंच की सृष्टि की"। ब्रह्मसूत्र में भी यह विषय प्रतिपादित है । यह सीतातत्व का प्रथम स्वरूप है । इसका द्वितीय स्वरूप पृथिवी लोक में हल के अग्रभाग से प्रादुर्भूत हुआ था । यह देवी का स्वरूप जगत के अभ्युदय का हेतु है । कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में यह शक्ति मानुषी विग्रह धारण कर जनक के यज्ञमें अग्निचयन के स्थान को जोतते समय हल के अग्रभाग से निकली थीं और इसका नाम भी सीता रखा गया था । सीता का तृतीय स्वरूप ईकार के रूप में अव्यक्त रहता है । ब्रह्मसत्ता सामान्य श्रीराम के सानिध्य से शक्तिस्वरूपिणी यह सीता जगत् को आनन्द देने वाली सब प्राणियों के कल्याण के लिए जगत् की उत्पत्ति स्थिति संहार की लीला करती है इसलिए इसी को मूल प्रकृति कहते हैं । प्रणव स्वरूप होने से भी सीता प्रकृति कहलाती है । यह सीता ही ब्रह्ममयी, सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सबकी आधारभूत, कार्यकारणमयी महालक्ष्मी कहलाती है । सारे प्रपन्च की कारण होने से यही इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और साक्षात्शक्ति के रूप में परिणत होती है। इच्छाशक्ति का त्रिधा विस्तार श्री, भू और नीला देवी के रूप में होता है ।

रूप में गणना होती है, उसी तरह से प्रकृत में "सीता" पदगत स, ई, ता इन तीन वर्णों में प्रकृति विकारात्मक प्रपञ्च और अर्धमात्रात्मक स्वरूप में ब्रह्मसत्ता सामान्य मूल सत्ता तत्त्व विद्यमान है ।

ईकारस्वरूपिणी सीता और अमृत से उत्पन्न दिव्यमाला, मुक्तामणि जटित दिव्य अलंकारों से विभूषित व्यक्त शरीर को धारण करती है साकारात्मिका शब्द ब्रह्ममयी सीता स्वाध्याय काल में प्रसन्न होकर सारे प्रपंच को सृष्टि करती है । सृष्टि को शब्दपूर्वकता "स भूरिति" प्रभृति श्रुतियों में सुनी गई है । स्मृति में भी बताया गया है कि "उस महेश्वर ने वैदिक शब्दों से प्रपंच की सृष्टि की"। ब्रह्मसूत्र में भी यह विषय प्रतिपादित है । यह सीतातत्व का प्रथम स्वरूप है । इसका द्वितीय स्वरूप पृथिवी लोक में हल के अग्रभाग से प्रादुर्भूत हुआ था । यह देवी का स्वरूप जगत के अभ्युदय का हेतु है । कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में यह शक्ति मानुषी विग्रह धारण कर जनक के यज्ञमें अग्निचयन के स्थान को जोतते समय हल के अग्रभाग से निकली थी और इसका नाम भी सीता रखा गया था । सीता का तृतीय स्वरूप ईकार के रूप में अव्यक्त रहता है । ब्रह्मसत्ता सामान्य श्रीराम के सान्निध्य से शक्तिस्वरूपिणी यह सीता जगत् को आनन्द देने वाली सब प्राणियों के कल्याण के लिए जगत् की उत्पत्ति स्थिति संहार की लीला करती है इसलिए इसी को मूल प्रकृति कहते हैं । प्रणव स्वरूप होने से भी सीता प्रकृति कहलाती है । यह सीता ही ब्रह्ममयी, सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सबकी आधारभूत, कार्यकारणमयी महालक्ष्मी कहलाती है । सारे प्रपञ्च की कारण होने से यही इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और साक्षात्शक्ति के रूप में परिणत होती है। इच्छाशक्ति का त्रिधा विस्तार श्री, भू और नीला देवी के रूप में होता है ।

"श्री देवी" भद्र (कल्याण) को देने वाली, भू देवी प्रभातृरूपिणी और नीला देवी सोम-सूर्य-अग्निस्वरूपिणि है । अपने सोमरूप के कारण यह ओषधियों को पुष्टि प्रदान करती है । कल्पवृक्ष, पुष्प, फल, लता, गुल्मप्रभृति इसी के स्वरूप है । ओषधि भेषज के रूप में यह भूलोक में अमृतस्वरूपिणी है । अमृतरूप होने से यह देवताओं को सुधा से मनुष्यों को अन्न से, पशुओं को तृण (घास) से संतुष्ट करती है । अन्य जीवों के कल्याण के लिए और उनको पुष्ट करने के लिए भी यह सूर्य प्रभृति सारे लोकों को प्रकाशित करती है, दिन, रात्रि आदि के रूप में खण्डकाल और महाकाल की कल्पना के रूप में प्रकाशमान यह देवी सारे जगत् के व्यवहार का सम्पादन करती है । यही बाह्य और आभ्यन्तर अग्नि के रूप में विद्यमान है, विद्या, निद्रा, क्षुधा, छाया, तृष्णा, क्षान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, मति, भ्रान्ति आदि रूपों में यही देवी सबके अभ्युदय, जीवन और विश्राम की हेतु है यह भगवान् के संकल्प के अनुरूप लोक की रक्षा के लिए श्री, लक्ष्मी, भूदेवी का रूप धारण कर विश्व का पोषण करती है । जगत् का सुचारू रूप से संचालन करने के लिए यही देवी 21 शाखा वाले ऋग्वेद का, 109 शाखा वाले यजुर्वेद का, एकसहस्रशाखा वाले सामवेद का, 5 अथवा 50 शाखा वाले अथर्व० का रूप धारण करती है । अथर्व की सीतोपनिषद् में 5, मौक्तिकोपनिषद् में 50 शाखायें वर्णित हैं ।

क्रियाशक्ति भी उस शाश्वत ब्रह्म का ही स्वरूप है । भगवान ने स्मरण करते हैं । साक्षात् लक्ष्मी उनके सामने क्रिया-शक्ति के रूप में आविर्भूत होकर आविर्भाव और तिरोभाव, निग्रह और अनुग्रह, शान्ति और तेज, व्यक्त और अव्यक्त कर, चरण मुख आदि समग्र अवयव के भेदाभेद के रूप में अवस्थित होकर इन सब कार्यों

में उनकी सहायिका बनती है, उनसे कभी अलग नहीं होती, सदा उनके साथ रहती है तो भी कभी इसका स्वरूप दिखाई पड़ता है और कभी आँखों से ओझल हो जाता है। निमेष, उन्मेष, सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, अनुग्रह आदि समस्त शक्तियों की सामर्थ्य इसी में निहित है। अतः इसी को साक्षात् शक्ति कहा जाता है। इच्छा शक्ति के भी तीन प्रकार है पहला स्वरूप प्रलयावस्था में भगवान् के दक्षिण वक्ष स्थल पर श्रीवत्स के रूप में विश्राम करता है। इसे योग शक्ति कहते हैं। दूसरा है भोगशक्ति, भोग का सम्पादन करने के लिए यह कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि के रूप में और शंख, पद्म, प्रभृति निधि के रूप में अवतरित होता है। वीर शक्ति इसका तृतीय स्वरूप है। इसके चार भुजायें हैं, अभय, वरदमुद्रा और कमल इसके हाथों में है, किरीट पहने हुए है। यह सारे देवों से परिवृत है कल्पतरु के नीचे चार हाथी रत्न घट में अमृत जल लेकर इसका अभिषेक करते हैं। ब्रह्मा प्रभृति सभी देवगण इसकी स्तुति करते है। अणिमा प्रभृति ऐश्वर्य इसके पास है। कामधेनु, समस्त वेदादि शास्त्र इसके सामने स्तुति कर रहे हैं, जया प्रभृति अप्सराएँ इसकी सेवा में लगी हुई है। आदित्य और सोम रूपी दीपक से यह प्रकाशमान है। तुम्बुरु, नारद प्रभृति इसका यशोगान कर रहे हैं। राका और सिनीवली के हाथ में छत्र है, हलादिनी और माया चामर डुला रही है, स्वाहा और स्वधा पंखा झल रही है, भृगुप्रभृति इसकी पूजा कर रहे हैं। यह देवी {भोग शक्ति} सिंहासन पर पद्मासन मारकर बैठी हुई है। सकल कारण और कार्य जगत् की जननी है यह देवी लक्ष्मी का ही स्वरूप है इस रूप में यह भगवान् विष्णु के अनेक बनने के एक से अनेक बनने के संकल्प को साकार करती है प्रसन्न लोचनवाली सभी देवताओं के द्वारा पूजित स्थिर स्वरूप वाली यह लक्ष्मी वीर लक्ष्मी के नाम से मानी जाती है।

"रामरहस्योपनिषद", पूर्वरामतापिनी और उत्तररामतापिनी प्रभृति उपनिषदों में लक्ष्मी के साथ वर्तमान भगवत्स्वरूप के अनन्त माहात्म्य, चरित्र नाम और मंत्र वर्णित है । जैसे कोई व्यक्ति अपने स्वामी के लिए पूर्ण प्रयत्न कर कोई उत्तम कार्य करता है और यह जानकर उसको महान् आनन्द होता है कि मेरे स्वामी ने मेरे कार्य को देखा और उसको सराहा, उसी तरह से समस्त चित् और अचित् जगत् का विधान करने वाले भगवान् के प्रयत्न को भी जब लक्ष्मी देखती है । और उसका अनुमोदन करती है तो भगवान् को भी महान आनन्द होता है । सब पापों का हरण करने वाले अथवा उनको अपने वश में करने वाले श्रीहरि हैं ।

सत्वशून्य काल की चेतन जीव के कर्मों के अनुसार कला, काष्ठा, मुहूर्त मास, दिन, पक्ष, मा, ऋतु अयन, संवत्सर आदि के रूप में परिणति होता है । यह सब भगवान् की इच्छा से होता है । इससे लक्ष्मी प्रसन्न होती है । श्री हरि को इस तरह के चिदचिद्विशिष्ट जगत् को बनाने की आदत है और लक्ष्मी इसका अनुमोदन करती है । "लज्जा से अपना मुख नीचा करती हुई सीता के अपने मनोभाव को स्पष्ट कर दिया । उत्तररामचरित की इस उक्ति के अनुसार लक्ष्मी अपने नेत्रों की लीला से ही भगवान के इन सभी कार्यों का अनुमोदन करती है । श्रिये समस्तामधिवासभूताय इस श्लोक में "गुणरत्नकोशकार" ने इसी भाव को व्यक्त किया है । श्रीस्तव में भी कहा गया है कि भगवान् की यह लीला लक्ष्मी को बड़ी ही सरस लगती है । इसलिए इसको "श्री" कहते हैं गुणरत्नकोषकार" ने कहा है कि अन्य सभी प्राणी आपका ही सहारा लेते हैं और आप स्वयं लक्ष्मीरमण भगवान् विष्णु का आश्रय ग्रहण करती है । स्तुति करने वालों की बात आप सुनती है और उन आश्रितों की प्रार्थना को आप भगवान् को भी सुनाती है हे जगज्जननि । अपने आश्रितों के समस्त

दोषों को आप नष्ट कर देता है और इस सारे जगत् को गुणों से परिपूर्ण कर देती है। इन्हीं सब गुणों की समष्टिस्वरूपा भगवती लक्ष्मी को "श्री" के नाम से जाना जाता है।

श्री हरिद्वारा संपादित स्थावर और जड़्गम सृष्टि में जो तारतम्य दिखाई पड़ता है, वह भी भगवती के भ्रूभड़्ग का ही विलास है। स्थावर सृष्टि में कल्पवृक्ष, चन्दन, आम्र, अश्वत्थ, नारिकेल, स्नुही तथा बबूल प्रभृति काँटे वाले वृक्षों में तारतम्य भाव देखने को मिलता है। इसी तरह से देव, मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, हंस, गरुड, शुक, पिक, मयूर प्रभृति में उच्चावच भाव देखने को मिलता है यह सब लक्ष्मी के कटाक्ष का ही प्रभाव है। जैसे विधाता की सृष्टि में वेद प्रमाण है उसी तरह से श्रीहर के स्थिर और चर वस्तुओं निर्माण में लक्ष्मी का भ्रुकुटिभंगिमा ही प्रमाण है श्री के भ्रूभड़्ग के तारतम्य में उन उन प्राणियों के कर्म, उपासना आदि के तारतम्य का संनिवेश रहता ही है। इसी कारण से इनमें वैषम्य, नैर्घृण्य, प्रभृति दोषों की आपत्ति नहीं आती। भागवत् पुराण में बताया गया है कि भगवती लक्ष्मी के कृपा कटाक्ष की कामना से ही ब्रह्मा प्रभृति देवताओं ने अनेक वर्षों तक तपकिया। लक्ष्मी के कृपाकटाक्ष की बाहुलता होने पर उत्कर्ष का तारतम्य तथा उनकी अल्पता होने पर अपकर्ष का तारतम्य बनता है भगवान् विष्णु के उदर-स्थल पर जिसके पदचिन्हों को देखकर वेदान्त-शास्त्र का संशय नष्ट हो जाता है। जिसके चरण के अलक्तक से अड़्कित भगवान् श्रीहरि की सर्वोत्कृष्टता को वेदान्त निश्चित करते हैं, लक्ष्मी के चरण की लाक्षा के चिन्ह से जिनका वक्षस्थल अलड़्कृत है, वही वास्तव में वेदान्त ज्ञेय परमतत्त्व है, यह निश्चित हो जाता है श्रुति में यह सारा वैभव नारायण का वर्णित है। यह नारायण कौन है? इसके उत्तर में

उसको लक्ष्मी बताया गया है । अतः इस प्रतिपादन से लक्ष्मीपति नारायण ही सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है । इस प्रकार अन्ततः यह सिद्ध हो जाता है कि यह लक्ष्मी भी वेदान्तवेद्य ही है ।

पुरुष सूक्त में नारायण को लक्ष्मी पति बताया गया है उसी तरह से श्वेताश्वतर उपनिषद में रुद्र को उमापति कहा है, किन्तु जैसे सीता, राधा, रुक्मिणी को अन्ततः लक्ष्मी का ही अवतार माना जाता है उसी तरह से त्रिपुरेश्वरी भगवती पार्वती और लक्ष्मी का भी अभेद ही माना जाता है ।

लक्ष्मी भगवान् की प्राणेश्वरी है इसकी महिमा सुनकर भगवान परम प्रसन्न होते हैं । इस स्थिति का वर्णन महानुभाव गुणरत्नकोशकार ने "श्रियः श्रीः" प्रभृति श्लोक में किया है इसका अभिप्राय है - भगवान् विष्णु सबके द्वारा आश्रयणीय लक्ष्मी के भी आश्रय है । हे भगवान्, आप श्रीरङ्ग नगर में, श्रीरंग विमान में शयन करने वाले हैं । इस तरह से सबके लिए सदा सुलभ है । अतः सर्वोत्तम देव के रूप में आपकी स्तुति की जाती है । भगवती लक्ष्मी तो आप जैसे सर्वोत्तम देव के परम प्रेम की भी आस्पद है, सदा आपके वक्षस्थल पर निवास करती है, षड्गुण्य से परिपूर्ण है, पुरुषकार के रूप में सबकी आश्रयणीय है, अनन्त ब्रह्माण्ड के सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री है और आपको प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं । अतः हमारे जैसे आप के भक्त आपसे भी अधिक महिमायुक्त लक्ष्मी ही है, ऐसा वर्णन करने का साहस करते हैं । इस तरह से लक्ष्मी के गुणगान के श्रवण से आपका गात्र अपरिमित कञ्चुक के स्फोटन में समर्थ होने तक बढ़तीरहे ।

परब्रह्म के रूप में उसकी शक्ति, प्रकृति अथवा माया के रूप में ये सब वेद भगवती लक्ष्मी का ही वर्णन करते हैं । "श्रीरच०" प्रभृति मन्त्र, ब्राह्मण और

उपनिषद् के वाक्यों में विविध रूप में उसी का गुणगान वर्णित है । रामायण, महाभारत प्रभृति इतिहास, अष्टादश पुराण, उप पुराण, तन्त्र आगम, दर्शन, धर्म-शास्त्र प्रभृति समस्त शास्त्रों का पर्यवसान लक्ष्मी की स्तुति में ही होता है । भगवान लक्ष्मी से अभिन्न है । अतः समस्त प्रमाणों का पर्यवसान लक्ष्मी से ही होता है ।

हे जननि, श्री सूक्त प्रभृति के रूप में विद्यमान अकेला उपनिषद् ही वैतालिक {चारण} के समान हाथ उठाकर केवल लक्ष्मी ही इस सारे जगत की स्वामिनी है । ऐसा शपथ पूर्वक कहता है ।

भगवती लक्ष्मी की उपेक्षा के कारण दुर्गति का तारतम्य और उनकी कृपा होने पर ऐश्वर्य का तारतम्य बनता है विष्णु पुराण में वर्णित है कि वही पुरुष श्लाघ्य, सुखी, धन्य, कुलीन, बुद्धिमान, बलवान और पराक्रमी बनता है जिसको कि हे देवि आप कृपा दृष्टि से देखती है । यदि जगद्धात्री, विष्णुवल्लभा लक्ष्मी किसी से विमुख हो जाती है, तो उसके शील प्रभृति सभी श्लाघ्यगुण दोष में बदल जाते हैं । "आकुग्राम" प्रभृति श्लोक" में भी गुणरत्न कोशकार ने इसी विषय का वर्णन किया गया है । वे कहते हैं कि हे रंगराजवल्लभे लक्ष्मी, गाँव की बगीचा से लेकर समस्त लोकों का शासन करने वाले ब्रह्मा तक जो उत्तरोत्तर ऐश्वर्य की उन्नति देखी जाती है । सुधा की सगी बहिन लक्ष्मी भूलकर जिसकी तरफ घूम जाती है, उसी ओर रतिप्रीति, मति, सरस्वती, धृत्ति, समृद्धि और सिद्धि भी होड़ लगाकर दौड़ पड़ती है, पुत्र, पौत्र, प्रभृति सभी उसके ही कहने में रहते हैं ।

कुछ लोगों के मतानुसार अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के नायक परमेश्वर की सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि लीलाएं भी भगवती लक्ष्मी के मन बहलाव के लिए है जैसे कि नगरवधू {गणिका} अपने हाव-भाव से पुरुषों को अपने वश में कर लेती है । भगवान् की यह लीला भी भगवती के परिहास के निमित्त ही है ।

गुणरत्नकोशकार कहते हैं कि हे देवि आप दोनों के भोग्यभूत मुख्याङ्गराग के साथ, पुष्प, माला, चन्दन घनसार कुङ्कुम, कस्तूरी आदि के साथ स्वयं अपने को भोग रूप में समर्पित करने वाली भू और नीला के साथ अन्य अनन्त संख्या वाली देवियाँ सपत्नी के रूप में प्रणय निवेदन के लिए सदा तत्पर रहती हैं, प्रणय के प्रवाह को सदा उद्वेलित करती रहती हैं। ये देवियाँ अपने बाहु, दृष्टि आदि अंगों का प्रदर्शन कर प्रभु को जो सन्तुष्ट करती है वह सब आपकी ही महिमा है जैसे, पुष्प, अङ्गराज आदि की प्रधान उपयोगिता भोग्यरूप से उनके उपयोग में है उसी तरह उन देवियों की भी उपयोगिता उनका कोई उपयोग करे। इसी में है। प्रेम रस को बहाने में इन सबकी भी उपयोगिता है। जैसे तालाब के भर जाने पर जल की निकासी के लिए मार्ग की आवश्यकता पड़ती है। नहीं तो पूरा तालाब ही टूट जायेगा, उसी तरह से "श्री" और "श्रीश" का अत्युत्कट प्रेम रस का प्रवाह भी भू, नीला प्रभृति सपत्नियों के ओर से गुजरे बिना नहीं रह सकता। उस प्रेम रस के तालाब आकण्ठ भरे रहने के लिए यह आवश्यक है कि यह प्रेम का बाँध कहीं टूट न जाय, उसका अतिरिक्त प्रेम रस धीरे-धीरे बहता रहे। इसके साधन के रूप में ही लक्ष्मी की भू, नीला प्रभृति सपत्नियों की सार्थकता है। इससे स्पष्ट होता है कि लक्ष्मी का अपनी सपत्नियों के साथ कभी कलह नहीं होता इतना ही नहीं, भगवान् के साथ सपत्नियों का संश्लेष होने पर लक्ष्मी की प्रसन्नता ऐसी बढ़ती है, मानों उसके अपने ही अङ्गों के साथ भगवान् का संश्लेष हो रहा है। जैसे-पुष्प, अङ्गराग आदि का उपभोग कोई नायिका करती है किन्तु इनका उपयोग अन्ततः प्रिय के उपभोग में होता है। उसी तरह से लक्ष्मी सपत्नियाँ यद्यपि लक्ष्मी की ही सेवा में लगी रहती है तो भी अन्ततः उनका उपभोग भी लक्ष्मीपति ही करते हैं।

जैसे लक्ष्मी अपने अङ्गों से प्रियतम को संतोष प्रदान करती है । हे श्री, उसी तरह से अन्य भी बहुत सी तुम्हारी सपत्नियाँ तुम्हारे ही समान प्रकाशमान, प्रसन्नवदन समस्त दोषगन्ध से रहित, अपहतपाप्मत्व प्रभृति आठ गुणों तथा ज्ञानशक्ति प्रभृति षड्गुणों, शंख, चक्र प्रभृति अलंकारों, निरङ्कुश चेष्टाओं, ज्ञानानन्दात्मक निर्मल स्वरूपों, समस्त ऐश्वर्य के साथ समस्त कल्याण गुणगणों से और भोग से भी आप दोनों के ही सदृश समान वय वाली सखियाँ तुम्हारे और तुम्हारे पति के चरण कमलों की सेवा करने के लिए प्रेम विह्वल मन से सदा उत्कण्ठा के साथ आज्ञा की प्रतीक्षा करती रहती है ।

"तव स्पर्शादारा" प्रभृति श्लोक में वे ही कहते हैं कि हे कमले, परमेश्वर आपके स्पर्श के कारण ही, आपसे संश्लिष्ट होने से ही मंगलपद के आस्पद होते हैं । आप में विद्यमान यह मंगलपद कहीं अन्य से नहीं आया है, किन्तु आप में यह स्वभाव सिद्ध है । आपतो श्री है । स्वतः मंगलस्वरूप है । पुष्प की शोभा को बढ़ाने वाला सुगन्ध का गुण सम्पत्ति की अपनी प्रशंसा होती है, पुष्प के कारण उसका प्रशंसा कोई कवि नहीं करता । पुष्प की अतिशयिता के निरूपण के लिए परिमल की अपेक्षा रहती है । किन्तु परिमल की अतिशयिता के निरूपण के लिए किसी दूसरे गुण की जैसे अपेक्षा नहीं रहती, उसी तरह से भगवान् के मंगलमय होने में तो श्री का सम्बन्ध नियामक माना जाता है, किन्तु श्री के मङ्गलमय होने से किसी दूसरे नियामक की अपेक्षा नहीं है ।

इतना ही नहीं, सर्वेश्वर भगवान् विष्णु और लोकपालों का वैभव लक्ष्मी के कृपा कटाक्ष से ही प्राप्त होता है । हे सर्वमङ्गल-मांगल्ये, जिस पर आपकी कृपादृष्टि बहुलता से पड़ती है, वह तो परब्रह्म हो जाता है । जिस पर आपके

दो तीन कृपा कटाक्ष पड़ते हैं, वह परब्रह्म से कम शतमुख [इन्द्र] इत्यादि पद को प्राप्त करता है। इसीलिए शास्त्र परब्रह्म पदवी और इन्द्र पदवी को छोड़कर उन पदवियों को देने वाली के रूप में आपकी ही स्तुति करते हैं, आपको ही इन दोनों में से भी बड़ी मानते हैं। जैसे राजधानी और उसके वैभव, सम्पत्ति आदि की स्तुति अन्ततः लक्ष्मी की ही प्रशस्ति में बदल जाती है। गुणरत्नकोशकार ने इस स्थिति का वर्णन "अपाङ्गा भूयांसो" प्रभृति श्लोक में किया है।

हे लक्ष्मी, आप भगवान् विष्णु के निरुपाधिक स्वरूप से स्वभावतः अभिन्न है उनकी शेषभूत है पूरक है। आप में भगवान् का स्वत्व है, भगवान आपके स्वामी हैं। यह स्थिति अत्यन्त स्वाभाविक से विद्यमान है किसी प्रामाणिक वचन में बताया गया है कि प्राणीमात्र को स्वयं अपने में स्वत्व को और परमात्मा में स्वामित्व की भावना करना चाहिए कि आत्मा दास है और भगवान् स्वामी है, इसीलिए भगवान् का वैभव अपराधीन इसलिए, माना जाता है कि वह आपके ही अधीन है और आपमें तो उसका स्वाभाविक स्वत्व है ही। जैसे कोई मणि अपना धा कान्ति से बहुमूल्य बनती है।

कनक धारा स्तोत्र -

भगवान् आद्य शंकराचार्य कृत कनकधारा स्तोत्र मे 2। श्लोक दार्शनिक पक्ष युक्त और बयीसवां फलश्रुति के रूप में वर्णित है । इसकी पृष्ठभूमि यह है कि भिक्षाटन करते हुए आदि शंकर एक ऐसे दरवाजे पर पहुँचते हैं जहाँ मात्र एक गृहिणी ही है और सर्वथा खाद्य सामग्री का अभाव है, द्वार पर आये हुए सन्यासी भिक्षा में देने के लिए कोई भी सामग्री न होने के कारण गृहिणी संकोच की । रिक्त-पाणि बाहर निकलती है और पुनः खिन्न मनसे कि सन्यासी को क्या दूँ धर्मसंकट है अतिथि अग्निस्वरूप होता है । उसका सम्मान सर्वथा किया जाना चाहिए ऐसा गृहस्थ का धर्म है । इस कारण वह पुनः घर में कुछ खोजती हुई सूखा आँवला देखकर, उसे ही भिक्षा रूप में लाकर व्यथित हृदय से आद्यशंकर को देती है । शङ्कराचार्य जी गृहिणी की विपन्नता अवस्था को देखकर शोकातुर होकर बहुत ही मार्मिक रूप से भगवती लक्ष्मी का स्तुति करते हैं, स्तुति पूर्ण होते ही गृहिणी के घर में स्वर्ण आँवलों की वृष्टि होने लगती है जिससे उसका दुःख दरिद्रय दूर हो जाता है ।

भ्रमरी से लक्ष्मी की उपमा देते हुए आचार्य शंकर कहते हैं जिस प्रकार भ्रमरी अर्ध विकसित पुष्पों से अलंकृत तमाल वृक्ष का आश्रय ग्रहण करती है । उसी प्रकार भगवान् श्री हरि के रोमान्च से शोभायमान लक्ष्मी की कटाक्ष लीला

श्री अड्•गों पर अनवरत पड़ती है और भगवती लक्ष्मी के कटाक्ष में ही समस्त ऐश्वर्य सम्पत्ति का अधिवास है लक्ष्मी स्वयं ही सभी मड्•गलों की अधिष्ठात्री है। ऐसी देवी महालक्ष्मी की कटाक्ष लीला साधक के लिए मड्•गलदायिनी हो।

कटाक्ष का सम्बन्ध जगद्धात्री से है। जगद्धात्री का कार्य कटाक्ष, करना है। जब तक जगद्धात्री अपने कटाक्ष के द्वारा सभी बेमेलतत्वों को अथवा कलमषों को अथवा पाप राशि को नष्ट नहीं करेगी तब तक वह भगवती के स्वरूप में अपना प्रभाव नहीं दिखा पायेगी। कृपा करने के लिए तो उसे कटाक्ष करना ही पड़ेगा। कटाक्ष पहला कार्य होगा तब कृपा होगी। कृपा का सम्बन्ध भगवती से है और कटाक्ष का जगद्धात्री से है। आदि शंकराचार्य ने पहले लक्ष्मी की कटाक्ष की आकांक्षा की, उसके परिणाम स्वरूप जगद्धात्री ने अपने प्रभाव का विस्तार कर दरिद्री गृहिणी के कलमषों को नष्ट किया और स्वर्ग आभलक की वर्षा होने की स्थिति बनी। जिसके कारण, भगवती स्वयमेव स्वर्ण के वर्षा के रूप में आकर उसका दारिद्रय नष्ट कर अपना अधिवास बनाया।

लक्ष्मी चूंकि चंचला है, एक जगह कभी स्थिर नहीं रहती, जब तक पुण्य प्रभावी रहता है और व्यक्ति सन्मार्ग पर चलता रहता है। तब तक लक्ष्मी की

असीम अनुकम्पा व्यक्ति पर बनी रहती है । शंकराचार्य कह रहे कि जिस प्रकार भ्रमरी (मधुकरी) कमल दल पर बार-बार मंडराती रहती है । उसी प्रकार भगवान मुरारि के मुख कमल की ओर प्रेम सहित जाकर और लज्जा से वापस आकर समुद्र कन्या लक्ष्मी की मनोहर मुग्ध दृष्टिमाला उपासक को अतुल, श्री, ऐश्वर्य प्रदान करें ।

मुरारि- मुर नामक एक राक्षस जिसका संहार भगवान विष्णु ने किया था । भगवान विष्णु के विशेषण के रूप में मुरारि शब्द आया है । आशय यह है कि मुर पाप का प्रतीक है जब तक उसका नाश नहीं होगा, तब तक पूर्णोदय असम्भव है, जैसे ही पाप का शमन हो जाता है ठीक वैसे ही पुण्य जागृत हो जाता है ।और देवी कृपा की प्राप्ति होने लगती है ।

जैसे धर्मपत्नी के लिए उसका पति ही सब कुछ है पति को आकर्षण से देखती हुई जैसे लज्जा शीला स्त्री के भाव को कोई देख न ले ऐसा लोक लज्जा से सतर्क रहते हुए भी पति को देखती है । इस प्रकार की मनोहर दृष्टि का वर्णन है । चूंकि लक्ष्मी का प्रादुर्भाव समुद्र से हुआ है । इसलिए समुद्र-कन्या के रूप में सम्बोधित की गयी है चूंकि स्वभावतया महिलाओं का प्रेमपितृ पक्ष से अधिक रहता है । इस कारण समुद्र-कन्या कहकर पितृपक्ष का भी लक्ष्मी को ध्यान दिलाया गया है ।

भगवती लक्ष्मी ही देवराट इन्द्र को का पद और वैभव दोनों ही प्रदान की है । विष्णुवल्लभा लक्ष्मी का हृदय अति मनोरम है । शेषनाग पर सोने वाले विष्णु की पत्नी लक्ष्मी जी का नेत्र ऐश्वर्य दायक है । भगवती लक्ष्मी ही आनन्द का मूल कारण है । मधु नामक असुर को जीतने वाले श्रीविष्णु के कौस्तुभ मणि से शोभित वक्षस्थल पर भगवती लक्ष्मी शोभायमान है । और उनकी शोभा इन्द्रनील मणि की हारावली जैसी प्रतीत हो रही है भगवती का यह स्वरूप भगवान् विष्णु के मन में बलात् कामक्रीडा उत्पन्न कर रहा है ।

भगटो का निवास स्थान समुद्र है और लक्ष्मी का भी निवास स्थान समुद्र है । समुद्र को अक्षय वैभव का खजाना माना जाता है । नारायणपत्नी लक्ष्मी का नेत्ररूपी बादल दयारूपी अनुकूल हवा से चलता हुआ दुष्कर्म रूपी धूप को सदा के लिए दूर कर देता है और दरिद्रों पर भगवती के अनुपम कृपा का प्रसार करता है । भगवती सहजता से ही सब कुछ प्रदान करने की सामर्थ्य वाली है । भगवती लक्ष्मी ही सृष्टि काल में सरस्वती पालक काल में लक्ष्मी और संहार काल में दुर्गा शाकम्भरी जानी जाती है और सदा षोडशवर्षीया है ।

श्रुति, मनोहर गुण-सागरा रति, कमलवासिनी शक्ति, विष्णु वल्लभा, पुष्टि, पद्मानना, क्षीर सागर जन्मना, चन्द्रमा और अमृत की स्वसा, स्वर्णकमलासना, भूमण्डलनायिका, देव दयार्द्रा, भृगु ऋषि वन्दिता, विष्णु वक्षस्थला-धिष्ठात्री, दामोदर प्रिया, सर्वपूजिता, सर्ववन्दिता, को नमस्कार है ।[1]

1- अङ्गं हरे पुलक-भूषणमाश्रयन्ती,
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम् ।
अङ्गीकृताखिल-विभूतिरपाङ्ग-लीला,
माङ्गल्यदाऽस्तु मम मङ्गल-देवतायाः ।।
नमोऽस्तु नालीक- निभाननायै,
नमोऽस्तु दुग्धोदधि-जन्म-भूत्यै ।
नमोऽस्तु सोमामृत- सोदरायै,
नमोऽस्तु नारायण-वल्लभायै ।।

वेदान्त देशिक की श्रीस्तुति

वैष्णव सम्प्रदाय में सन्यासियों का एक वर्ग है जो त्रिदण्डी" के नाम से जाना जाता है । इनके दण्ड में शैव सम्प्रदाय के सन्यासी जैसा नहीं होता । इनके दण्ड में तीन ग्रन्थ होते हैं जो ब्रह्म, उसकी शक्ति श्री या लक्ष्मी और जीव के प्रतीक माने जाते हैं । इस सम्प्रदाय वालों का कहना है कि ब्रह्म अकेला नहीं है बल्कि उसके साथ उसकी शक्ति भी है और जीव का शाश्वत सम्बन्ध है ।

रामानुज सम्प्रदाय में जो लक्ष्मी की स्तुति की जाती है वह श्री स्तुति के नाम से जानी जाती है और इसका पाठ प्रधान रूप से आन्ध्रप्रदेश के तिरुपति बाला जी के मन्दिर में होता है । साथ ही सभी दक्षिण भारत वाले जो रामानुज सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, यह पाठ सर्वमान्य एवं प्रचलित है ।

जिस प्रकार उत्तर भारत में राम लक्ष्मण-सीता-भरत-शत्रुघ्न, उर्मिला, माण्डवी और श्रुति कीर्ति का यश विस्तार है, साथ ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने सोलहवीं शताब्दी में अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरित मानस के माध्यम से भागवत कथा का जो प्रचार प्रसार दक्षिणा भारत तक पहुँचाया । उस ऋण को रामानुजाचार्य ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से उतार दिया ।

श्रीस्तुति में भगवती लक्ष्मी के स्वरूप का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है ।

भगवती लक्ष्मी श्रेय की मूर्ति है मानायुक्त एवं मान से भी परे हैं । त्रिभुवन के समस्त सम्पदा की अधिष्ठात्री तथा सर्वतोभावेन मङ्गल प्रदान करने वाली है । मधुवरि विष्णु के वक्षस्थल पर सर्वदा निवास करने वाली है इनकी महिमा का गायन श्रुतियां भीकरती है[1] । भक्तों (पुत्रों) के प्रति मां का दृष्टिकोण वात्सल्ययु

---

15 मानातीत प्रथित विभवां मङ्गलं मङ्गलानां
वक्षः पीठीं मधु विजयिनो भूषयन्तीं स्वकान्त्या ।
प्रत्यक्षानुश्रविक महिमप्रार्थिनीनां प्रजानां
श्रेयो मूर्ति श्रियमशरणस्त्वां शरण्यां प्रपद्ये ।। 1

है भगवती लक्ष्मी जो भगवान विष्णु का सम्वर्धन करने वाली है । उनका प्राकट्य यज्ञ के जल कलश से हुआ है और उनका अधिवास कमल वन है अथवा विष्णु का वक्षस्थल भी है । अखिल भुवन उनका मुख है साधक मोक्ष को प्राप्त करता है तो उनका मुख में ही प्रविष्ट होता है इस प्रकार मोक्ष का स्थल भी उनका मुख ही है ।

भगवती लक्ष्मी कल्याण का भी साधकों के लिए वरदा हैं । सभी देवता यद्यपि हाथ से वरदान प्रदान करते हैं, किन्तु भगवती लक्ष्मी क्रीडा के ब्याज से मात्र अपने पैर से ही सब प्रकार की सिद्धियाँ और श्रेयस् प्रदान करती है ।

समस्त जड़-चेतन का सृजन, पालन, एवं संहार का कार्य भगवती लक्ष्मी के द्वारा सम्पन्न होते हैं । निर्विकल्प समाधि में जाने पर मात्र लक्ष्मी ही ध्यान का विषय रह जाती है , लक्ष्मी और विष्णु के मध्य बिना किसी व्यवधान के सृष्टि यज्ञ अर्थात् प्रणय सम्बन्ध अनवरत श्रुतिरूपी शेष की विशेष शय्या पर चलता रहता है ।

अखिल ब्रह्माण्ड की अधिष्ठात्री होने के कारण तीन गुणा लम्बी फलक पर जुआ खेलने की प्रवृत्ति वाले विभ्रमित ब्रह्म आदि देवता घिर जाने पर भगवती लक्ष्मी के पेटीकोट को पकड़कर त्राण के लिए साधक समूहों द्वारा श्रुतियों के द्वारा देखे जाते हैं ।

1- आविर्भावः कलश जलधावध्वरे वापि यस्याः
स्थानं यस्या सरसिज वनं विष्णु वक्षः स्थलं वा ।
भूमा यस्याभुवनमखिलं देवि दिव्यं पदं वा
स्तोक प्रज्ञैरनवधि गुणास्तूयसे सा कथं त्वम् ।।

भगवती लक्ष्मी को ही लक्ष्मी, पद्मा, जलधि तनया, विष्णुपत्नी, इन्दिरा इत्यादि नामों से सम्बोधित किया जाता है जिस किसी भी नाम से श्रुति पुकारे वही नाम अपने प्रभाव से दुष्ट पवन के द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी संसार चक्र से मुक्ति का कारक हो जाता है ।

यद्यपि कुछ लोग भगवान विष्णु को लक्ष्मी की अपेक्षा सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण मानते हैं किन्तु वे आन्तरिक कल्मश से मलीन होकर ही ऐसा कहते हैं । यदि वे मालिन्य रहित होकर देखें तो तुम्हारी प्रीति के लिए श्रुतियों के सम्मुख दृष्ट भावारूढ हो विचरण करते रहते हैं । इसलिए साधक के लिए तुम्हारा {लक्ष्मी} का ही दाम्पत्य सर्वश्रेष्ठ दृष्टिगोचर होता है ।

सब प्रकार के कष्ट का निवारण करने की सामर्थ्य भगवती लक्ष्मी में निहित है । किन्तु यह स्थिति तभी उत्पन्न होगी जब साधक सर्वतोभावेन चंचला भक्ति का त्याग कर एकमात्र भगवती लक्ष्मी की ही शरण में जाता है । आधा है तन्वी, उन्नत स्तनों के भार से ईषद झुकी हुई, जाम्बु नाद {तप्तस्वर्ण} के कान्ति सदृश तुम्हारी मूर्ति जो मरकत मणि के सदृश है की शोभा को हरिधारण करते हैं । आनन्द सिन्धु में इच्छा वेगोल्लसित लहरियों के विभ्रम तुम्हारे द्वारा व्यक्त होकर उत्थान एवं पतन को धारण करते हैं ।

जिसमें समस्त तत्त्व स्थित है । तथा सम्पूर्ण विस्तृत वाङ्मय जिसकी विभूति है, पुष्पबाण धारण करने वाला कामदेव मात्र भ्रू भंग से ही विशाल प्रभाव वाले धनुष का परित्याग कर सेवक हो जाता है । नेत्रबाण से ही जिसका एक लक्ष्य मात्र महेन्द्र है । उस कमल में तुम्हारे भाव से आसक्त सभी तत्त्व परिणत हो जाते हैं

पति के सम्मुख जलनिधि से प्राप्त अमृत की बाढ़ से उत्थित या खड़ा हुआ कमलमय शोभानपीठ पर बैठी हुई तुम्हें {लक्ष्मी को} बादलों के द्वारा जलप्लावन से लोकों के पुष्पाकार {फूलों का गुच्छे} को स्थागित करते हुए स्वर्ण घटों से गजराज सहित हथनियाँ तुम्हारा {लक्ष्मी का} अभिषेक करती है ।

हे अमृत सहजे विष्णु के वक्ष स्थल पर स्थित तुम्हें देखकर शापाक्रान्त इन्द्र अपने समस्त अवरोधों के सहित तुम्हारी शरण में आया हूँ । मात्र शरणागत होते ही भगवती लक्ष्मी के कटाक्षों से शापमुक्त होकर पुनः सम्पूर्णत्रिभुवन वैभवों के सहित पुनः अपनी पदवी को प्राप्त कर लिया ।

भगवती लक्ष्मी अपने उपासकों के दुःख को शीघ्र नष्ट कर डालती है जैसे नील जल मेघों के अमृत की वर्षा से शुष्क पड़े हुए वनों को हरा भरा कर दे, और प्रातःकाल में कमल अनतरंग तिरछी दृष्टि से देखने पर खिल जाता है । जिस भी दिशा में तुम्हारी दृष्टि जाती है । प्रतिस्पर्धियों में सम्पत्ति की बाढ़ आ जाती है ।

सर्वप्रथम जो इस लोक में धर्म प्राप्ति की लालसा से त्वरित हृदय से लक्ष्मी से तादात्म्य स्थापित करने के लिए योगारम्भ {समाधि} धारण करते हैं । उनके स्थान में धनपति कुबेर के गृह से आकाश अथवा मेघ से वांछित वस्तुओं {धनों} की सर्वाधिक धारा निकलने लगती है । अर्थात् वर्षा होने लगती है ।

श्रेयस की कामना वाले अस्पष्टवेद वाणी के चूडा-पीड को कमल निलय में स्थित तुम्हारे दोनों चरणों को हृदय में धारण किये हुए शुभ्र सिर पर छत्र की छाया और पार्श्व में, चामर की चमक से, श्लाघनीय शब्दों के श्रवण से प्रसन्न होकर विचरण करता है ।

लक्ष्मी कवच -

तन्त्र साहित्य में तन्त्र के पाँच अंग माने गये हैं ।

1- पटल 2- पद्धति 3- कवच

4- शतनाम 5- सहस्रनाम ।

प्रत्येक देवता का कामना भेद से अलग अलग कवच प्राप्त होते हैं । कवच का आशय पूजन के पूर्व उपद्रव कार्य तत्वों से रक्षा पाने के लिए एक प्रकार का सुरक्षा अस्त्र जैसे- युद्ध में जाने वाले सैनिक शत्रुपक्ष से अपने को बचाने के लिए सुरक्षात्मक कोष शिरस्त्राण और कवच धारण करता है । तदवत् आध्यात्मिक जगत में आध्यात्मिक मार्गानुयायी, मन्त्रपूत रक्षा कवच धारण करती है । जिसमें देवता के विभिन्न नामों का अपने शरीर के विभिन्न स्थलों पर न्यास करते हैं । जिसमें ऋषि, छन्द और देवता, बीज, शक्ति और कीलक होता है ।

विश्वसार तन्त्र में वर्णित लक्ष्मी कवच हम यहाँ विवेचित कर रहे हैं -

चतुरक्षर विष्णु वल्लभा लक्ष्मी कवच के भगवान शिव ऋषि है अनुष्टुप छन्द है । वाग्भवा {सरस्वती} देवता है । वाग्भवं {ऐं} बीज है लज्जा {ह्रीं} शक्ति है रमा {श्रीं}कीलक है। कामबीजात्मक कवच सुकवित्व, पाण्डित्य, समृद्धि को सिद्धि के लिए विनियोजित होता है ।

इस कवच में वाग्भवा ऐं को मस्तक पर ह्रीं को दोनों आँखों के मध्य में और आँखों में शंकरी जिह्वा में मुख में, दोनों कानों में दन्त्य पंक्तियों में अधरोष्ठ में तालु मूल और हनु में, श्रीवर्णरूपिणी विष्णु वनिता लक्ष्मी, पार्वती दोनों कानों में दोनों भुजाओं में और दोनों स्तनों में, हृदय मणिबन्ध, ग्रीवा,

दोनों पार्श्व, पीठ, गुह्य प्रदेश वाम और दक्षिण उपस्थ्य, नितम्ब नाभि, दोनों जंघायें, दोनों घुटना, दोनों पैर घुटिका अंगुल मुल में स्वधा प्राण-शक्ति में सन्निना मस्तक में और महादेवी सर्वाङ्ग में कामेशी रक्षा करें। उन्नत में महादेवी पुष्टि और उत्कृष्ट में महामाया, ऋद्धि सर्वदा और शम्भुवल्लभा पार्वती सर्वत्र रक्षा करें। वाग्भवा, रमा और विष्णुमाया लक्ष्मी पूरे शरीर की रक्षा करें। जया विजया घर में हर समय रक्षा करें। शिव दूती, सुन्दरी, भैरवी, मैरुण्डा हर समय रक्षा करें। त्वरिता, उग्रतारा, कालिका, कालरात्रि, नवदुर्गा, कामाख्या योगिनी, मुद्रा, मात्रा, चक्रस्था योगिनी, लक्ष्मी ये सब सर्वत्र सर्वदा साधक की रक्षा करे ऐसी प्रार्थना की जाती है।

लक्ष्मी शतनाम सहस्त्रनाम स्तोत्र-

तान्त्रिक उपासना क्रम में इष्ट की स्तुति की जाती है स्तुति में इष्ट के अनेक प्रकार के कृत्यों और नामों का वर्णन किया जाता है। सहस्त्रनाम की परम्परा में सम्भवत: विष्णु सहस्त्रनाम प्राचीनतम् है, इसी के समानान्तर परवर्ती काल में शतनाम और सहस्त्रनाम की परम्परा से चल पड़ी। यह शक्तियों में दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, श्रीविद्या, षोडशी तारा, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुर भैरवी, धूमा, बगला, मातङ्गी, कमला, इन सबके शतनाम सहस्रनाम पाये जाते हैं। इसी प्रकार अन्य शक्तियों के भी शत एवं सहस्रनाम शिव, गणेश, सूर्य, इन्द्र इन सभी देवी-देवताओं के भी शतनाम सहस्रनाम उल्लेखनीय हैं।

शत एवं सहस्रनामों का आशय यह है कि साधक विभिन्न प्रकार के स्वरूपों का वर्णन करता है। चूँकि इष्ट के विराट स्वरूप का वर्णन कम से कम शतनाम से और अधिक से अधिक सहस्रनामों में पूर्ण होता है, साथ ही शत एवं सहस्रनामों में बीजाक्षर प्रच्छन्नरूप से रहता है। इस कारण न्यूनाधिक्य दोष का परिहार हो जाता

यह हम पद्मपुराण वर्णित लक्ष्मी सहस्रनाम का दिग्दर्शन कराते हैं इसमें सनत् कुमार और विष्णु के मध्य कथोपकथन है । जिसमें सनत् कुमार भगवान् विष्णु से भगवती के सन्दर्भ में प्रश्न करते हैं -

सृष्टि काल में सृष्टि रचना के समय व्यवधान उत्पन्न हुआ देखकर ब्रह्माचिन्तातुर हुए, खिन्न मन से विचार करते हुए समाधि को प्राप्त हुए । बहुत काल पश्चात् भगवान् विष्णु ने दर्शन दिया और उनकी चिन्ता का कारण पूछा । स्तुति करने के पश्चात् ब्रह्मा जी अपनी शङ्का उनके समक्ष प्रस्तुत किया । हे प्रभु । इस संसार की उत्पत्ति, संहार का क्या कारण है । इसके उत्तर में भगवान् विष्णु अपनी चिरसङ्गिनी लक्ष्मी के सन्दर्भ में उपदेश दिया ।

संसार की समस्त शक्तियाँ जिससे उत्पन्न होती है, वही लक्ष्मी इस चराचर जगत् की अधिष्ठात्री है, वह जिस पर प्रसन्न होती है, उसे श्रेय और प्रेय सहज ही प्राप्त हो जाता है । इन सब का कारण उन्हीं के अंश स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु शिव सभी शक्ति मान है वह ही ज्ञान आदि षड्गुणमयी और पराप्रकृति कही जाती है परा, परेशी, सर्वेशी, सर्वकारा, सनातनी आदि नामों वाली चक्र की नायिका है । जो नर भाव में पुत्र रूप से स्थित है । वह विष्णु स्वरूप है और जो नारीभाव है वह सब लक्ष्मी स्वरूप है -

"स्त्रियः समस्तः सकला जगत्सु"
दुर्गासप्तशती

प्रकृति और पुरुष के इतर कुछ भी नही है । हरि स्वयं नर नारी मय है । अर्थात् अभयदात्मक सम्बन्ध है ।

श्री पद्मा प्रकृतिः सत्वाः शान्ताच्छितिरव्यया ।
केवलानिष्कला शुद्धा व्यापिनी व्योमविग्रहा -

भगवती लक्ष्मी ही शोभादायक तत्व है । पद्मा चूंकि पद्म में सब प्रकार के सिद्धियों का वास माना जाता है । इसलिए पद्मा है वह ही प्रकृति है । प्रकृति होने के कारण सृजन, पालन, संहार निग्रह और अनुग्रह जैसे कार्यों की अधिष्ठात्री है, अपने कुछ अधिकार जैसे सृजन, पालन, संहार को त्रिदेव, ब्रह्मा, विष्णु महेश, आंशिक तौर पर प्रदान किया है, किन्तु निग्रह एवं अनुग्रह का विशेषाधिकार अपने पास ही सजो रखा है । सत्व गुण का आधिक्य होने के कारण सत्वा है, शान्ता है, और कभी न व्यय यानी क्षीण होने वाली पूर्ण शक्ति है । सम्पूर्ण कला सम्पन्न होते हुए भी निष्कला है । प्रकृति के तीनों गुणों से उपरत होने पर उसका शुद्ध स्वरूप शेष रहा जाता है । वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है । आकाश ही उसका विग्रह है व्योमपद्म को धारण किये है । यही आकाश में हैं, आकाश के मध्य में है । और आकाश के अन्त में है कभी च्युत न होने वाली है आकाश ही उसका निवास है, और परमानन्दरूपिणी है, नित्य शुद्ध है और नित्य तृप्त भी है सविकार भी है निर्विकार भी है । इच्छा, ज्ञान, क्रिया का कृतित्व, भोग शक्ति इन सब में उसी का वास है है यदि कहीं भी स्नेह का आभास होता है । तो वही दृष्टिगोचर होती है जिनका समस्त आनन्द निकल गया है (वीतराग) । ऐसे लोगों के लिए भी वही है । विभूति है, विमला है, और चांचल्ययुक्त होने के कारण चंचला है । उसका कोई अन्त नहीं है, सर्वत्र प्रविष्ट है । व्यक्त होकर विश्व के आनन्द का विकास करती है । वही सनातन है । प्रकट होने पर मूर्ति स्वरूप है और भावनाओं के निकल जाने पर उसका कोई स्त्रोत स्थिर नहीं रहता । वह ज्ञान, गेय और ज्ञान-गम्य है ज्ञान और गेय का विकास करने वाली है कोई भी प्रतिबन्ध स्वीकार न होने के कारण स्वच्छ शक्ति है । उसका स्वरूप गहन एवं गम्भीर है सर्वथा निष्कलंक निराधार, संकल्प हीन एवं निराश्रित है । सर्वदा प्रशस्त और शाश्वती है अद्वितीय

परम सुन्दरी होने के कारण किसी से भी उसको उपमा देना सम्भव नहीं है वह स्वयं यंत्र स्वरूप है । और यंत्र का वहन करने वाली है । उसका भेद नहीं किया जा सकता । परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी रूप धारण करने के कारण सरस्वती भी है । उसकी शक्ति अप्रतिहत है । सबको पवित्र करने वाली है । अपरिमित होने के कारण तर्क से ज्ञात नहीं हो सकती । सांसारिक भ्रांति का विनाश करती है ।

अक्षया होने के कारण भी वर्धनशील है । अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है तप से प्रसन्न होने वाली है लक्ष्मी, तुष्टि, महाधीरा, शान्ति स्वरूप स्वरूपा है । वही आदि शक्ति है । वह ऐसी निष्कलंक कला है जिसकी आभा कभी भी धूमिल नहीं पड़ती । अमृत का स्राव करने वाली है । वही जीव है, वही जननी भी है । महाशक्ति होने के कारण प्राणशक्ति भी है और प्राणदात्री के साथ ही रति(प्रेम) का विकास करने वाली है । नाना प्रकार के देह में भासित होने के कारण सम्पूर्ण कलाओं से युक्त है । चराचर जगत में व्यक्त अव्यक्त रूप में जो भी है वह सब वही है

महाशक्तिः प्राणशक्तिः प्राण दात्री, रतिम्भरा ।। 54

x x x

नानादेहाः महावती बहुदेव विकासिनी । 55

महालक्ष्मी ही महामाया है और वही योगमाया है । योगमाया से आवृत होने पर नैसर्गिक बुद्धि का प्रभाव नष्ट हो जाता है । व्यक्ति कर्तव्या कर्तव्य का बोध न रह जाने कारण बिल्कुल विमूढ़ हो जाता है । योगमाया के प्रभाव के कारण ही मधु-कैटभ जिसे महा बलवान असुर, जिन्होंने, भगवान विष्णु को अनवरत पांच हजार वर्ष तक युद्ध करते हुए पराभूत कर दिया था, योगमाया के प्रभाव मोहाविष्ट हो जो विष्णु की वीरता से प्रभावित हो वरदान देने को उद्यत हुए तो छले गये और शीघ्र ही पतन को प्राप्त हुए । इसी प्रकार महिषासुर, चण्ड-मुण्ड,

रक्त बीज, शुम्भ-निशुम्भ-चण्डासुर, प्रभृति सभी असुर गण जो सर्वथा उत्कर्ष को प्राप्त किये थे, सबकी यही पतन की रूपी परिणति हुई।

"नरस्य अन्धनार्थाय स्त्री शृंखला प्रकार्तिता।"

दु०स०रहस्य० 3 अध्याय

के अनुसार महापुरुष विराट ब्रह्म को ही बन्धन में डालने वाली महास्त्री है। जिसकी कीर्ति सर्वथा विमल है। अर्थात् मल और आक्षेप का लेशमात्र भी अवकाश नहीं है। भगवान की माया होने के कारण ब्रह्म का भी सृजन करने वाली है, अमन उनकी शक्ति है, निद्रादात्री एवं यशस्करी है -

"प्रकृतिर्भगवन्माया शक्तिर्निद्रायशस्करी" । 6।

चतुर्व्यूह- वासुदेव, संकर्षण (बलराम) अनिरुद्ध और प्रद्युम्न में से वह प्रद्युम्न की माता भी है। प्रद्युम्न माता होने के कारण परम साध्वी सुख-सौभाग्य की सिद्धि प्रदान करने वाली है -

"प्रद्युम्नमाता साध्वी च सुखसौभाग्य सिद्धिदा" ।। 62

सार्वातिशायी प्रभाववाली होने के कारण ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, विष्णु तथा सभी सुर एवं असुर के द्वारा पूजित होती है और सभी को मनोभिलषित वरदान प्रदान करती है सुतरां, तारिणी है, तारा है दुर्गा है, और भववारिधी से पार करने वाली सन्तारिणी है। सभी ज्ञात-अज्ञात अर्थात् पर और अपरा विद्यायें जैसे गुह्य विद्या, यज्ञविद्या, महाविद्या, सभी का स्वरूप उसी में निहित है। अन्वीक्षिकी, त्रयीवार्ता दण्डनीति ये सभी उसी के स्वरूप है। प्रसन्न होने पर सिद्धि प्रदान करती है, उसी के लिए आहुति दी जाती है इसलिए वही स्वाहा है, चूँकि पितरों को पिण्ड दान किया जाता है। इस रूप में वह पितर भी है क्योंकि वह स्वधा भी कही गयी है।

स्वस्ति सुधा सर्वार्थ साधिनि, इच्छा, सृष्टि, धुति, भूति कीर्ति, श्रद्धा, दया, मति, श्रुति, मेधा, धृति, श्रीविद्या, कही गयी है । असूया न होने के कारण वह अनुसूया है ।

सुधौतकनकप्रख्या सुवर्णकमलासना ।

हिरण्यगर्भा सुश्रोणी हारिणी रमणी रमा ।। 75

अर्थात् महालक्ष्मी का निवास स्वर्णनिर्मित है । वह स्वयं स्वर्ण के कमलासन पर विराजमान है । सोने के अण्डे से ही उत्पन्न है अथवा स्वर्णगर्भा है । चन्द्र की कान्ति के सदृश उसकी कान्ति है । वह पूर्णतया स्वर्ण से निर्मित है । अथवा हिरण्यमयी है उसकी ज्योत्सना रम्य है और शुभावहा है, त्रिलोक मण्डना नारी है, अर्थात् अद्वितीय सुन्दरी है त्रैलोक्य सुन्दरी होने के कारण त्रैलोक्य की समस्त सम्पदा उसी के अधिकार क्षेत्र में है । कमलोद्भवा होने के कारण पद्मनिलया और पदम माला विभूषिता है और दोनों हाथों में कमल धारण किये हुए है और दिव्य आभरणों से विभूषित है उसके हाथ में नाना प्रकार के आयुध विराजमान है । महानारायणी होने के कारण वीरवन्दिता है तथा काल को भी नियन्त्रित करने वाली है । भक्त पर प्रसन्न होने पर सब प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली है, अर्थात् कामधेनु है योग और क्षेम, दृष्ट और काम्य को पूर्ण करने वाले है ।

जो भक्त का अपकार करते हैं उनके लिए उग्ररूप धारण कर उनका विनाश कर डालती है-

महोग्ररूपा वाराही नारसिंही हतासुरा ।। 83

भक्त के लिए उसका स्वरूप अत्यन्त सौम्य है वह मोहिनी होने के कारण त्रैलोक्य के जीवों का मन बलात् अपनी तरफ मोहित कर लेती है । दूसरी तरफ भक्त विद्वेषियों के लिए -

स्वरूप धारण कर उनका संहार कर डालता है । एक तरफ भक्त के लिए कल्याणी, भक्त शत्रु के लिए काली का स्वरूप धारण करने में भी इसे कोई संकोच नही है । ज्वालामुखी के रूप में भक्त के हृदय के मनोविकारों को भस्मसात् करने की सामर्थ्य रहती है । संसार में जितनी भी कन्यायें हैं वे सभी लक्ष्मी के स्वरूप है धनदा एवं सूर्य की शक्ति सूर्या भी है कुल परम्परा की जो भी रीतियां चली आ रही है वे सभी लक्ष्मी के ही रूप है महाकाली का स्वरूप धारण करने पर महालक्ष्मी अपने दोनों हाथों में कमल शङ्ख चक्र, गदा, धारण किये हैं । गले में हार है, पैर में नूपुर है, गोर वर्णा है, पद्मिनी होने के कारण शरीर से सुगन्ध बह रही है भगवती महालक्ष्मी सृजन, पालन, और संहार की शक्तियों को समाहित कर अतिशक्ति शाली सिंह को अपना वाहन बनाया महालक्ष्मी परम कल्याणी है, परम स्वर्णवस्त्र धारण किये हुए है और सम्पूर्ण शरीर पर अनेक प्रकार के आभूषणों को धारण किये हुए है । सृष्टि के समस्त पदार्थ को स्वर्ण कलश में संजोए हुए, स्वर्ण कमल लिए हुए चराचर जगत् की मां, भगवान् विष्णु के बाये भाग में शोभायमान है यही आद्या शक्ति एवं सनातनी है । उनसे पूर्व कुछ भी न था, अर्थात् सृष्टि का प्रारम्भ और विकास सब कुछ उन्हीं से है ।

ज्ञान-विज्ञान-सम्पत्ति, सुख, वाद-विभूति, सब कुछ प्रदान करने वाली हरिप्रिया को नमस्कार है ।

विज्ञान सम्वत्सुखदां सनातनीं

विचित्र वाग्भूतिकरीं मनोहराम् ।

अनन्त सामोदसुख प्रदायिनीं,

नमाम्यहं भूतिकरीं हरिप्रियाम् ।। 5

प्रसन्न होने पर माँ जैसे अपने पुत्रों के कष्टों को दूर करने का प्रयास करती है। वैसे ही महालक्ष्मी भी प्रणाम करने वाले अथवा जिनका चित्त उसके चरणों में रमा है उसके हृदय शोक को अपने कटाक्ष मात्र से दूर करने वाली है। वही परम शान्ति है, शरणागत की रक्षा का व्रत ले रखा है। कमनीय गुणों को अपने में समाहित किये है। दुरित का नाश करने वाली है धन-धान्य, समृद्धि वाली होने के कारण धात्री है -

> शान्त्यै नमोऽस्तु शरणागतरक्षणायै
>
> कान्त्यै नमोऽस्तु कमनीयगुणाश्रयायै।
>
> क्षान्त्यै नमोऽस्तु दुरितक्षयकरणायै,
>
> धात्र्यै नमोऽस्तु धनधान्यसमृद्धिदायै ।। 9 ।।

जिसकी आधा कला से विष्णु रुद्र, शक्र {इन्द्र} प्रभृति प्रमुख देव उत्पन्न हुए है और जीवित है। साथ ही सभी शक्तियों और प्रभुत्व को प्राप्त कर उपभोग कर रहे हैं वह महालक्ष्मी ही है। जीव के जन्म लेने पर उसके भाग्य को ब्रह्मा लिपिबद्ध करते है, वह महालक्ष्मी की ही शक्ति से ही ऐसा करते हैं। महालक्ष्मी ने अपनी जिन कलाओं से भगवान् विष्णु को आपूरित कर दिया है और भक्त भी महालक्ष्मी को प्रसन्न कर उसी कलाओं की कामना करता है। इसका भीषण स्वरूप परिलक्षित होता है। भगवान शङ्कर के सहचरी पार्वती होकर कामोपभोग सुख प्रदान करती है।

हिरण्यनताश्रया -अर्थात् स्वर्ण और रजत {चाँदी} के रूप में सभी घरों में साक्षात् दर्शन देती है हाथियों के नाद से {चिंघाड़ से} शैय्या त्याग {नींद त्याग} करती है अथवा प्रसन्न होती है। हिरण्यपद्मवर्णा, हेममालिनी, पद्मानना देवमाता और अमृत से उत्पन्न होने के कारण अमृतोद्भवा है। कर्दम ऋषि की पुत्री है।

सूर्य के वर्ण वाली है और चन्द्रमा की आभा धारण किये हुए है अम्बिका प्रिया है-

वरार्थिता वरारोहा वरेण्या विष्णु वल्लभा ।

कल्याणी वरदा वामा वामेशी विन्ध्यवासिनी ।। 93

योग निद्रा-योगरता देवकी कामरूपिणी ।

कंस विद्या विद्राविणी दुर्गा कुमारी कौशिकी क्षमा ।। 94

दारिद्य्दुः खशमना घोरदुर्गार्तिनाशिनी ।। 98

भक्तार्तिशमना भव्या भव भार्गविहारिणी ।

क्षीराब्धितनया पद्मा कमलाधरणी धरा ।। 99

रुक्मिणी रोहिणी सीता सत्यभामा यशस्विनी ।

प्रज्ञाधाराऽमित प्रज्ञा वेदमाता यशोवती ।। 100

समाधिभावना मैत्री करुणा भक्तवत्सला ।

महालक्ष्मी के अनेक स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं ।

जैसे - व्योमलक्ष्मी महालक्ष्मीस्तेजो लक्ष्मीः सुजाज्वला ।

रसलक्ष्मीर्जगद्योनिर्गन्धलक्ष्मीर्वनाश्रया ।। 119

इसके साथ श्री के रूप में इसका स्वरूप द्रष्टव्य है -

राजश्री रूपसहिता ब्रह्मश्रीर्ब्रह्म वन्दिता ।। 125

जयश्रीर्जयदा ज्ञेया सर्गश्रीः स्वर्गतिसताम ।

सुपुष्पा पुष्पनिलय, फलश्रीर्निष्कलप्रिया ।। 126

भारतीय संस्कृति में गाय को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है । यहाँ तक कि पृथ्वी पर पाप भार बढ़ जाने पर पृथ्वी भी गाय का स्वरूप धारण कर अखिल ब्रह्माण्ड नायक से अपने उद्धार की कामना करती है । इसके लिए शास्त्र प्रमाण है । गाय चूँकि जीवनधारक तत्त्व है । और माँ भी । गाय का गोमूत्र गोमय, गोक्षीर, गोदधि, गोघृत, -प्रत्येक पूजन में सर्वातिशायी है। इसके बिना कोई भी

धार्मिक कृत्य पंचगव्य के बिना अपूर्ण है -

गोमूत्र गोमयक्षीरदधि0 - 132

सात्विक, राजसिक, तामसिक तीनों गुणों का आश्रय ग्रहण कर या सृष्टि, सृजन, पालन और संहार का कारण है। यह नित्य उदित होती है और नित्य देखी जाने वाली है।

विदेहजनक द्वारा पूजित कन्या सीता है और विजय प्रदान करने वाली है।

विदेहपूजिता कन्या मायाविजयावाहिनी। 140

भक्त पर कृपा करने पर भक्त के घर में निवास करती है और रुष्ट होने पर पूरे ऐश्वर्य के साथ अपना प्रभाव समेट लेती है अर्थात् चली जाती है।

भारतीय संस्कृति में वर्णित नदियाँ जैसे गङ्गा वितस्ता {झेलम}, यमुना, चन्द्रभागा, सरस्वती, ये लक्ष्मी के ही रूप हैं। देवराज इन्द्र के दरबार की नृत्यांगनायें तिलोत्तमा, उर्वशी, रम्भा, मेनका, प्रभृति की स्वामिनी लक्ष्मी ही है। भगवान विष्णु के वक्षःस्थल पर निवास करने वाली महालक्ष्मी सा देवी पापघ्नी सान्निध्यं कुरुतान्मम।

लक्ष्मी हृदय -

जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंगों का अलग-अलग महत्व एवं कार्य का अलग-अलग कार्य क्षेत्र है । एक का कार्य दूसरे के सम्भव नही है तथापि सबमें समाजस्य रहने पर सारी प्रक्रिया सुचारु रूप से चलती रहती है । तथापि हृदय का अपना विशेष महत्त्व है और सबसे सम्वेदन शील अङ्ग माना जाता है कोई भी बात होने पर हृदय ही अधिक प्रभावित होता है । शुभ-संवाद हो या अशुभ सुखद समाचार हो या दुखद, अपना प्रभाव सीधे हृदय पर ही डालता है । कोई बात होने पर व्यक्ति कह उठता है कि आमुक ने हमारे हृदय को छू लिया या मर्मस्पर्शी कहा है । तदवत् ही तंत्रशास्त्र के पंचाङ्ग पटल, पद्धति, कवच शतनाम सहस्रनाम के मध्य में हृदय नामक स्तोत्र रखा गया है । कोई भी देवी-देवता हो तो तंत्र के माध्यम से उसकी अर्चना उपासना साधना होगी तो उसके लिए हृदयनामक स्तोत्र अवश्य होगा । हृदय के नामक जैसे शरीर निष्क्रिय हो जाता है वैसे ही हृदय(स्तोत्र) के अभाव में देवता का स्वरूप न तो स्पष्ट होगा और न ही पूजन सार्थक होगा, क्योंकि जब तक भक्त के उदगार देवता के हृदय का स्पर्श नही करेगा । तब तक उद्देश्य पूर्ण नही होगा ।

मंत्र महार्णव और शाक्त प्रमोद जैसे तंत्र ग्रंथों में विष्णुवल्लभा महालक्ष्मी का हृदय स्तोत्र वर्णित है ।

महालक्ष्मी हृदय माला मंत्रस्तोत्र के भार्गव ऋषि हैं अनुष्टुप प्रभृति अनेक छन्द हैं । आधा महालक्ष्मी देवता । श्रीं (लक्ष्मी) ह्रीं बीज है । ह्रीं शक्ति है ऐं कीलक । महालक्ष्मी की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए इसका विनियोग होता है

ध्यान -

"हस्तद्वयेन कमले धारयन्तो स्वलीलया ।
हार नूपुर संयुक्ता लक्ष्मीं देवीं विचिन्तये ।।"
ॐ शङ्ख चक्र गदा हस्ते शुभ्रवर्णे: सुवासिनि ।
मम देहि वरं लक्ष्मि सर्वसिद्धि प्रदायिनि ।।"

मंत्र -

"ॐ श्रीं ह्रीं ऐं महालक्ष्म्यै कमलधारिण्यै सिंहवाहिन्यै स्वाहा ।"

भक्त यह कामना करता है कि लक्ष्मी- अपनी स्फुट कलाओं से मेरे भाल में मेरे भाग्य लिपि को लिखे । आंखों में मेरी बैकुण्ठ की कला रहे । लक्ष्मी की वरिष्ठ कला मेरे सत्यरूपी वाणी में रहे । मेरे दोनों हाथों में श्वेत द्वीप की कला रहे, अर्थात् परोपकार की भावना बनी रहे ।

गुदास्तामद्भाले परमपदलक्ष्मी: स्फुटकला,
सदा वैकुण्ठ श्रीनिविसतु कला में नयनयो: ।
वसेत्सत्ये लोके मम वयसि लक्ष्मी वरकला
श्रियश्वेतद्वीपे निवसतु कला में स्वकरयो: ।। 22

भक्त की यह भी कामना रहती है ।

तावन्नित्यं ममाङ्गेषु क्षीराब्धौ श्रीफलावसेत् ।
सूर्याचन्द्रमसौ यावद्यावल्लक्ष्मीपति: श्रिया ।। 23

व्यभिचारिणी व्यक्ति भक्ति होने पर भगवती महालक्ष्मी की कृपा प्राप्त होना सम्भव नहीं है । एकनिष्ठ भक्ति होने पर भक्त के लिए वह माता, गुरु, सद्गति संजीविनी, तथा सबकुछ वही होनी चाहिए । तभी उसकी कृपा

माता पिता त्वं गुरु सदगति श्री,

त्वमेव सञ्जीवन हेतुभूता ।

अन्यन्न मन्ये जगदेक नाथ्ये ।

त्वमेव सर्व ममदेवि सत्ये ।। 80 ।।

सिद्ध लक्ष्मी स्तोत्र -

सिद्ध लक्ष्मी स्तोत्र के ऋषि हिरण्यगर्भ, छन्द अनुष्टुप महाकाली महालक्ष्मी, महासरस्वती देवता:, श्री {रमा} बीज, ह्रीं {माया} शक्ति क्लीं {काम} कीलक क्लेश पीडा, निवृत्यर्थ, दु:ख दर्द, नाशार्थ और सर्वकार्य सिद्धयर्थ इसका विनियोग होता है ।

ध्यान -

"ब्राह्मी च वैष्णवी भद्रां षड्भुजां च चतुर्मुखीम् ।

त्रिनेत्रां खड्•गत्रिशूल पद्मचक्रगदाधराम् ।। 1 ।

पीताम्बरां देवी नानालङ्•कारभूषिताम् ।

तेज: पुञ्जधारी श्रेष्ठां ध्यायेद बालकुमारिकाम् ।। 2 ।

ॐकार रूप अव्यय विष्णु को आनन्द प्रदान करने वाली बीजरूपा महालक्ष्मी क्लीं रूप में शत्रु को नाश करने वाली, आनन्दरूपी अमृत को प्रदान करने वाली श्री रूप में राक्षसों का संहार करने वाली, अपने तेज से प्रकाशित सर्वदा भक्त, का कल्याण करने वाली महालक्ष्मी है, आकार के रूप में लक्ष्मी, ॐकार के रूप में अव्यय विष्णु और मकार रूप में अव्यक्त पुरुष देवी प्रणव कहलाते हैं -

अकारे लक्ष्मीरूपं तु उकारे {विष्णुमव्ययं ।

मकार: पुरुषोऽव्यक्तो देवीप्रणव उच्यते ।। 4 ।।

शत्रु के लिए करोगे सूर्य के समान प्रज्ज्वलित और भक्त के लिए करोड़ों

चन्द्रमा के समान शीतल महालक्ष्मी चन्द्र और सूर्य के मध्य सूक्ष्म रूप में स्थित रहकर पूरी सृष्टि का संचालन करती है ॐकार रूपी परमानन्द रूपी स्वरूप सर्वदा सुख को प्रदान करने वाली परम सुन्दरी सिद्ध-लक्ष्मी, मोक्ष-लक्ष्मी, आय लक्ष्मी को नमस्कार है ।

अम्बिका, गौरी, वैष्णवी, कमला, सुन्दरी, विष्णुशक्ति, कात्यायनी वाराही हरिवल्लभा छद्मगनी देवि का सिद्ध लक्ष्मी, और हंसवाहिनी ये बारह लक्ष्मी मानी गयी है ।

<u>लक्ष्मी लहरि</u> -

सोलहवीं शताब्दी के मुगल शासक शाहजहाँ के दरबारी एवं राजपंडित पं राजजगन्नाथ अपने समय के सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व के थे । शाहजहाँ को उपपत्नी से उत्पन्न लवङ्गी" नामक यवन कन्या के मोहपाश में आबद्ध होने के कारण शाहजहाँ से उसे प्राप्त कर कामोपभोग सुख में अत्यधिक लीन हो जाने कारण, तत्कालिक समाज में अत्यधिक चर्चित एवं जातिच्युत हो गये । भट्टोजिदीक्षित आदि जैसे लोगों के द्वारा अपमानित किये जाने पर अत्यधिक विषम परिस्थितियों में भी हार न मानने वाले उद्भट्ट मनीषि पंडितराज जगन्नाथ रसगङ्गाधर तिलक, मनोरमा कुचमर्दन एवं जैसे ग्रन्थों को लिखकर तत्कालिक पंडितों का प्रतिकार किया, और अपनी ओजस्वी लेखनी से शक्ति स्तोत्रों का प्रणयन किया । लक्ष्मी लहरी, गङ्गा लहरी प्रभृत्त मार्मिक स्तोत्र इसके ज्वलन्त प्रमाण है ।

<u>लक्ष्मी लहरि</u> -

विकसित नीलकमल समुदाय से नीराजन की भांति कान्ति रखने वाले कटाक्षों के अमृत लहरों की परम्पराओं से शुभभङ्गिमाओं से युक्त वह भगवान् विष्णु के सम्बन्ध से श्याम कान्ति वाली लक्ष्मी जी लज्जाहीन दीन वेदनाभाव से

चन्द्रमा के समान शीतल महालक्ष्मी चन्द्र और सूर्य के मध्य सूक्ष्म रूप में स्थित रहकर पूरी सृष्टि का संचालन करती है ऊँकार रूपी परमानन्द रूपी स्वरूप सर्वदा सुख को प्रदान करने वाला परम सुन्दरा सिद्ध-लक्ष्मी, मोक्ष-लक्ष्मी, आय लक्ष्मी को नमस्कार है ।

अम्बिका, गौरी, वैष्णवी, कमला, सुन्दरी, विष्णुशक्ति, कात्यायनी वाराही हरिवल्लभा छगनी देवि का सिद्ध लक्ष्मी, और हंसवाहिनी ये बारह लक्ष्मी मानी गयी है ।

लक्ष्मी लहरि -

सोलहवीं शताब्दी के मुगल शासक शाहजहाँ के दरबारी कवि राजपंडित पं राजजगन्नाथ अपने समय के सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व के थे । शाहजहाँ की उपपत्नी से उत्पन्न लवङ्गी" नामक यवन कन्या के मोहपाश में आबद्ध होने के कारण शाहजहाँ से उसे प्राप्त कर कामोपभोग सुख में अत्यधिक लीन हो जाने कारण तत्कालिक समाज में अत्यधिक चर्चित एवं जातिच्युत हो गये । भट्टोजिदीक्षित आदि जैसे लोगों के द्वारा अपमानित किये जाने पर अत्यधिक विषम परिस्थितियों में भी हार न मानने वाले उद्भट मनीषि पंडितराज जगन्नाथ रसगङ्गाधर तिलक, मनो कुचमर्दन एवं जैसे ग्रन्थों को लिखकर तत्कालिक पंडितों का प्रतिकार किया, और अ ओजस्वी लेखनी से शक्ति स्तोत्रों का प्रणयन किया । लक्ष्मी लहरी, गङ्गा लहरी प्रभृत्ति मार्मिक स्तोत्र इसके ज्वलन्त प्रमाण है ।

लक्ष्मी लहरि -

विकसित नीलकमल समुदाय से नीराजन की भांति कान्ति रखने वाले कटाक्षों के अमृत लहरों की परम्पराओं से शुभभङ्गिमाओं से युक्त वह भगवान विष्णु के सम्बन्ध से श्याम कान्ति वाली लक्ष्मी जी लज्जाहीन दीन वेदनाभाव से भरे हुए अज्ञानी सामाजिक मेरी अधिकाधिक रक्षा करें ।

अन्तःकरण में करुणा के संचार में निपुण एवं हाथियों के प्राण की रक्षा करने के लिए जो स्निग्ध ऐसे तुम्हारे दृगन्त (कृपा कटाक्ष) मेरे ऊपर होवें क्योंकि जिन कृपा कटाक्षों को प्राप्त करके मतवाले हाथियों के समुदाय के गण्डस्थल से चूने वाले मद जल से भीग गया है। दरवाजा जिसका ऐसा राजा सुख का अनुभव करने वाला हो जाता है।

हे मातः। कृपा पूर्वक तुम्हारा यह दृष्टिपात जिसके ऊपर सुशोभित होता है, उसका गुण गान देदीप्यमान स्वरूप देवाधिदेव महादेव आदि प्रमुख देवता करते हैं। एवं उस व्यक्ति के पास कामदेव के बाण से पीड़ित आकृष्ट चित्रवाली एवं वक्षस्थल पर लटकने वाले केशों में सुमनों वाली स्वर्गलोक की युवतियां भी आ जाती हैं।

हे देवी। लक्ष्मी। जिसके ऊपर तुम कृपा करती हो। उसके समीप मृग लोचनाओं के संगीत स्वर की मधुर भङ्गिमायें एवं दूर मद जल से मतवाले हाथियों के बच्चों का अतिशय विशाल निनाद तथा बाहर घोड़ों की हिनहिनाहट का कोलाहल होने लगता है।

हे मातः। अनगिनत परम पुण्यशील इन्द्रादि देवों से सुपरिचित लौकिक जन्म-स्थिति संहार करने के कौशल में कुशल एवं ऊपर बढ़ते हुए सुधासागर की तरङ्गों की लीला का अनुसरण वाले तुम्हारे ये कृपा कटाक्ष मेरे पाप पुञ्ज को विनष्ट कर दे।

झुकते हुए शिरोभूषण पंक्तियों वाले भगवान् शिवके सुशोभित उत्तरीय के प्रक्षेप से चञ्चल सर्पों के फूत्कार से भयभीत सा एवं सुन्दर फूले हुए कमल की भी कोमलता को हरण करने वाले अनिर्वचनीय समुद्रदुहिता लक्ष्मी के चरण मेरे चित्त में चिरकाल तक संचरण करने वाले हों।

और लाह की अरुणिमा का नियन्त्रण करने वाली दोपहरी {बन्धूक} पुष्प के कान्ति के समुदाय को भी प्रतिबन्धित करने में कुशल मनुष्यों के अन्तःकरण में विद्यमान घोर अज्ञान रूपी अन्धकार को निश्चय ही अपहरण करने में प्रातःकाल की ऊषा छटा की भांति यह तुम्हारे चरण कमलों की कान्ति सर्वतोभावेन सर्वश्रेष्ठ है ।

हे माता प्रातःकाल विकसित होने वाले कमलवन में संचार के समय परागों के मृदुल अग्रभाग की कान्ति को धारण करने वाले प्रशस्य करुणायुक्त तुम्हारे कमलवत् चरणों में मेरी यह कर्कश वाणी कैसे प्रवेश करे ।

हे मां जो तुम्हारी ईषद्-हास्य-चन्द्रिका में मज्जन करने वाले मणि सदृश दांतों की कान्ति, अमृत प्रवाहवत् विश्व को सिक्त करने वाली विमल मूर्ति का स्मरण करता है । उस धन्य व्यक्ति के मुख कमल से निरन्तर अनेकानेक अनन्त विचारयुक्त नूतनवाणियां सातिशय रूप में प्रस्फुटित होती है । देवों द्वारा मनोभिलषित शिव-पार्वती विवाह में कामदेव को शङ्कर की क्रोधाग्नि में अपनी आहुति देनी पड़ी । मात्र उसका इतना दोष था कि समाधिस्थ शङ्कर को पार्वती की तरफ उनको उन्मुक्त करने के लिए मर्यादा का उल्लङ्घन कर शिव के मन में काम जागृत किया । लेकिन क्रोधाग्नि में भस्म होकर वह और उग्र हुआ । जिसके परिणामोस्वरूप भगवती लक्ष्मी का भक्त होने के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न की कि शङ्कर जी को भगवती के पैरों में गिरकर क्षमा याचना करनी पड़ी ।

संसार मिथ्या है ऐसा वेद वचन है । सृष्टि के सृजन कर्ता भी तुम्हारे कोख से जन्म लेते हैं और फिर इस बात को भूल जाते हैं ये कैसी विचित्र लीला है । अर्थात् हे विष्णु वल्लभे तुम्हारा प्रभाव ही सर्वातिशायी है ।

महालक्ष्मी इच्छामात्र से कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का सृजन कर डालता है और दया रूपी अमृत समुद्र में अवगाहन कराने के लिए अपने भक्तों को सदैव तत्पर रहती है । ब्रह्मा अपने हृदय रूपी कमल में उसी को धारण करते हैं और सभी प्रकार के दुश्चिन्ताओं से मुक्त हो जाते हैं ।

महालक्ष्मी की अलभ्य कृपा प्राप्तकर छोटी बुद्धि वाले कविकुल को परम्परा बना देते हैं, क्योंकि लक्ष्मी के करकमल में मकरन्द का वास है उसके करकमल के आशीर्वाद रूप में उठ जाने पर प्रकृत जन्य उसकी स्तुति में काव्य रचना करने में समर्थ हो जाते है ।

भगवान विष्णु बहुत समय तक तपस्या करने के पश्चात् महालक्ष्मी की कृपा प्राप्त करने में समर्थ हुए अर्थात् लक्ष्मी को प्राप्त हुए । उसकी कृपा से हरि उसका आलिङ्गन करते हैं, और हाथों से उसके प्रणय व्यवहार से दान देने की क्षमता रखते हैं ।

सिर पर मुकुट धारण किये हुए लक्ष्मी के कृपाकांक्षी जब उसके पैरों में प्रणाम करते हैं । तो मुकुट की ज्योत्सना चरणपीठ पर भासित हो उठती है । तुम्हारे दृगम्ब भोज को प्राप्त कर उच्च स्थिति को प्राप्त कर जाता है ।

लक्ष्मी के दोनों तरफ बड़े-बड़े हाथी अपने सुण्डाग्र में मणि निर्मित कलश में जल भरकर अभिषेक करते हैं जिससे लक्ष्मी और प्रसन्न होती है । दामोदर गृहणी । साधकों पर अपनी दया-दृष्टि का विस्तार करें ।

विलग्नौ ते पार्श्वद्वयपरिसरे यत्करिणौ
करोन्नीतैरन्वन्मणिकलशमुखास्यगलितैः ।
निषिञ्चन्तौ मुक्तामणिगणजयैस्त्वां जल कणै-
र्नमस्यामो दामोदर गृहिणि दारिद्रदलिताः ।। 39

उपसंहार -

ऋग्वेद न केवल प्राचीन भारतीय हिन्दू संस्कृति का धरोहर है वरन् विश्व संस्कृति का भी प्राचीनतम् सर्वमान्यग्रन्थ है । ऋग्वेद के अष्टक एवं मण्डल-क्रम दोनों ही रूपों के संकलन क्रम में श्रीसूक्त वर्णित है । अष्टक क्रम में चतुर्थ अष्टकान्त में मण्डलक्रम में पन्चममण्डल में है किन्तु अब इन स्थलों से पृथक् कर ऋग्वेद के परिशिष्ट भाग में इसका समयोजन कर दिया गया है । इसमें श्री एवं लक्ष्मी के सम्बन्धित 39 ऋचायें श्रीसूक्त के नाम से संग्रहीत है जो इस बात का परिचायक है कि प्रारम्भ से ही लक्ष्मी धन को महत्त्व स्वीकार कर लिया गया था । ऋग्वैदिक देवताओं में देवियों का ही वर्णन है । जिनमें ऊषा वागम्भृणी, सूर्या, उर्वशी, यमी, इत्यादि के साथ "श्री" या लक्ष्मी भी स्थान पाये हैं इससे यह ज्ञात होता है कि पुरुष देवों के साथ स्त्री देवता भी महत्त्वपूर्ण स्थान ऋग्वैदिक काल में प्रस्थान प्राप्त कर चुके थे । पुरुष देवों की उपासना के साथ-साथ स्त्रीदेव उपासना की धारा समाज में बह रही थी । जिसमें न केवल उच्चवर्ग के लोग ही वरन् पूरा का पूरा समाज डुबकी लगा रहा था । कालान्तर में भारतीय षट् आस्तिक दर्शन और षट्नास्तिक दर्शन के साथ भारतीय शाक्त दर्शन को भी स्थायी आधार समाज में प्राप्त हो चुका था । इस जिसकी परिणति ऋग्वेद के दशम् मण्डल के "वाग् सूक्त" और परिशिष्ट में "श्रीसूक्त" है ।

श्रीसूक्त में अग्नि के माध्यम से लक्ष्मी प्राप्ति की कामना यह प्रदर्शित करती है कि लक्ष्मी का स्थान जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण है, लक्ष्मी ही प्राणतत्त्व है बिना लक्ष्मी के जीवन उसी प्रकार हो जाता है जैसे प्राण बिना शरीर-

"त्वया बिना जगत् सर्वं, मृततुल्य च भाषते"

अग्नि से ऋग्वेद की उत्पत्ति है तदनुसार ही अग्नि को "जातवेदस्" शब्द से सम्बोधित करते हुए यह कामना की गयी है कि अग्नि हमें लक्ष्मी प्रदान करे । दृष्टि की व्यापकता इस बात में निहित है कि समाज में प्रकृति में राष्ट्र में, जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है वह चाहे सत् हो या असत् वह सब लक्ष्मी का ही रूप है -

"गोदायी, धनदायी, अन्नदायी" अर्थात् गोधन, कृषिधन, पशुधन ये सभी प्रत्यक्ष लक्ष्मी के दर्शन कराने वाले हैं ।

प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक प्रत्येक देवी-देवता अपने स्थानों से उत्थान और पतन को प्राप्त किये है किन्तु लक्ष्मी ही एक ऐसी है । जो अपना स्थान एक बार बना लेने के बाद शाश्वत् अक्षुण्ण बनाये हैं । लक्ष्मी को वैभव और सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सम्बोधित किया जाता है- श्रयते या सा इति श्री अर्थात् जो परब्रह्म का आश्रय ग्रहण । कर स्थिर है । वह श्री और लक्ष्यते विष्णु इति लक्ष्मी अर्थात लक्ष्मी वह है जो स्वयं को लक्षित कराती है, और विष्णु को लक्ष्य करती है लक्ष्मी वह शक्ति है । जो मानव जगत् की समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली है । इससे प्रभावित होकर योगीन्द्र भर्तृहरि अपने नीतिशतक में कहा है - पंडित गुणज्ञ कुलीन विद्वान वक्ता व रूपवान वही है जिसके पास लक्ष्मी है -

यस्याऽस्ति वित्तं स नरः कुलीनः,

स पण्डितः स श्रुतिवान् गुणज्ञः ।

स एव वक्ता स च दर्शनीयः,

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ।।

आधुनिक युग में लक्ष्मी का स्वरूप पग पग पर दृष्टिगोचर हो रहा है पूर्व काल को अद्यनातन काल तक लक्ष्मी के लिए ही लड़ाई होती चली आ रही है जो बलवान् होता है वही उसका उपभोग करना चाहता है जो दीन है, दरिद्र्य है, अकर्मण्य है उसे लक्ष्मी के लिए कोई स्थान नहीं है । महाभारत के उद्योग पर्व "पुरुषाऽधनंक्षा:" अर्थात् लक्ष्मी का अभाव मनुष्य के लिए मृत्यु का कारण है । आज की इस आपाधापी भरे युग में लक्ष्मी की कृपा की आकांक्षा सब में बढ़ती जा रही है । लक्ष्मी को प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य इसके दुर्गुणों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है । इसीलिए अलंकारिक भाषा में लक्ष्मी का वाहन "उलूक" कहा गया है । जिसका प्रतीक है अन्धकार । प्रकाश एवं अन्धकार का शाश्वत् सम्बन्ध है, उलूक का कहना है ऐ धनवानों । लक्ष्मी को प्राप्त करने के पश्चात् तुम इसका दुरुपयोग न करो अन्यथा शीघ्रातिशीघ्र तुम पतन को प्राप्त हो जाओगे । उलूक चूंकि अन्धकार का प्रतीक इस व्याज से कहता है कि मैं अन्धकार में देख लेता हूँ इसलिए लक्ष्मी के साथ मेरा शाश्वत् सम्बन्ध है ।

लक्ष्मी के एक हाथ में कमल रहता है यह भारतीय संस्कृति का महाप्रतीक माना जाता है । कीचड़ से उत्पन्न होते हुए भी वह उसको पंकिल नहीं होता निर्मल और पवित्र बना रहता है । इसका आशय यह है कि हमे संसार में रहते हुए उसमें आसक्त नहीं होना चाहिए । सांसारिक सुखों का उपभोग करना चाहिए किन्तु उसके प्रति व्यामोह नहीं होना चाहिए ।

कमल को प्रकाश प्रिय है सूर्योदय से सूर्यास्त तक वह सूर्याभिमुखी रहता है और अपनी पूरी प्रसन्नता का प्रदर्शन करता है अन्धकार से मानो उसे वैर है ।

श्री और लक्ष्मी का अभिप्राय न केवल भौतिक धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य से है वरन् मन का वह एक सात्त्विक भाव भी है मन के स्वस्थ निरोग, पवित्र शक्तिशाली, और शुभ रूपों में रहने से आन्तरिक सुख शान्ति की अनुभूति होती है। कामना यह की जाती है कि हमें लक्ष्मी का वह स्वरूप प्राप्त हो, जो हमें भौतिक सम्पत्ति के साथ-साथ मानसिक शान्ति का प्रदाता हो।

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमानपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतिं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम्॥

परिशिष्ट

संस्कृत हिन्दी कोष

कमलम् - ‖कं जलमलति भूषयति -कम + अल् + अच् ‖ । कमल- कमल मनस्मसि-कमले च कुवलये तानि कनकलतिकायाम्- काव्य ।0, इसी प्रकार हस्त, नेत्र चरण आदि, जल[2] ताँबा[3] दवादारु,[4] औषधि 5 सारस पक्षी 6· मूत्राशय - ल ; ।, सारस पक्षी 2· एक प्रकार का मृग । सम0 अक्षी ‖स्त्री‖ कमल जैसी आँखो वाली स्त्री, आकरः + । · कमलों का समूह 2· कमलों से भरा सरोवर- आलया लक्ष्मी की उपाधि- मुद्रा0 2- आसनः कमल पर स्थित, ब्रह्मा-क्रान्तानि पूर्व कमलासनेन- कु0 7/70- ईक्षणा कमल जैसे नेत्रों वाली स्त्री- उत्तरम-कुसुंभ का फूल,-खंडम-कमल का समूह- जः ।, ब्रह्मा का विशेषण 2· रोहिणी नाम का नक्षत्र- जन्मन् ‖पु0‖ -भवः, योनिः,-संभवः कमल से उत्पन्न ब्रह्मा की उपाधि ।

कमलकम् ‖ कमल + कन् ‖ छोटा कमल ।

कमला ‖कमल+ अच्+ टाप् ‖ लक्ष्मी का विशेषण 2·श्रेष्ठ स्त्री । सम0 -पतिः, - सखः विष्णु की उपाधि ।

कमलिनी ‖कमल + इनि + ङीप् ‖ । कमल का पौधा ;

- साऽभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धां न सुप्ताम- मेघ0 90, रम्यान्तरः कमलिनी-हरितैः सरोभिः - रा0 4/10 रघु0 9/30, 19/112, कमलों का समूह 3-कमल-स्थली ‖जहाँ कमल बहुतायत से हों ‖ ।

1- संस्कृत हिन्दी कोश - पृ0- 247

लक्ष्मी: - (स्त्री०) (लक्ष् + ई, मुट् + च) 1. सौभाग्य, समृद्धि, धन दौलत- सा लक्ष्मी रूपकुरुते यया परेषाम्-कि० 8/18, तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि भर्तृ० 2/17 2. सौभाग्य, अच्छी किस्मत, 3 -सफलता, सम्पन्नता-उत्तर० 2/18 4- सौन्दर्य, प्रियता, अनुग्रह, लावण्य, आभा, कान्ति-मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति -रा० 1/20, मा० 9/25, 5/39, 52, 9/2, कु० 3/49 5. सौभाग्यदेवी, समृद्धि, सौन्दर्य, लक्ष्मी, विष्णु की पत्नी मानी जाती है (देवासुरों द्वारा अमृत प्राप्ति के लिए समुद्रमंथन किये जाने पर अन्य मूल्यवान रत्नों के साथ लक्ष्मी भी समुद्र से निकली) - इयं गेहे लक्ष्मी:-उत्तर० 1/38, राजकीय या प्रभुशक्ति, उपनिवेश, राज्य (यह बहुधा रानी की सपत्नी के रूप में मानी जाती है, और राजा की रानी के रूप में इसका मूर्तवर्णन किया जाता है)- तामेकभार्यां परिवादभीरोः साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य, वक्षस्यसंघट्टसुखं वसन्ती रेजे सपत्नी रहितेव लक्ष्मी:- रघु० 14/86, 12 26 7. नायक की पत्नी 8. मोती 9. हल्दी । सम० - ईश: । विष्णु का विशेषण 2. आम का वृक्ष 3. समृद्ध या भाग्यशाली पुरुष- कान्त: 1. विष्णु का विशेषण 2. राजा,- गृहम् लाल कमल का फूल,-ताल: एक प्रकार का ताड़ का वृक्ष,-नाथ: विष्णु का विशेषण-पति: विष्णु का विशेषण, 2- राजा- विहाय लक्ष्मीपति- लक्ष्म कार्मुकम्- कि० 1/44 3. सुपारी का पेड़, लौंग का वृक्ष-पु: 1-घोड़ा 2-कामदेव का नामान्तर पुष्प लाल- पूजनम् लक्ष्मी के पूजा करने का कृत्य (दुल्हन के साथ मिलकर किया जाने वाला अनुष्ठान)-पूजा कार्तिक मास की अमावस्या के दिन किया जाने वाला लक्ष्मीपूजन (मुख्य रूप से साहूकार और व्यापारियों के द्वारा -जिनका कि वाणिज्य वर्ष, आज के दिन समाप्त होकर नया वर्ष आरम्भ होता है), फल: बिल्व वृक्ष-

---

1- संस्कृत हिन्दी कोश - पृ० सं० -265-866

रमण: विष्णु का विशेषण,-वसति: {स्त्री0} "लक्ष्मी का निवास " लाल कमल का फूल -वार: बृहस्पतिवार,-वेष्ट: तारपीन, -सख: लक्ष्मी की कृपा का पात्र- सहज:,-सहोदर: चन्द्रमा के विशेषण ।

लक्ष्मीवत् - {वि0} {लक्ष्मी + मतुप्,वत्वम्} । सौभाग्यशाली, किस्मत वाला, अच्छे भाग्य वाला 2• दौलतमंद, धनवान्, समृद्धिशाली 3• मनोहर,प्रिय, सुन्दर,

श्री {स्त्री0} {श्रि + क्विप्, नि0} 1•धन, दौलत, प्राचुर्य, समृद्धि, पुष्कलता- अनिर्वेद: श्रियो मूलम्- रामा0,साहसे श्री: प्रतिवसति-मृच्छ0 "सौभाग्य वीरों पर अनुग्रह करता है"- मनु0 9/300 2• राजसत्ता, ऐश्वर्य, राजकीय धनदौलत कि0 1/1 3• गौरव महिमा, प्रतिष्ठा-श्रीलक्षण- कु0 7/46, अर्थात् महिमा या गौरव का चिन्ह 4• सौन्दर्य, चारुता, लालित्य कान्ति- {मुख} कमलश्रियं दधौ- कु0 5/21,7/32 रघु0 3/8, कि0 1/75 50 रंग,रूप, कु0 2/2 6•विष्णु की पत्नी लक्ष्मी जो धन की देवी है -आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्री: - उत्तर0- 6, रा0 3/14,शि0 1/1 7• गुण, श्रेष्ठता 8• सजावट, 9•बुद्धि,समझ 10• अतिमानव शक्ति 11• मानवजीवन के तीन उद्देश्यों की समष्टि {धर्म,अर्थ और काम} 12• सरल वृक्ष 13• बेल का पेड़ 14• हींग 15• कमल {श्री"शब्द सम्मान सूचक पद है जो पूज्य व्यक्तियों तथा देवों के नामों के पूर्व लगाया जाता है - श्रीकृष्ण: श्रीराम:,श्री वाल्मीकि:, श्री जयदेव: कुछ प्रसिद्ध ग्रंथों के पूर्व भी जिनका विषय धार्मिक है - श्रीभागवत्,श्रीरामायण आदि किसी पाण्डुलिपि या पत्रादिक से आरम्भ में भी मंगलाचरण के रूप में प्रयुक्त होता है, माघ ने अपने "शिशुपाल वध" काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में इस शब्द का प्रयोग किया है, जिस प्रकार भारवि ने "लक्ष्मी" शब्द का प्रयोग किया है }।

समo – आह्वम् कमल-ईश: विष्णु का विशेषण कण्ठ: 1• शिव का विशेषण 2• भवभूति कवि का विशेषण श्रीकण्ठपदलान्छन: -उत्तरo-1, सख: कुबेर का विशेषण,कर: विष्णु का विशेषण {-रम्} लाल कमल-करणम् लेखनी,-कान्त:विष्णु का विशेषण-कारिन {पुo} एक प्रकार का बारहसिंगा, खण्ड:,-डम् चन्दन की लकड़ी श्रीखण्डविलेपन- सुख्याति-हिo 1/97,-गदितम् एक प्रकार का छोटा,नाटक-गर्भ । विष्णु का विशेषण 2• तलवार -ग्रह: पक्षियों को पानी पिलाने की कुण्डी, धनम्, खट्टी दही, {न:} बौद्ध महात्मा,-चक्रम् 1• भूवृत्त, भूमण्डल 2• इन्द्र के रथ का पहिया-ज: काम का विशेषण,-कुबेर का विशेषण, दयित:- धर: विष्णु के विशेषण- नगरम् एक नगर का नाम- नन्दन: राम का विशेषण, -निकेतन:-निवास: विष्णु के विशेषण, पति:- 1• विष्णु का विशेषण शिo 13/69 2• राजा, प्रभु- पथ: मुख्य सड़क, राजमार्ग-वर्णन कमल,-पर्वत: एक पहाड़ का नाम-माo 1, -पिष्ट: तारपीन,-पुष्पम्, लौंग,-फल: लोल का पेड {लम्} बेल का फल,-कला,फली । नील का पौधा 2• घोड़ा,मस्तक: लहसुन, मुद्रा वैष्णवों का विशेष तिलक जो मस्तक पर लगाया जाता है,- मूर्ति: {स्त्री•} 1• विष्णु या लक्ष्मी की प्रतिमा 2• कोई भी प्रतिमा,- युक्त, युत,-, 1• सौभाग्यशाली-प्रसन्न 2• धनवान्, समृद्धिशाली {प्राय: पुरुषों के नामों के पूर्व लगाया जाने वाला सम्मान सूचक पद, -रङ्ग: विष्णु का विशेषण, -रस: । तारपीन 2• राल, -वत्स: 1• विष्णु का विशेषण, विष्णु की छाती पर बालों का घूंघट या चिन्ह-विशेष-प्रभानुलिप्त श्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम् रघुo 10/10 अङ्•क: धारिन्,भृत्, लक्ष्मन्, लान्छन, {पुo} विष्णु के विशेषण कुo 7/43,वत्सकिन् {पुo} एक घोडा जिसकी छाती पर बालों का घूंघर होता है, वर:-वल्लभ: विष्णु के विशेषण-

वल्लभः लक्ष्मी का प्रिय, सौभाग्यशाली या सुखी व्यक्ति-वासः ।•विष्णु का विशेषण 2• शिव का विशेषण 3• कमल 4• ताम्बपान- वासम् §पु0§ ताम्बपान वृक्षः ।• बेल का पेड 2• अश्वत्थवृक्ष 3• घोडे के मस्तक और छाती पर बालों का घूंघट, वेष्टः । ताम्बपान 2• राल,-संगम लौंग सहोदरः चन्द्रमा-सूक्तम् एक वैदिक सूक्त का नाम,- हरि,-विष्णु का विशेषण, हस्तिना सूर्यमुखी फूल का पौधा । श्रा§क्रिया0उभ0 श्रापाति§श्राणाते, पकाना, भोजन बनाना उबालना, तैयार करना ।

पौराणिक कोश

§क§ कमला - स्त्री0 §सं0§§1§ लक्ष्मी §ब्रह्मा0 4,15,37,39•67§ ।

§2§ लौकिकी अप्सराओं में से एक अप्सरा का नाम §वायु069•7§ ।

कमलाक्ष,कमलाकान्त - पु0 §सं0§ §1§ कमलाक्ष नाम का एक दानव था जो समुद्र में प्रवेश कर गया था §मत्स्य 0 61•4§ ।

§2§ विष्णु का एक नाम ।§ 3§ एक पवित्र तीर्थ-स्थान जहाँ देवी की महोत्पला नाम से स्थिति है §मत्स्य 13•34§ ।

कमलाग्रज- §स्त्री0§सं0§ लक्ष्मी की बड़ी बहिन दरिद्रा का नाम ।

§ख§ लक्ष्मी- स्त्री §सं0§ §1§ धन की अधिष्ठात्री एक प्रसिद्ध देवी का नाम जो समुद्रमंथन से प्राप्त 14 रत्नों में से एक है । इन्हें विष्णु भगवान् ने ग्रहण किया था । अतः यह विष्णु-पत्नी कही गयी है । यह कंचन वर्ण की चार भुजाओं वाली कही गयी है । यह अत्यन्त सुन्दरी है और सदा युवती रहती है । इनकी पूजा

अनेक अवसरों पर विशेषतः धनतेरस और दीपावली पर रात को होती है । भिन्न भिन्न पुराणों में इनकी भिन्न-भिन्न कथाएं दी है- दे० ख्याति ब्रह्मवैवर्त पु० । वशिष्ट कुलोत्पन्न वीर शर्मा की पत्नी जो कुशिवंश की कन्या थी जो मर कर पुनः जीवित हो उठी थी ﴾स्कन्दपु०वैष्णव-भूमि वराह-खण्ड﴿ ।

लक्ष्मी जनार्दन -

पु० ﴾सं०﴿ शालिग्राम की एक मूर्ति जिसका रंग बहुत काला होता है और एक ओर 4 चक्र रहते हैं । ﴾स्कन्द पुराण तथा विष्णु०﴿ ।

लक्ष्मी नारायण -

पु० ﴾सं०﴿ काले पत्थर के शालिग्राम जिन पर चक्र बने होते हैं जिनकी पूजा का अधिक महत्त्व है । ﴾विष्णु﴿ ।

लक्ष्मी नारायणव्रत - पु० ﴾सं०﴿ फाल्गुन शु० 15 प्रातः राव भगवान का पूजनकी और चन्द्रोदय होने पर "श्री निशा चन्द्रस्त्वं वासुदेव जगत्पते । मनोऽभिलषित देव पूरयस्व नमो नमः ।" इस मंत्र से अर्घ्य देव और रात में तैल-वर्जित भोजन करें ﴾विष्णुधर्मोत्तर﴿ ।

लक्ष्मीनिधि- पु०﴾सं०﴿ राजा जनक के पुत्र का नाम ﴾रामायण बाल०﴿ ।

लक्ष्मीनृसिंही- पु० ﴾सं०﴿ शालिग्राम की एक एक मूर्ति विशेष जिस पर दो चक्र तथा एक बनमाला बनी होती है । गृहस्थों के लिए इनका पूजन अति शुभ समझा जाता है ﴾ब्रह्म वैवर्त तथा विष्णु०﴿ ।

लक्ष्मीपति - पु० ﴾सं०﴿ विष्णु का एक नाम-दे० विष्णु० लक्ष्मी तथा समुद्रमन्थन ।

लक्ष्मीपुत्र - पु० ﴾सं०﴿ लव और कुश, क्योंकि लक्ष्मी ही सीता थीं और विष्णु राम ।

लक्ष्मी सहज- पु० ﴾सं०﴿ दे० चन्द्रमा ।

लक्ष्मी-सीताष्टमी- स्त्री, ﴾सं०﴿ फालगुन शुक्ला 8 को लक्ष्मी और सीता का पूजन करें फिर सन्ध्या को सामर्थ्यानुसार दीपक जलावे पर अष्टमी प्रदोषव्यापिनी हो﴾वार-मित्रोदय﴿ ।

श्री - स्त्री० (सं०) (1) लक्ष्मी का नाम जो समुद्र मंथन से निकली था और विष्णु की पत्नी है (भाग० 88·8·23)

(2) आदर सूचक शब्द जिसका प्रयोग देवताओं, राजाओं तथा ग्रंथों के नाम के आगे किया जाता है ।

<u>बाल संस्कृत कोश</u>

कमलम् - कमल; जल, कमला लक्ष्मी, बहुत सुन्दर स्त्री, कमलिनी कमल का पौधा, लक्ष्मी - पृष्ठ सं०- 148 सम्पत्ति, सौन्दर्य, धन की देवी तथा विष्णु की पत्नी

श्री - पृ० सं०-185

(श्री:) सम्पत्ति, शोभा, सम्पत्ति और शोभा की देवी श्रीमत्(श्रीमान्, श्रीमती, श्रीमत्) श्रील धनवान्,

---

लक्ष्मी - समुद्र मंथन से निकले 14 रत्नों में से एक, जिसे विष्णु ने ग्रहण किया था। अतः ये विष्णु पत्नी भी कही जाती हैं। यह स्वर्णवर्ण की चार भुजाओं वाली सदैव युवती एवं सुन्दरी के रूप में विद्यमान रहने वाली देवी धन की अधिष्ठात्री है ब्रह्मवैवर्त पुराणानुसार इसकी पूजा धनतेरस, दीपावली आदि अवसरों पर भी की जाती है।

अष्ट लक्ष्मी -

धन लक्ष्मी, धान्य लक्ष्मी, धर्म लक्ष्मी, विजया, लक्ष्मी, वीर लक्ष्मी, सन्तान लक्ष्मी, गजलक्ष्मी, विद्या लक्ष्मी।

बारह लक्ष्मी -

ज्ञान लक्ष्मी, मद लक्ष्मी, वित्तलक्ष्मी, द्रव्य लक्ष्मी, संचय लक्ष्मी, संतोष लक्ष्मी, प्रताप लक्ष्मी नम्रता लक्ष्मी, वैराग्य लक्ष्मी, शान्ति लक्ष्मी, श्रद्धालक्ष्मी, आनन्द लक्ष्मी।

लक्ष्मी के अधिष्ठान-

चन्द्र और कमल।

लक्ष्मी के नाम -

इंदिरा, कमला, जगन्माता, भार्गवी, पद्मा, पद्मालया, माया, रमा लोकमाता, विभूति, विष्णु वल्लभा संवदा, हरिप्रिया।

लक्ष्मी के प्रतीक -

महाभारत के अनुसार 16-श्री भूति, श्रद्धा, मेधा, सन्नति, विजिति स्थिति, धृति, सिद्धि, कान्ति, समृद्धि, स्वाहा, स्वधा, संस्तुति, नियमित, और स्मृति।

लक्ष्मी नारायण -

विष्णु पुराणानुसार काले पत्थर के शालिग्राम की मूर्ति, जिस पर चक्र के निशान लगे रहते हैं । इसकी पूजा का बहुत अधिक महत्त्व है ।

लक्ष्मी नारायण व्रत -

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को प्रातः से शाम तक मौन होकर भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए और चन्द्रोदय होने पर "श्रीनिशा चन्द्ररूपस्त्वं वासुदेव जगत्पते । मनोभिलषितं देव पूरयस्व नमो नमः ।।" के मंत्र से अर्घ्य देना चाहिए और तैल वर्जित भोजन करना चाहिए ।

लक्ष्मीप्रद व्रत -

कार्तिक कृष्ण सप्तमी से दशमी तक दूध, फल, एवं पुष्पों का आहार करते हुए एकादशी को उपवास करना चाहिए । और इन सभी दिन केशव की पूजा करनी चाहिए । व्रती विष्णुलोक की प्राप्ति करता है ।

लक्ष्मी संहिता -

पंचरात्र साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ । संहिताओं के रचना-काल के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं । आयंगर महोदय लक्ष्मी संहिता को अति प्राचीन मानते हैं[1] । गोपालाचार्य स्वामी भी इन्हीं के मत का समर्थन करते हैं ।

1- प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश- पृ0 342

वैदिक कोषः

§1§ लक्ष्मीः -

सर्वमैश्वर्यम्- 31•22 विधा शोभा और चक्रवर्ती राज्यश्री पं०वि०। शुभ लक्षणवती धनादिश्च ऋ० भू० 134,31,22 लक्ष दर्शनाङ्कनयोः §च० धातोः । लक्षेर्मुट् च " उ० 3•160 सूत्रे० ई० प्रत्ययो मुट्रागमश्च । लक्ष्मीः-लाभाद्वा लक्षणाद्वा §लप्स्यनाद्वा § लाञ्छनाद्वा लष्तेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणो लम्यतेर्वा स्यादाश्लेषकर्मणो लज्जतेर्वा स्यादश्लाघाकर्मणः नि० 4•9• तस्माद यस्य मुखे लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते श० 8•4•4•11•तस्माद् यस्य दक्षिणतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते श० 8•4•4•11• तस्माद् यस्य सर्वतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते श० 8•5•4•3§

§2§ श्रियम् शोभां लक्ष्मीं च 32•16 राज्यलक्ष्मीम् 20•72•विधाराज्यैश्वर्यशोभम् 1•72•10•लक्ष्मीं• विधां•भोगान् धनं वा 1•43•7 शोभायुक्तम्, भा०-सौन्दर्यादिगुणयुक्तम् §सभापतिम्§ 33•21•श्रियः- चक्रवर्त्यादिराज्यलक्ष्मीः 1•85•2• शोभाधनानि वा 3•1•5 सम्पत्तयः 3•44•2 श्रिया = शुभगुणाचरणोज्ज्वलया चक्रवर्तिराज्यसेवमानया प्रकृष्टया लक्ष्म्या ऋ० 101, अथर्व० 12•5•1• शोभायुक्तया राज्यलक्ष्म्या देदीप्यमानया राज्यश्रिया वा 9•2• लक्ष्म्या, शोभया, विद्यया सेवया वा 1•117•13•शुभलक्षणया लक्ष्म्या 1•110•17•

श्रिये = लक्ष्मीप्राप्तये 4•10•5•सेवायै धनाय वा 4•23•6•धनाय शोभायै वा 5•44•2 विधाराज्यलक्ष्मीप्राप्तये 1•92•6 विधाशिक्षाराज्यधन प्राप्तये 1•64•12•सुशोभितायै राजलक्ष्म्यै 20•3•श्रीः=धनं शोभा वा 5•57•6• राज्यलक्ष्मीः-भा० धनादिवस्तु 19•46

शोभनैश्वर्यम्, भा० -प्रजा- धनधान्यादिकम् 39•4 {श्रीशब्दस्य रूपाणि । श्री: श्रिञ् सेवायाम् {भ्वा०} धातो: "क्विब् वचिप्रच्छिश्रि०" उ० 2•57 सूत्रेण क्विप्, धातोरिकारस्य च दीर्घ: । अथ यत् प्राणा अश्रयन्त तस्माद् प्राणा: श्रिय: श०6•1•1•4• इयं {पृथिवी} वै श्री ऐ० 8•5 तस्या: {श्रिय:} अग्निरन्नाधमादत्त । सोमो राज्यं वरुण: साम्राज्यं मित्र: क्षत्रमिन्द्रो बलं बृहस्पतिर्ब्रह्मवर्चसं सविता राष्ट्रं पूषा भगं सरस्वती पुष्टिं त्वष्टा रूपाणि श० 11•4•3•3 श्रीर्वा एकशफम् {अश्वाश्वतररगर्दभरूपम् } तै० 3•9•8•2 श्री र्वै पशव: श्री शक्वर्य: ता० 13•2•2• श्रीर्वै श्यायन्तीयम् {साम} ता०12•4•2• श्री: पृष्ठयानि कौ० 21•5 श्रियै वा इएतद् रूपं यद् वीणा श० 13•1•5•1 यदा वै पुरुष: श्रियं गच्छति वीणास्मै वाद्यते श० 13•1•5• श्रीर्वै स्वर: श० 11•4•2•10• रात्रिरेव श्री: श्रिया हैतद् रात्र्यां सर्वाणि भूतानि संवसन्ति श० 10•2•6•16• श्रीर्वै राष्ट्रम् श० 6•7•3•7•श्रीर्वै राष्ट्रस्य भार: श० 13•2•9•3• श्रीर्वै राष्ट्रस्याग्रम् श० 13•2•9•7•श्रीर्वै पलिप्पजा श० 13•2•6•16 तै० 3•9•5•3• श्रीर्वै वरुण: कौ० 18•9• {सविता} श्रिया स्त्रियम् {समदधात} गो० पू० 1•34• श्रीर्देवा: श० 21•4•9• श्रियै पाप्मा {निवर्त्तते} श० 10•2•6•19 अहिर्ध्वैव वै श्री: जै० उ० 1•4•6• एकस्था वै श्री: कौ० 18•9•{एकस्था} वै श्री: गो० उ० 6•13•श्रीर्वै सोम: मै० 1•11•6• श० 4•1•3•9 ऋद्वा ऋतवस्संवत्सरश्री: जै02•142•

1- वैदिक कोष: - पृ० 808

2- वैदिक कोष: - पृ० 960-961

वैदिक इण्डेक्स

श्री - सम्पन्नता के लिए नियमित शब्द है जो ऋग्वेद[1] में एक बार और बाद[2] में अक्सर मिलता है । देखिये श्रेष्ठन्

1- 8·2, 19 में यही आशय प्रतीत होता है ।

2- अथर्ववेद 6·54, 1,73, 1, 9·5, 31, 10, 6, 26, 11, 1, 12, 21; 12, 1, 63; 5-7 ; तैत्तिरीय संहिता 2·2, 8, 36, 5, 1, 8, 6, 6, 1, 10, 3, 7·2,7,3, इत्यादि । शतपथ ब्राह्मण §11·4·3§ तक में इसे एक देवी मान लिया गया है । देखिये रिज, डेविड्स; बुद्धिस्ट इण्डिया, 217 और बाद । यह प्राचीनतम बौद्ध मूर्तियों में ऐसे दो हाथियों के बीच बैठी मिलती है जो इस पर जल डाल रही है । इस प्रकार की देवी भारत में आज तक प्रचलित है ।

1- वैदिक इण्डेक्स पृ0 445

हलायुध कोष

कमला -

स्त्री {काम्यतेऽसौ, कमेः वृक्षादित्वात् कलच्, कमलम् अस्त्यस्याः इति वा, अर्श आद्यच् टाप् च} लक्ष्मीः; "कमला श्रीर्हरि प्रिया-इत्यमरः । वरस्त्री; कमलानिम्बुकः; "रम्भाफलं तिन्तिडीक कमला नाग- रङ्गकम् । फलान्येतानि भोज्यानि एभ्योऽन्यानिविवर्जयेत्"-इति तन्त्रसारे । छन्दोविशेषः; द्विगुणन-गणसहितः सगण इह हि विहितः । फणिपतिमति विमला क्षितिपु भवति कमला-इति वृत्तरत्नाकरे नर्तकी-विशेषः, "नर्तकी कमला नाम कान्तिमन्तं ददर्श तम् । असामान्याकृतेः पुंसः सा ददर्श सविस्मया- इति राज तरङ्गिण्याम् {4/424}। पुरविशेषः; "राजा महलाण-पुरकृत चक्रे विपुलकेशवम् । कमला सा स्वनाम्नापि कमलाख्यं पुरं व्यधात" -इति राज-तरङ्गिण्याम् {4/483} । गङ्गा; "कमला कल्पलतिका, काली कलुषवैरिणी" इति काशी खण्डे {29/44} । 3।

लक्ष्मीः

स्त्री {लक्ष्यति पश्यति उद्योगिनमिति । लक्ष +"लक्षेर्मुट च" इति ई प्रत्ययो मुडागमश्च} विष्णुपत्नी; पद्मालया, पद्मा, कमला; श्रीः, हरिप्रिया, इन्दिरा, लोकमाता-मा, क्षीराब्धितनया; रमा; जलधिजा, भार्गवी; हरि वल्लभा, दुग्धाब्धितनयाः; क्षीरसागरसुता ; "नित्य छेदस्तृणानां क्षितिनखलिखनं पादयोरल्प शौचम्, एकाङ्गे तैलदानं वसनमलिनता अञ्जनमूर्ध्न जानाम् । द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयनं ग्रास-धासातिरेक; स्वाङ्गे पीठे च वाद्यं हरति धनपतेः केशवस्यापि लक्ष्मीम् ।" शोभा{8।3}; दुर्गा; स्तुति सिद्धिरिति ख्याता श्रिया संश्रयणाच्च वा । लक्ष्मीर्वा ललना वापि क्रमात् सा कान्तिरुच्यते"-इति देवी पुराणे 55 अध्यायः ।

सम्पत्तिः; ऋध्योषधिः; वृद्धिनामौषधिः; फलिनावृक्षः; सीता, वारयोषित्; स्थलपद्मिनी; हरिद्राः, शमी; द्रव्य; मुक्ता, मोक्ष प्राप्तिः; शोभा; "कपाल-नेत्रान्तरलब्धमार्गैर्ज्योतिः: पुरोहैरुदितैः शिरस्तः । मृणालसूत्राधिकसौकुमार्यां बालस्य लक्ष्मी ग्लपयन्तमिन्दोः-इति कुमारे (3/49) ।

<u>वाचस्पत्यम्</u>

<u>लक्ष्मी</u> -

स्त्री लक्ष-ई-मुट च । । विष्णोः पत्न्याम् अमरः । 2 शोभायां, 3 कान्तौ, 4 सम्पत्तौ, 5 ऋध्योषधौ, 6वृद्धिनामौषधौ, 7फलिनावृक्षे च मेदि /8 स्थलपद्मिन्याम् 9 हरिद्रायां, 10 शम्यां, 11 मुक्तायां 12 द्रव्ये च राजनि0 13 पाठायां 14 वारयोषिति च शब्द च0 ।

लक्ष्मीपूजाकादि स्कन्दपु0 उक्तं यथा -

पौषे चैत्रे तथा भाद्रे पूजयेयुः स्त्रियः श्रियम् । सिंहे धनुषि मीने च स्थिते सप्ततुरङ्गमे । प्रत्यवद पूजय लक्ष्मीं शुक्लपक्षे नापराह्णे गुरोर्दिने । नापराह्नेन रात्रौ च नासिते न त्र्यहस्पृशि । द्वादश्यां चैव नन्दायां रिक्तायाञ्च निशंके । त्रयोदश्यां तथाष्टम्यां कमलां नैव पूजयेत् । न पूजयेत् शनौ भौमे न बुधे नैव भार्गवे । पूजयेत्तु गुरोर्वारे चाप्राप्ते रविसोमयोः । गुरुवारे हि पूर्णा च यत्नेन यदि लभ्यते । तत्र पूज्या तु कमला धन-पुत्रविवर्द्धिनी । न कुर्यात् प्रथमे मासि नैव कुर्याद्विसर्जनम् । न घण्टां वादयेत्तत्र नैव झिण्टां प्रदापयेत् । पौषे च दशमी शस्ता चैत्रके पञ्चमी तथा । नभस्ये पूर्णिमा ज्ञेया गुरुवारे विशेषतः । आढकं धान्यसंपूर्णं नानाभरणभूषितम् । सुगन्धिशुक्लपुष्पेण शुक्लपक्षे विशेषतः । पौषे तु पिष्टकं दद्यात् परमान्नञ्च चैत्रके । पिष्टकं परमान्नञ्च

नभस्ये तु विशेषतः । गुरुवारसमायुक्ता नभस्ये पूर्णिमा शुभा । कमला पूजये त्तत्र पुनर्जन्म न विद्यते । एकेनकमलेनैव कमलां पूजयेद्द यदि । इह लोके सुखं प्राप्य परत्र केशवं व्रजेत् । लक्ष्मीचरित्रे तु "न कृष्णपक्षे रिक्तायां दशमी द्वादशीषु च । श्रवणादि-चतुर्क्षे लक्ष्मीपूजां न कारयेत" । दशमीनिषेधः पौर्णमासीतिरिक्तपरः प्रागुक्तैक-वाक्यत्वात् । दीपान्विताामास्यायां तत्पूजादिकं दीपान्वित शब्दे 5607 पृ0 द्रष्टव्यम् । कोजागर-लक्ष्मीपूजा कोजागर शब्दे 2262 पृ0 दृश्या । माघशुक्लपञ्चम्यां श्रीपूजनं "पञ्चम्यां श्रीरपि श्रियम् ति0 त0 विहितम् । "पञ्चम्यां श्रियं पूजयेत्"कल्पश्रुतिरपि तत्परा । गरु0 पु0 ।।4 अ0 लक्ष्म्यास्त्यागकारणतोक्ता यथा " कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्य भाषिणम् । सूर्य्योदये चास्तमये च शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम् । नित्यं छेदस्तृणानां धरणि विलिखनं पादयोरल्पमष्टिर्दन्तानामल्पशौच वसनमलिनता रूक्षता मूर्द्धजानाम् । द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयनं ग्रासहा-भातिरेकः स्वाङ्गे पीठे च वाद्यं निधनमुपनयेत् केशवस्यापि लक्ष्मीः । तस्या भाज-नहेतुता तत्रोक्ता यथा" शिरः सुधौतं चरणौ सुमार्जितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम् । अनग्नशायित्वमपर्वमैथुनं चिरप्रनष्टां श्रियमानयन्ति षट् । यस्य कस्य तु पुष्पस्य पाण्डरस्य विशेषतः । शिरसा धार्य्यमाणस्य अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते । दीपस्य पश्चिमा-च्छाया शय्यासनस्य च । रजकस्य तु यत्तीर्थमलक्ष्मीस्तत्र तिष्ठति ।" ।

लक्ष्मीकान्तः-

पु0कत0। । विष्णौ, 2 राजा-----------------लक्ष्मी पत्यादयोऽप्यत्र । "विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकम् ? किरा0 । लक्ष्मीपतिस्तु अपङ्गे पुमवृत्ते चविश्वः ।

लक्ष्मी जनार्दन - न० शालग्रामभेदे । तस्य लक्षण यथा एक द्वारे चतुचक्रं नवानना-रदोपमम् । लक्ष्मी जनार्दर्दनं ज्ञेयं रहितं वनमालया" ब्रह्मवै, पु० ।

लक्ष्मीनारायण -
पु० शालग्रामभेदे: तस्य लक्षणं यथा "एकद्वारे चतुचक्रं वनमालाविभूषितम् नवाननीरदाकारं लक्ष्मीनारायणाभिधम्" ब्रह्मवै पु० ।

लक्ष्मी नृसिंह -
न शालग्रामभेदे तस्य लक्षणं यथा" द्विचक्रं विस्तृतास्यन्च वनमालाम-मन्वितम् । लक्ष्मीनृसिंह विज्ञेयं गृहिणान्च सुखप्रदम् " ब्रह्मवै० पु०

लक्ष्मीपुत्र: -
पु 6 त० । कामदेवे, 2 अश्वे मेदि, 3 कुशे लवे च शब्द च० । 5 गन्धर्वभेदे ।

लक्ष्मीफल -
पु० लक्ष्मयै फलमस्य । श्रीफले बिल्ववृक्षे राजान:

लक्ष्मीवत् - पु० लक्ष्मी: शोभा स्त्यस्य मतुप् यस्य स: । 4 नसे शब्द च० । स्त्रीयुक्त त्रि० अमर: स्त्रियां ङीप् ।
2 श्वेतरोहितकवृक्ष पु० राजनि० ।

लक्ष्मीसहज -
पु० लक्ष्मया सह क्षीराब्धौ जायते जन-ड । चन्द्रे, शब्द च० 2 उच्चै: श्रवसि 3 कर्पूरे च ।

1- वाचस्पत्यम् - पृ० 4819-4820

श्री - पाके क्रया० उ० सक० सेद । श्रीणाति-ते श्रम्नायात् श्रम्नायिष्ट ।

श्री - स्त्री श्रि- क्विप् नि० । । लक्ष्म्यां 2 लवङ्गे अमर: । 2 शोभायां 4 वाण्यां 5वेशरचनायां 6 वृसरलवृक्षे 7 धर्मार्थकामेनु 8 सम्पत्तौ 9 प्रकारे ।0उपकरणे ।। बुद्धौ ।2 विभूतौ मेदि० । ।3 अधिकारे ।4 प्रभायां ।5 कीर्तौ धरणि: । ।6वृद्धौ ।7 सिद्धौ शब्दर० ।8 कमले ।9 बिल्ववृक्ष 20 वृद्धिनामौषधौ राजनि० देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवताम् । सिद्धिं सिद्धाधिकारांच श्रीपूर्वं समुदीरयेत्" प्रत्युक्ते देवादानां 2। नामोच्चारणायोपाधिभेदे च" सिद्धाधिकारान् स्वर्गगामित्वादिना सिद्धोऽधिकारो येषां नराणां तान् सिद्धाधिकारान् । तेन जीवतां श्रीशब्दादित्वं न मृतानामिति" संस्कारत० रघु० । 2। रागभेदे पु० । श्रीरागश्च सुन्दर पुरुषाकृति: हेमन्ते भारवा अपराह्णे गेय: । तस्य पन्च रागिण्य मानश्री: भारवी धनाश्री: वसन्तरागिणी आशावरी संगीतदा० । पत्रे श्रीशब्दन्यासत्संख्याभेदा: पत्रशब्दे 4220 पृ० दृश्यता ।

प्राचीन चरित्र कोष

लक्ष्मी - समुद्र से प्रकट हुई एक देवी जो भगवान विष्णु की पत्नी मानी जाती है । ऐश्वर्य का प्रतीकरूप देवता मानकर, ऋग्वेदिक श्रीसूक्त में इसका वर्णन किया गया है । समृद्धि, संपत्ति, आयुरारोग्य पुत्रपौत्रादि परिवार धनधान्यविपुलता आदि की प्राप्ति के लिए लक्ष्मी एवं श्री की उपासना की जाती है । इसी कारण श्रीसूक्त में प्रार्थना की गया है -

यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।। 2 ।।

{सुवर्ण, गायें, अश्व एवं चाकरनौकर आदि परिवार से युक्त लक्ष्मी मुझे प्राप्त हो }
धनधान्यादि भौतिक संपत्ति {धनलक्ष्मी} ही नहीं, बल्कि सैन्य सम्पत्ति {सैन्यलक्ष्मी}
का भी लक्ष्मी में ही समावेश किया जाता था -

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।

श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।। 3 ।।

{अश्व, रथ, हाथी आदि से सुसज्जित सैन्य का रूप धारण करने वाली लक्ष्मी मुझे
प्राप्त हो, एवं उसका निवास चिरंतन मेरे घर में ही हो ।

लक्ष्मी देवता की उत्क्रांति-

ऐश्वर्य प्रदान करने वाले "लक्ष्मी" देवता की कल्पना अथर्ववेदकालीन
है । उस ग्रंथ में अनेक "भावनात्मक" देवताओं का निर्देश प्राप्त है, जिनकी उपासना
से प्रेम, विद्या, बुद्धि, वाक्चातुर्य आदि इच्छित सिद्धिओं का लाभ प्राप्त होता है ।
अथर्ववेद में निर्दिष्ट ऐसी देवताओं में काम {प्रेमदेवता} सरस्वती {विद्या}, मेधा
{बुद्धि}, वाक् {वाणी} आदि देवता प्रमुख हैं, जिनमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाली
लक्ष्मी देवता का प्रमुखता से निर्देश किया गया है ।

स्वरूप वर्णन -

श्रीसूक्त में लक्ष्मी का स्वरूप वर्णन प्राप्त है, जहाँ इसे हिरण्यवर्णा,
पद्मस्थिता, पद्मवर्णा, पद्ममालिनी, पुष्करिणी आदि स्वरूपवर्णनात्मक विशेषण
प्रयुक्त किये गये हैं । वाल्मीकि रामायण में प्राप्त इसके स्वरूप वर्णन में इसे शुभ्रवस्त्र-
धारिणी, तरुणी, मुकुटधारिणी कुंचितकेशा, चतुर्हस्ता, सुवर्णकान्ति, मणिमुक्तादिभूषिता
कहा गया है {वा०रा०बा० 45} । पुराणों में वर्णित लक्ष्मी कमलासना, कमलहस्ता
एवं कमलमालाधारिणी है । ऐरावतों के द्वारा सुवर्णपात्र में लाये हुए तीर्थजल से यह
स्नान{सुस्नात} करती है, एवं सदैव विष्णु के वक्षःस्थल में रहती है। {विष्णु ।•९•९८-।

निवासस्थान -

लक्ष्मी क्षीरसागर में अपने पति श्रीविष्णु के साथ रहती है, एवं अपने अन्य एक अवतार राधा के रूप में कृष्ण के साथ गोलोक में रहती है (राधा देखिये)। महाभारत में लक्ष्मी के "विष्णु पत्नी लक्ष्मी" एवं "राज्यलक्ष्मी" ऐसे दो प्रकार बताये गये हैं। इनमें से लक्ष्मी हमेशा विष्णु के पास रहती है, एवं राज्यलक्ष्मी राजा एवं पराक्रमी लोगों के साथ घूमती है। ऐसा निर्देश प्राप्त है।

लक्ष्मी का निवास स्थान कहाँ रहता है, इसका रूपकात्मक दिग्दर्शन करने वाली अनेकानेक कथाएँ महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त है, जिनमें निम्नलिखित कथाएँ प्रमुख है -

(1) लक्ष्मी-प्रल्हादसंवाद -

असुरराज प्रल्हाद ने एक ब्राह्मण को अपना शील प्रदान किया, जिस कारण क्रमानुसार उसका तेज, धर्म, सत्य, वृत्त, बल एवं अंत में उसकी लक्ष्मी उसे छोड़कर चले गये। तत्पश्चात् लक्ष्मी ने प्रल्हाद को साक्षात् दर्शन देकर उपदेश दिया, "तेज, धर्म, सत्य, वृत्त, बल एवं शील आदि मानवी गुणों में मेरा निवास रहता है, जिनमें से शील अथवा चारित्र्य मुझे सबसे अधिक प्रिय है। इसी कारण सच्छील आदमी के यहाँ रहना मैं सबसे अधिक पसन्द करती हूँ। "शील परंभूषणम्" इस उक्ति का भी यही अर्थ है" (म० शां० 124. 45-60)

(2) लक्ष्मी इन्द्र संवाद -

असुरराज प्रह्लाद के समान, उसका पौत्र बलि का भी लक्ष्मी ने त्याग किया। बलि का त्याग करने की परम्परा इंद्र से बताते समय लक्ष्मी ने कहा, पृथ्वी के सारे निवास-स्थानों में से भूमि (वित्त) जल (तीर्थादि), अग्नि (यज्ञादि) एवं

विद्या (ज्ञान) ये चार स्थान मुझे अत्यधिक प्रिय है । सत्य, दान व्रत, तपस्या, पराक्रम एवं धर्म जहाँ वास करते हैं, वहाँ मेरा भी निवास रहता है । देवब्राह्मणों से नम्रता के साथ व्यवहार करने वाला मनुष्य मुझे अत्यधिक प्रिय हैं । लक्ष्मी ने आगे कहा, "चोरी, वासना, अपवित्रता, एवं अशांति से मै अत्यधिक घृणा करती हूँ, जिनके आधिक्य के कारण क्रमशः भूमि, जल, अग्नि एवं विद्या में स्थित मेरे प्रिय निवास स्थानों का मैं त्याग कर देती हूँ ।

"बलि दैत्य ने उच्छिष्टभक्षण किया, एवं देवब्राह्मणों का विरोध किया, जिस कारण वह मेरा अत्यन्त प्रिय व्यक्ति होकर भी, आज मैं उसका त्या कर रही हूँ" (म०शा० 2।) ।

(3) लक्ष्मी-रुक्मिणीसंवाद-

लक्ष्मी के निवासस्थान के संबंधित एक प्रश्न युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा था, जिसका जवाब देते समय भीष्म ने लक्ष्मी एवं रुक्मिणी के दरम्यान हुए एक संवाद की जानकारी युधिष्ठिर को दी (म०अनु०।।) ।

इस जानकारी के अनुसार, लक्ष्मी ने रुक्मिणी से कहा था, "सृष्टि के सारे लोगों में प्रगल्भ, भाषणकुशल, दक्ष, निरलस, आस्तिक, अक्रोधन, कृतज्ञ, जिते वृद्धजनों की सेवा करने वाले (वृद्ध सेवक), सत्यनिष्ठ, शांत स्वभाववाले (शांत), एवं सदाचारी लोग मुझे सब से अधिकप्रिय है, जिनके यहाँ रहना मैं विशेष पसंद करती

"निर्लज्ज, कलहप्रिय, निद्राप्रिय, मलीन, अशांत, एवं असमाधानी लोगों का मैं अतीव तिरस्कार करती हूँ, जिस कारण ऐसे लोगों का मैं त्याग कर हूँ" ।

महाभारत में अन्यत्र प्राप्त जानकारी के अनुसार, गायें एवं गोबर में भी लक्ष्मी का निवास रहता है [म०अनु० 82] ।

<u>जन्म</u> -

देवासुरों के द्वारा किये गये समुद्रमंथन से, चन्द्र के पश्चात् लक्ष्मी का, अवतार हुआ [म० आ० 16·34; विष्णु· 1·8·5; भा० 8·8·8; पद्म सृ० 4] इस "अयोनिज" देवता को ब्रह्मा ने श्रीविष्णु को प्रदान किया, एवं विष्णु ने इसे पत्नी के रूप में स्वीकार किया । पश्चात् यह उसके सन्निध क्षीरसागर में निवास करने लगी ।

ब्रह्मन् के पुत्र भृगु ऋषि की कन्या के रूप में लक्ष्मी पृथ्वीलोक में पुनः अवतीर्ण हुई । इस समय, दक्षकन्या ख्याति इसकी माता थी [विष्णु 1·2] । कालोपरान्त इसका विवाह विष्णु के एक अवतार नारायण से हुआ, जिससे इसे बल एवं उन्माद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।

ब्रह्मवैवर्त के अनुसार, विष्णु के दक्षिणांग से लक्ष्मी का, एवं वामांग से लक्ष्मी के ही अन्य एक अवतार राधा का जन्म हुआ । [ब्रह्मवै०2·47·44] ।

<u>भृगु से वरदान</u> -

विष्णु के वक्षस्थल में लक्ष्मी का निवास स्थान कैसे हुआ, इस संबंध में एक रूपकात्मक कथा पुराणों में प्राप्त है ।

स्वायंभुव मनु के यज्ञ के समय, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन देवों में से श्रेष्ठ कौन, इसका निर्णय करने का कार्य भृगु ऋषि पर सौंपा गया । इस संबंध में जाँच लेने के लिए तीनों देवों के पास भृगु स्वयं गया । उस समय, ब्रह्मा एवं शिव ने भृगु का बुरी प्रकार से अपमान किया । केवल विष्णु ने ही भृगु का उचित

आदरसत्कार किया, एवं भृगु के द्वारा छाती पर किया गया लत्ताप्रहार भी शांति से स्वीकार कर, उसे "श्रीवत्सलांछन" के रूप में अपने वक्षःस्थल पर धारण किया (भा०10·89·1-12) । इस कारण, भृगु अत्यधिक प्रसन्न हुआ, एवं उसके द्वारा दिये गये "श्रीवत्सलांछन" के रूप में लक्ष्मी हमेशा के लिए श्रीविष्णु के वक्षःस्थल पर निवास करने लगी ।

ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवों से भी भृगु जैसे ब्राह्मण अधिक श्रेष्ठ हैं, एवं पृथ्वी के लक्ष्मी के जनक भी वे ही है, ऐसा उपर्युक्त रूपकात्मक कथा का अर्थ प्रतीत होता है । साक्षात् श्रीविष्णु को लक्ष्मी प्रदान करने वाले भृगु ऋषि की इस कथा से ही, ब्राह्मणों की सेवा पूजन आदि से लक्ष्मी प्राप्त होती है, यह जनश्रुति का जन्म हुआ होगा ।

<u>भृगु का शाप</u> -

एक बार लक्ष्मी ने लक्ष्मीनगर नामक नगर का निर्माण कर, जो इसने अपने पिता भृगु ऋषि को प्रदान किया । कालोपरांत इसने भृगु से वह नगर लौट लेना चाहा, किन्तु उसने एक बार प्राप्त हुआ नगर लौट देने से इन्कार कर दिया । इसी संबंध में मध्यस्थता करने के लिए आये हुए श्रीविष्णु की भी भृगु ने एक न सुनी, एवं क्रुद्ध होकर उसे शाप दिया, "पृथ्वी पर दस मानवी अवतार लेने पर तुम विवश होगे" (पद्म, सृ0 4) ।

भृगु ऋषि के उपर्युक्त शाप के अनुसार, विष्णु ने पृथ्वी पर दस अवतार लिये, जिस समय लक्ष्मी ने पत्नी धर्म के अनुसार दस अवतार लेकर श्रीविष्णु को साथ दिया ।

लक्ष्मी के अवतार -

लक्ष्मी के इन दस अवतारों में निम्नलिखित अवतार प्रमुख है -

1- कमलोद्भव लक्ष्मी {वामनावतार},

2- भूमि {परशुरामावतार},

3- सीता {रामावतार},

4- रुक्मिणी {कृष्णावतार} {विष्णु 1·9·140-141; भा0 5·18·8·8·8} ।

ब्रह्मवैवर्त में लक्ष्मी के अवतार विभिन्न प्रकार से दिये गये हैं । वहाँ निर्दिष्ट लक्ष्मी के अवतार एवं उनके प्रकट होने के स्थान निम्नप्रकार हैं - 1- महालक्ष्मी {वैकुंठ} 2· स्वर्ग लक्ष्मी {स्वर्ग}; 3· राधा {गोलोक}; 4-राजलक्ष्मी {पाताल, भूलोक} ; 5· गृहलक्ष्मी {गृह} ; 6· सुरभि {गोलोक}, 7· दक्षिणा {यज्ञ} 8· शोभा {वस्तुमात्र} {ब्रह्मवै 0 2·35} । महालक्ष्मी के अवतार में, भृगुऋषि के शाप के कारण, इसे हाथी का शीर्ष प्राप्त हुआ था, जिसे काट कर ब्रह्मा ने इसे महालक्ष्मी नाम प्रदान किया था {स्कंद·6·85} ।

पद्म में गोकुल का भानुग्वाले की राधा को भी लक्ष्मी का ही अवतार कहा गया है । राधा जन्म से ही अंधी, गूंगी एवं लूली थी, किन्तु उसे लक्ष्मी का अवतार जानकर, नारद ने उसका दर्शन लिया था ।{पद्म0पा07।} ।

लक्ष्मी के दोष -

ब्रह्म में लक्ष्मी एवं दारिद्रता {अलक्ष्मी} के दरम्यान हुआ एक कल्पनारम्य संवाद प्राप्त है, जो गोदावरी नदी के तट पर स्थित लक्ष्मीतीर्थ का माहात्म्य बताने के लिए दिया गया है {ब्रह्म 137} । इस संवाद में लक्ष्मी का अत्यन्त कठोर शब्दों में निर्भर्त्सना की गई है । एक बार लक्ष्मी एवं अलक्ष्मी के

दरम्यान श्रेष्ठ कौन इस सम्बन्ध में संवाद हुआ था । इस समय लक्ष्मी ने अपना श्रेष्ठत्व बताते हुए कहा, "मैं जिसके साथ रहूँ, उसका इस संसार में सर्वत्र सत्कार होता है, एवं मेरे अनुपस्थिति में निर्धन एवं याचक लोगों की सर्वत्र अवहेलना होती है । इस दुर्गति से शिव जैसा देवाधिदेव भी न बच सका, जिस कारण उसकी सर्वत्र उपेक्षा एवं अवहेलना हुई" ।

इस पर लक्ष्मी के सर्वत्र दोष बताते हुए अलक्ष्मी ने कहा, "तुम सदैव पापी, विश्वासघाती, एवं दुराचारी लोगों में रहती हो, तथा मद्य से भी अधिक अनर्थ पैदा करती हो । राजाश्रित, पापी, खल, निष्ठुर, लोभी एवं कायर लोगों के घर तुम्हारा निवास रहता है, एवं अनार्य, कृतघ्न, धर्मघातकी, मित्रद्रोही एवं अविचारी लोगों से तुम्हारी उपासना की जाती है" ।

अलक्ष्मी ने आगे कहा, "मेरा निवास धर्मशील, पापभीरु, कृतज्ञ, विद्वान एवं साधु लोगों में रहता है, एवं पवित्र ब्राह्मण, सन्यासी एवं ध्येयनिष्ठ लोगों से मेरी उपासना की जाती है । इसी कारण काम क्रोध, औध्दत्य आदि तामसी विकारों को मैं दूर रखती हूँ, एवं अपने भक्तों को मुक्ति प्रदान करती हूँ"

(ब्रह्म0 137) ।

भर्तृहरि के अनुसार, उपर्युक्त संवाद में लक्ष्मी एवं अलक्ष्मी का संकेत संपन्नता एवं दरिद्रता से नहीं, किन्तु लक्ष्मी की तामस उपासना करने वाले मुमुक्षु लोग एवं दरिद्रता में ही तृप्त रहने वाले सात्त्विक लोगों की ओर अभिप्रेत है ।

<u>परिवार</u> -

विष्णु से इसे बल एवं उन्माद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । श्रीसूक्त में इसके निम्नलिखित पुत्रों का निर्देश प्राप्त है- आनंद, कर्दम, श्रीद, और चिक्लित

इसके धातृ एवं विधातृ नामक दो भाई भी थे, जो इसी के तरह भृगु ऋषि सांख्याति के पुत्र थे ।

लक्ष्मीप्रद सूक्त -

इन सूक्तों में निम्नलिखित दो ग्रंथ प्रमुख माने जाते हैं -

1- श्रीसूक्त {ऋ० परि० 11} । 2- इंद्रकृत लक्ष्मीस्तोत्र, जो विष्णु पुराण में प्राप्त है {विष्णु•1•9•115-137} ।

2- दक्ष प्रजापति की एक कन्या, जो धर्मप्रजापति की पत्नी थी {म०आ०60-13}

3- वीर नामक ब्राह्मण की पत्नी, जो अपने पूर्वजन्म में तोण्डमान नामक राजा की पद्मा नामक पत्नी थी {भाग-24 देखिये} ।

लक्ष्मीनिधि - सीता का भाई {पद्म• पा० 11} ।

श्रीवत्स -

श्रीवत्स न केवल भारतीय कला का वरन् भारतीय जीवन का एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक था । इसकी गणना अष्टमांगलिक चिह्नों में की गई है ।

स्वस्तिक और श्रीवत्स हमारी संस्कृति के सर्वाधिक मांगलिक चिह्न थे । स्वस्तिक सार्वभौमिकता का एवं श्रीवत्स सुख-सम्पन्नता का द्योतक था । साहित्य का स्वस्ति- वाचन"स्वस्ति श्री" भारतीय कला में भी यथावत् अभिव्यक्त हुआ है तभी स्वस्तिक और श्रीवत्स के अंकन साथ-साथ प्रस्तुत किए जाते थे ।

1- प्राचीन चरित्र कोश- पृ० 781-784

लक्ष्मीकल्याणम् (समवकार) ले -रामानुजाचार्य लक्ष्मी कल्याणम् (नाटिका)
ले- सदाशिव दीक्षित।18 वीं शती । विषय-पृथ्वी पर कन्या के रूप में अवतार
लेकर लक्ष्मी का विष्णु के साथ विवाह । अंकसंख्या चार । यह रचना कुमारसम्भव
से प्रभावित है ।

लक्ष्मी कुमारोदयम् -

कवि-रंगनाथ । कुम्भकोणम् के लक्ष्मीकुमार ताताचार्य नामक सत्पुरुष
का चरित्र इसमें वर्णित है ।

लक्ष्मी तंत्रम् -

नारदपंचरात्र के अन्तर्गत । श्लोक 3000 । अध्याय 50 । विषय-
विष्णु की शक्ति लक्ष्मी की सविस्तर पूजा और स्तुति ।

लक्ष्मी-देवनारायणीयम् -

ले- श्रीधर । अठारहवीं शती का पूर्वार्ध । अम्पलप्पुल (त्रावणकोर) के
राजा देवनारायण को नायक बनाकर की हुई रचना । अंक संख्या-देवनारायण द्वारा
आयोजित विचित्र यात्रा के उत्सव में अभिनीत । रूपगोस्वामी के नाटकों से प्रभावित
प्रस्तावना के स्थान पर "स्थापन" शब्द का प्रयोग । प्राकृतिक वर्णनों की बहुलता
कथासारनन्दपुर निवासी दिनराज की पुत्री लक्ष्मी पर नायक देवनारायण लुब्ध है
वारिभद्रा नदी के तट पर स्थित वासुदेव के मन्दिर में नायक नायिका को प्रेमपत्र
भेजती है । नायक उसे भद्रनन्दन प्रदेश में बुलाता है । नायक भद्रनन्दन से राक्षसराज
को निष्कासित करता है । राक्षसराज प्रतिज्ञा करता है । कि वह नायक की पत्नी का
हरण करेगा ।

लक्ष्मी नायक से मिलने वहाँ पहुँचती है । राक्षस वनराज का रूप धारण कर पूरी भूमि उजाड़ डालता है । ज्यों ही नायक उसे मारने दौड़ता है। राक्षस लक्ष्मी का अपहरण करता है । राक्षस तथा नायक में युद्ध होता है जिसमें राक्षस मारा जाता है परन्तु प्रेमिका के वियोग में नायक विह्वल होता है । तब आकाशवाणी होती है कि नायिका अपने पिता के पास सकुशल है । अन्ततोगत्वा नायक देवनारायण नायिका लक्ष्मी के साथ विवाह होता है ।

लक्ष्मीश्वर प्रतापम् -

ले- शिवकुमार शास्त्री काशी निवासी । जन्म ई०स० 1848 । मृत्यु 1919। दरभंगा राजवंश का समय वर्णन इस काव्य में किया है ।

लक्ष्मी नारायण चरितम्- ले- वरदादेशिक । पिता-निवास । ई० 17 वीं शती ।

लक्ष्मीनारायण पंचांगम्- - रुद्रयामल के अन्तगर्त । श्लोक - 500 ।

लक्ष्मीनारायणार्चाकौमुदी - ले शिवानन्द गोस्वामी । 15 प्रकाशों में पूर्ण ।

लक्ष्मी नृसिंहविधानम् (सटीक) श्लोक-लगभग 566 ।

लक्ष्मीनृसिंह शतकम् - ले -पारियाचूरकृष्ण । 19वीं शती ।

लक्ष्मीनृसिंहसहस्त्राक्षरीमहाविधा - श्लोक- 100 ।

लक्ष्मी पंचांगम् - ईश्वरतन्त्रम् में उक्त । श्लोक -658 ।

लक्ष्मी पटलम् - श्लोक- 140 ।

लक्ष्मी पद्धति - डामरतन्त्रान्तगर्त । श्लोक- 76 ।

लक्ष्मी पूजनम् - श्लोक-70 (लक्ष्मी यन्त्रसहित)

लक्ष्मी विलासम् - ले -विश्वेश्वर पाण्डेय । पाटिया । पाटिया {अलमोड़ा जिला} ग्राम के निवासी । ई० 8वीं शती {पूर्वार्ध} ।

लक्ष्मी लहरी - ले- जगन्नाथ पण्डितराज । ई० 16-17 वीं शती । 4 । श्लोकों का स्तोत्रकाव्य ।

लक्ष्मी वासुदेवपूजापद्धति - श्लोक- 200

लक्ष्मी व्रतम {लक्ष्मी चरितम्} - ले-श्रीराम कविराज । अध्याय 5 ।

लक्ष्मीश्वरचम्पू - ले- अनन्तसूरि

लक्ष्मीसपर्यासार- ले- श्रीनिवास,

लक्ष्मीसहस्त्रम् - ले-वेंकटाध्वरी । ई० 17 वीं शती । {विश्वगुणादर्शचंपूकार} एक रात्रि में रचित, अलंकारयुक्त और भक्तिरसपूर्ण स्तोत्रकाव्य । 2} लेखिका- त्रिवेणी प्रतिवर्गदभयंकराचार्य की पत्नी ।

लक्ष्मीस्वयंवरम् - {अपरनाम विबुधानन्दम्} ले-प्रधान वेङ्कप्प । ई० अठारहवीं शती । श्रीरामपुर के निवासी । प्रथम अभिनय श्रीरामपुर में तिरुवङ्गलनाथ के महोत्सव में । अंकसंख्या तीन । प्रत्येक अंक के पहले विष्कम्भक है । प्रधानरस श्रृङ्गार ।

कथासार- प्रणयकलह के कारण लक्ष्मी ने समुद्र कन्या के रूप में पुनर्जन्म लिया है । समुद्र उसका स्वयंवर कराते हैं । राक्षस

कथासार , राक्षस विद्याधर इन्द्र,अग्नि,यम निर्ऋति, वायु तथा कुबेर को नकार कर लक्ष्मी विष्णु के गले वरमाला डालती है । विष्णु सभी देवों को पारितोषिक देते हैं और नवदम्पती को सभी अमरता का आशीर्वाद देते हैं ।

लक्ष्मी स्वयंवरम् - लेo-डाo वेंकटराम राघवन् । सन् 1959 में लक्ष्मीव्रत के अवसर पर आकाशवाणी, मद्रास से प्रसारित । प्रेक्षणक {ओपेरा} समुद्रमंथन से लेकर लक्ष्मी के विष्णु से विवाह तक की कथावस्तु ।

लक्ष्मीहृदयम् - {लक्ष्मीहृदयस्तोत्रम्} - अथर्वरहस्य से गृहीत । श्लोक 106 ।

1- संस्कृत वाङ्मय कोश-पृoसं0 - 313 द्वितीय खण्ड {ग्रंथ}

मूर्तिकला में लक्ष्मी

मूर्तिकला का ऐतिहासिक रूप -

जब मनुष्य ने अपना प्रथम चरण इस धरती पर रखा उसी समय कला का आरम्भ हुआ था । कला के अनेक रूपों में मूर्ति कला मानव के सौन्दर्य बोध के अभिव्यक्तिकरण का एक सशक्त माध्यम होने के साथ ही साथ उसके सांस्कृतिक विचारों और भावनाओं के अर्थ को भी समझाने में सहायक रही ।

भारतीय मूर्तिकला परम्परा प्रधान अपने बाह्यरूप में सदैव एक समान रही है । भारतीय मूर्तिकला की यह एक प्रमुख विशेषता रही है । जो विश्व को अन्य कला-कृतियों में देखने को नहीं मिलती । किन्तु सूक्ष्मता पूर्वक अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह परम्परा मात्र देवी -देवताओं की मूर्तियों के निर्माण में ही रही है । मूर्तियों में विविध आन्तरिक भावों का प्रदर्शन केवल कलाकार की अपनी छेनी पर ही आधारित था न कि किसी विशेष ग्रन्थ पर । ग्रन्थों में देवी-देवताओं की विविध मुद्राओं, आयुधों चिह्नों और प्रतीकों का वर्णन हुआ है । जिनका प्रदर्शन कला के अन्तर्गत आवश्यक था, लेकिन प्रस्तुतीकरण में कलाकार स्वतन्त्र था । अतः परम्परा प्रधान होते हुए भी भारतीय मूर्तिकला अपने विभिन्न कालों में स्वतंत्र रही है और कलाकार कभी परतंत्र नहीं रहा है ।

मूर्तियों में ऐसा प्रतीत होता है कि इसके द्वारा किसी देवी का अंकन अभीष्ट था । प्रतिमा निर्माण का आरम्भ भारत की प्राचीनतम् सभ्यता सैन्धव सभ्यता से ही आरम्भ हो चुका था । मौर्य युग में कला की अभूतपूर्व उन्नति

वेदों में बहुत से देवी-देवताओं का वर्णन है, उनके मानवीय स्वरूप का वर्णन है, वैदिक साहित्य में भौतिक पदार्थों से बनी हुई वस्तुओं अथवा शिल्पों का उल्लेख मिलता है ।

वैदिक समाज में भी सौन्दर्य बोध आ गया था और उसकी अधिष्ठात्री देवी "श्री और लक्ष्मी के नाम से प्रसिद्ध थी ।

प्रतिमा का अर्थ है प्रतिरूप इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए प्रतिकृति प्रतिमा, बिम्ब आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं बिम्ब का अर्थ है छाया । यह शब्द पारलौकिक प्रतिमाओं के लिए प्रयुक्त होता है ।

प्रतिमा शब्द का प्रयोग केवल देवी अर्थ में नहीं होता है । महात्मा, यशस्वी तथा पूर्वजों की बनी हुई आकृतियाँ भी प्रतिमाएं कहलाती है । प्रतिमा के द्रव्य के विषय में श्रीमद्भागवत् में एक श्लोक प्राप्त है । जहाँ मिट्टी, काष्ठ पत्थर, धातु, चन्दन, बालुका मनोमयी तथा मणि की प्रतिमा का वर्णन प्राप्त होता है -

शैली वास्मयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्ट विधा स्मृता ।।[1]

शिला दारु लौह, स्वर्ण, चाँदी, ताम्र आदि धातुओं द्वारा भी प्रतिमाएँ बनने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[2] लक्ष्मी की प्रतिमा निर्माण सम्बन्धी प्रचुर सामग्री ब्राह्मण जैन बौद्ध धर्मों के धार्मिक साहित्य में प्राप्त होती है ।

1- श्रीमद्भागवत्-11.27.12

2- ऋ0 वे0 2.12.15

"श्री"[1] शब्द का प्राचीनतम् प्रयोग ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। अथर्व[2] में भी "श्री" का प्रयोग हुआ है। कहा गया है मनुष्य जन्म से सौ प्रकार की लक्ष्मी देवियों से घिरा होता है। उनमें से कुछ अच्छी {शिवा} है और कुछ बुरी {पापिष्ठा} 3।

श्री के समुद्र से उत्पन्न होने की कथा अन्य पुराणों में भी पायी जाती है।[4] इसका सुन्दरतम् वर्णन महाभारत के आदि और वनपर्व में हुआ है।[5]

ब्राह्मण साहित्य के समान ही श्री और लक्ष्मी की चर्चा बौद्ध साहित्य में भी उपलब्ध है।

1- ऋ0 1/ 179,1, 2·1·12;

2- अथर्व0 संहिता 12·1·63; 10·6·26

3- एक शतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य

शार्क तन्वा जनुषोधि जाताः।

ता सामं पापिष्ठा निहितः प्र हिषमः

शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ।।

यजुर्वेद - 7/115/3

4- मत्स्य पुराण, 250-3; कूर्म पुराण- 1·30 ।

5- महाभारत आफ कृष्टद्वैपायन; अनुवादक चन्द्र प्रताप राय, खंड । पृ0 227 ।

लक्ष्मी के स्वरूप का विस्तृत वर्णन सर्वप्रथम ऋग्वेद[1] के दशम मण्डल के परिशिष्ट में "श्रीसूक्त" में हुआ है । वहाँ इनका प्रयोग श्री के पर्याय के रूप में हुआ है । विष्णु पत्नी यहीं कहा गया है ।

सिन्धु सभ्यता काल में मातृदेवियों की उस श्रृंखला में लक्ष्मी का भी स्थान था ।

पद्मस्थिता लक्ष्मी की अपेक्षा भारतीय मूर्ति कला में गजलक्ष्मी का अंकन प्राप्त होता है, इनका अंकन शुंगकाल में कुषाणकाल तथा निरन्तर हुआ है । भरहुत में ही एक खम्भे पर लक्ष्मी की पद्महस्ता मूर्तिगढ़ी मिलती है । यह देवी की त्रिभंग मूर्ति है ।[2] ﴾चित्र ।﴿

कोशाम्बी से प्राप्त खिलौनों में एक स्त्री मूर्ति है । जो आक्सफोर्ड के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित है । उसकी शिरोभूषा के बीच में कमल का फुल्ला और दोनों ओर निकलते हुए पार्श्वभागों में माङ्गलिक चिह्न अंकित है जिनसे उसका दिव्यपद सूचित होता है । ﴾चित्र-2﴿

मथुरा कला में देवी श्री लक्ष्मी की अत्यन्त सुन्दर खड़ी हुई मूर्ति मिली है । देवी की दुग्धधारिणी मुद्रा बहुत ही आकर्षक है । वह अपने एक हाथ से दाहिने स्तन को दबाकर दूध की धारा बहा रही है । देवी कमलवन में पूर्ण घट पर खड़ी है। उसके पृष्ठभाग में सनाल कमल पत्र और कलिकाएं ऊपर उठ रही है । जिन पर हंसों के जोड़े बैठे है ﴾चित्र 3 ﴿ ﴾चित्र-6﴿ पर भी यह दृश्य है ।

1- हिरण्यवर्णांहरिणीं सुवर्ण रजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।-27 श्रीसूक्त

2- गोविन्द चन्द्र, प्राचीन भारत में लक्ष्मीप्रतिमा, पृ0 ।।7

अहिच्छत्रा में मथुरा के ढंग की इन मातृ मूर्तियों के जैसी दो तीन मूर्तियाँ सबसे नीचे के स्तरों मे प्राप्त हुई हैं (लगभग 200 ई0पू0) । मृण्मूर्तियों के सहस्र से अधिक नमूने जिससे सूचित होता है । कि इस देवी की पूजा वहाँ अत्याधिक लोकप्रिय थी । (चित्र ----) इनकी मिट्टी अधिक गूंथ कर इतनी पकाई गया है । कि वह पत्थर जैसी कड़ी हो गई है । मूर्तियों का रंग धूमिला ।

लक्ष्मी के विष्णु पत्नी रूप का कला में चित्रण गुप्त काल से प्रारम्भ हुआ गुप्तकालीन देवगढ़ के मन्दिर में एक प्रतिमा उपलब्ध है जिसमें विष्णु शेष-शैय्या पर शयन कर रहे हैं और लक्ष्मी उनका चरण दबा रही हैं (चित्र-)।

वैदिक काल में हमे विभिन्न प्रकार के प्रतीकों के भी वर्णन मिलते हैं । वैदिक साहित्य में श्री लक्ष्मी नामक देवी का उल्लेख किया गया है । जो सौन्दर्य और समृद्धि की देवी थी । पुरुष सूक्त में भी इसका उल्लेख एक गृहस्थ की देवी के रूप में किया गया है जिसे हाथियों द्वारा अभिषिक्त जल से उत्पन्न बतलाया गया है । परवर्ती काल में इन्हीं वर्णनों को ध्यान में रखकर श्रीलक्ष्मी की प्रतिमाएँ बनाई गयी ।

सिक्कों और मोहरों पर लक्ष्मी का अंकन मिलता है । साहित्य और कला में लक्ष्मी का जो स्वरूप उपलब्ध है उसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -

(1) गजलक्ष्मी (2) पदमलक्ष्मी

गुप्त कालीन सिक्कों पर लक्ष्मी का अंकन अनेक रूपों में हुआ है किन्तु उनमें गजलक्ष्मी का कोई भी अंकन नहीं है । किन्तु इस काल की मोहरों पर गजलक्ष्मी के अंकन की बहुलता देखने में आती है ।

नालन्दा से प्राप्त एक अन्य मोहर पर प्रभामय लक्ष्मी (गजलक्ष्मी) कमल पर खड़ा है।[1] वसाद से प्राप्त एक अन्य मोहर पर गजलक्ष्मी का अंकन है नीचे लेख "वैशाली नामकुण्डे कुमारामात्याधिकारणस्य" है।[2]

पदमलक्ष्मी में पदम को ही प्रधानता है। सर्वप्रथम श्रीसूक्त में ही उन्हें पदमा, पदमवर्णा, पदि्मनी, सरोजहस्ता, आदि कहा गया है[3]। अमरकोष में भी उन्हें पदमालया, पदमा, कमला आदि कहा गया है।[4] विष्णुपुराण में लक्ष्मी स्तुति में कमल को ही प्रधानता है।[5] रामायण में लक्ष्मी के साथ कमल की प्रधानता कही गया है।[6] इस प्रकार लक्ष्मी का घनिष्ठ सम्बन्ध कमल से है। सिक्कों पर लक्ष्मी के तीनों रूप है जैसे - पदमहस्ता, पदमस्थिता, और पदमवासिनी

1- ज0 न्यू0 सो0 इ0 खण्ड 12 पृ0 41

2- आ0 स0 इ0 ए0 रि0, 1913-14, पृ0 134

3- श्रीसूक्त, 1-27 ।

4- अमरकोष- 1-27 ।

5- नमस्ये सर्व लोकानां जननी मब्ध्यसम्भवताम् । श्रियमुन्निपदमाक्षीं विष्णुवक्षः स्थस्थिताम् ।। पदमालया पदमाकरां पदमपत्रनिभेक्षाम् । वन्दे पदममुखीं देवी पदमनामप्रियामहम् ।। वि0पु0-1-9-118 ।

6- रामायण- 5-7- 14 ।

7- इस्टर्न आर्ट, 1929, खण्ड 1 अर्ली इंडियन आइकोनोग्राफी, को लक्ष्मी कुमारस्वामी; पृ0 - 178 ।

इस प्रकार लक्ष्मी का अंकन हमें स्पष्ट रूप से शुंग काल से ही प्राप्त होता है ।

धार्मिक प्रतीक, आयुध और वाहन -

शंख की कल्पना जल से हुई सृजन का प्रतीक पंचतत्वों के मूल रूप में की गयी है । आख्यानों में शंख की गणना समुद्र, मंथन से निकली नौ निधियों में हुई है । प्रतिमा लक्षण ग्रंथों में उसे लक्ष्मी का एक आयुध कहा गया है । विष्णु धर्मोत्तर में शंख और कमल लक्ष्मी के आयुध बनाये गये हैं ।[1] इन सिक्कों पर कमल के साथ शंख का अंकन लक्ष्मी का ही प्रतीक कहा जा सकता है ।

पद्म को लक्ष्मी का प्रतीक कहा जाता है । लक्ष्मी समुद्र मंथन के समय स्वयं प्रकट हुई थी । कमल का सम्बन्ध जल से है । और जल का सम्बन्ध जीवन से है । लक्ष्मी को जीवन-दात्री कहा गया है । इसी प्रकार पद्म लक्ष्मी का प्रतीक है । इसी कारण कला में लक्ष्मी पद्मासना, पद्महस्ता और पद्मवासिनी रूप में पाई जाती है ।[2]

स्वस्तिक लोकधारणा के अनुसार लक्ष्मी का प्रतीक है । प्राचीन काल में भी स्वस्तिक लक्ष्मी का प्रतीक था । यह अनुमान प्रकट किया है कि "श्री" शब्द का विकास स्वस्तिक से ही हुआ होगा[3] ।

1- वि०ध० पु०, 382 ।- 16 ।

2- कुमारस्वामी, अर्ली इंडियन आइकोनोग्राफी-ईस्टर्न आर्ट-पृ० । 78 ।

3- राय, गोविन्द चन्द्र, प्राचीन भारत में लक्ष्मी की प्रतिमा पृ० 9 ।

पूर्णघट को लक्ष्मी का प्रतीक माना है । धार्मिक पूजा में पूर्णघट को ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा श्रीदेवी का प्रतीक मानकर सबसे पहले उसकी स्थापना की जाती है ।

हस्ति श्री और ऐश्वर्य का प्रतीक है इसका सम्बन्ध लक्ष्मी से जोड़ा गया है । हाथियों द्वारा जल से लक्ष्मी का अभिषेक भारतीय कला का एक प्रख्यात प्रतीक है । और इस रूप में यह प्रतीक व्यापक है ।

भारतीय लक्ष्मी का सर्वप्रथम, अंकन बौद्धकला में देखने में आता है गुप्तकालीन सिक्कों पर वाहन की कल्पना अत्यन्त स्पष्ट है । लक्ष्मी के पद्म-स्थिता होने की कल्पना अत्यन्त प्रखर है । प्रायः सभी देवियां बायें हाथ में कमल लिए अंकित है । चन्द्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर लक्ष्मी अपने हाथों से सिक्कों पर लक्ष्मी अपने हाथों से सिक्के बिखेरती हुई भी दिखलाई गयी है ।

निष्कर्ष, आरम्भ में देवी-देवताओं के आयुध और वाहनों की कोई कल्पना न थी और उसका विकास पहली दूसरी ई० शती के बाद ही हुआ ।

सिक्कों में देवी-देवताओं की लाक्षाणिक अभिव्यक्ति उनके मानवी स्वरूप से पूर्ण मुखर रूप में ज्ञात नहीं है । इसका वर्णन ऊपर है । अभिव्यक्ति के रूप में मोहन निर्माताओं ने देवी-देवताओं के आयुधों और वाहनों का प्रयोग किया है ।

त्रसं — 1

सं० — २५१

लक्ष्म्येकाक्षर बीज मंत्र पूजनम्
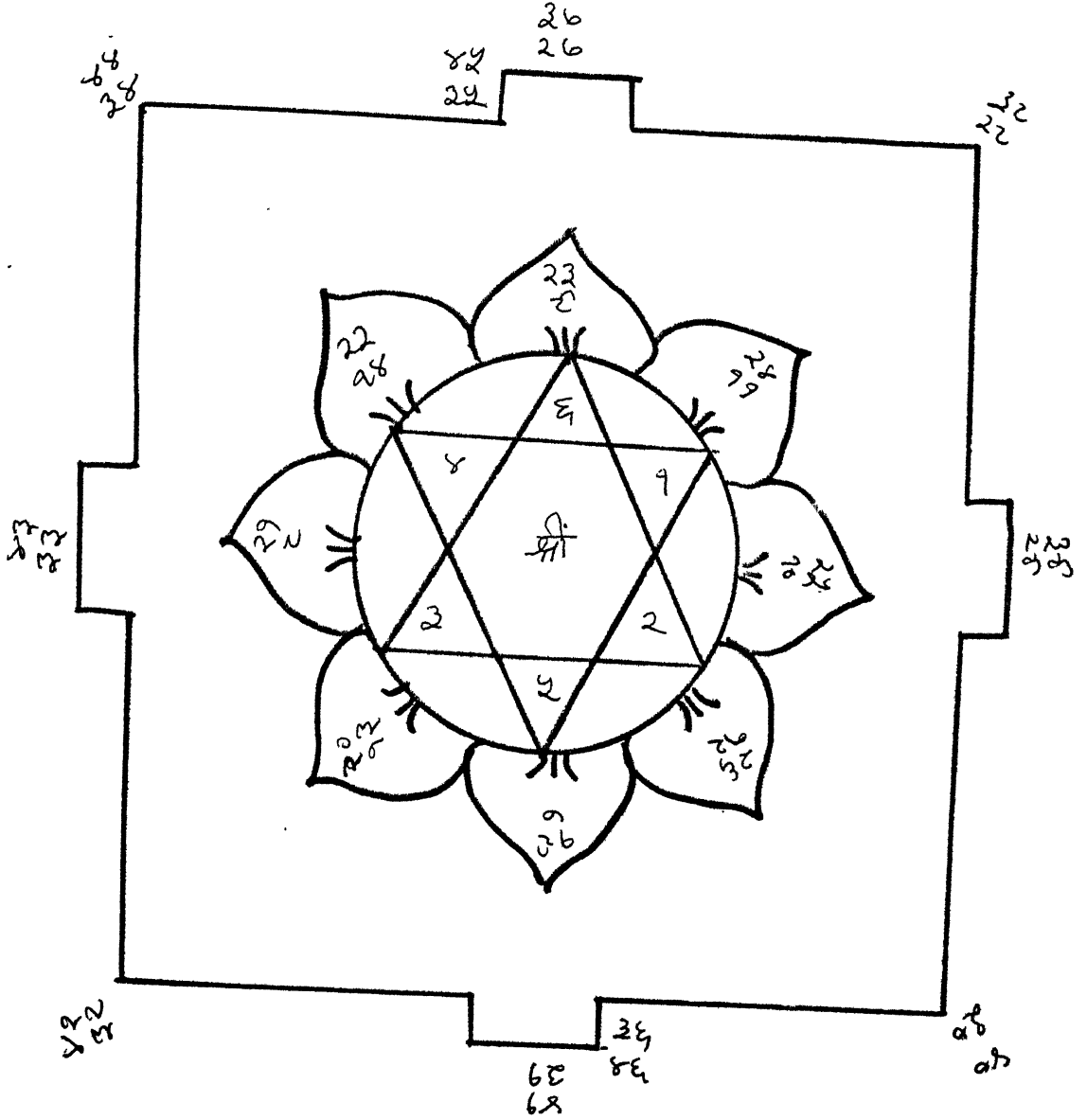
चित्र – २
पृ. सं. – २६०

लक्ष्मीदशाक्षर मन्त्र यन्त्रम्

चित्र- २
पृ० सं. — २८।
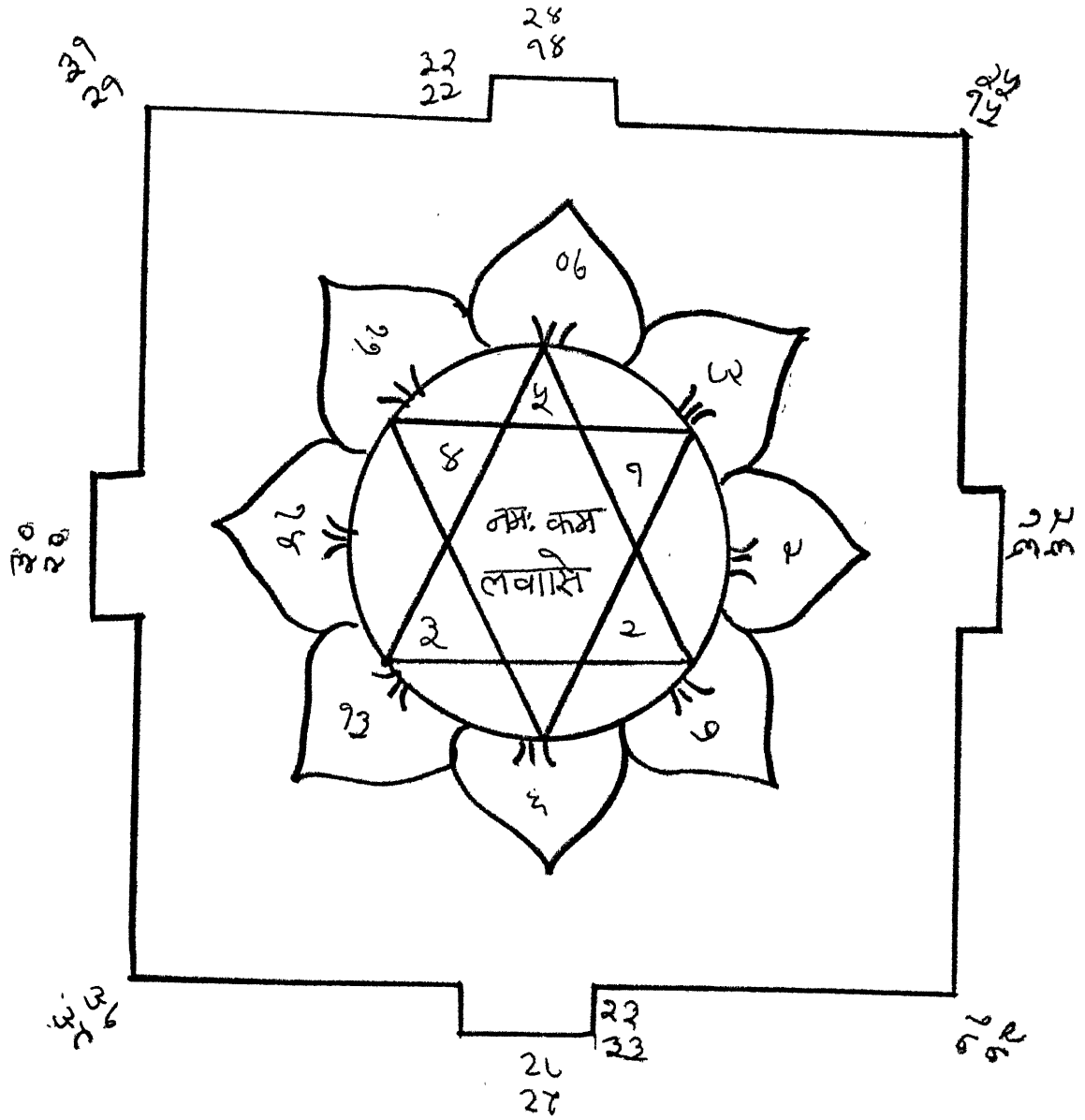
द्वादशाक्षर महालक्ष्मी मन्त्र यंत्रम्

चित्र -४

पृ०सं० — 263
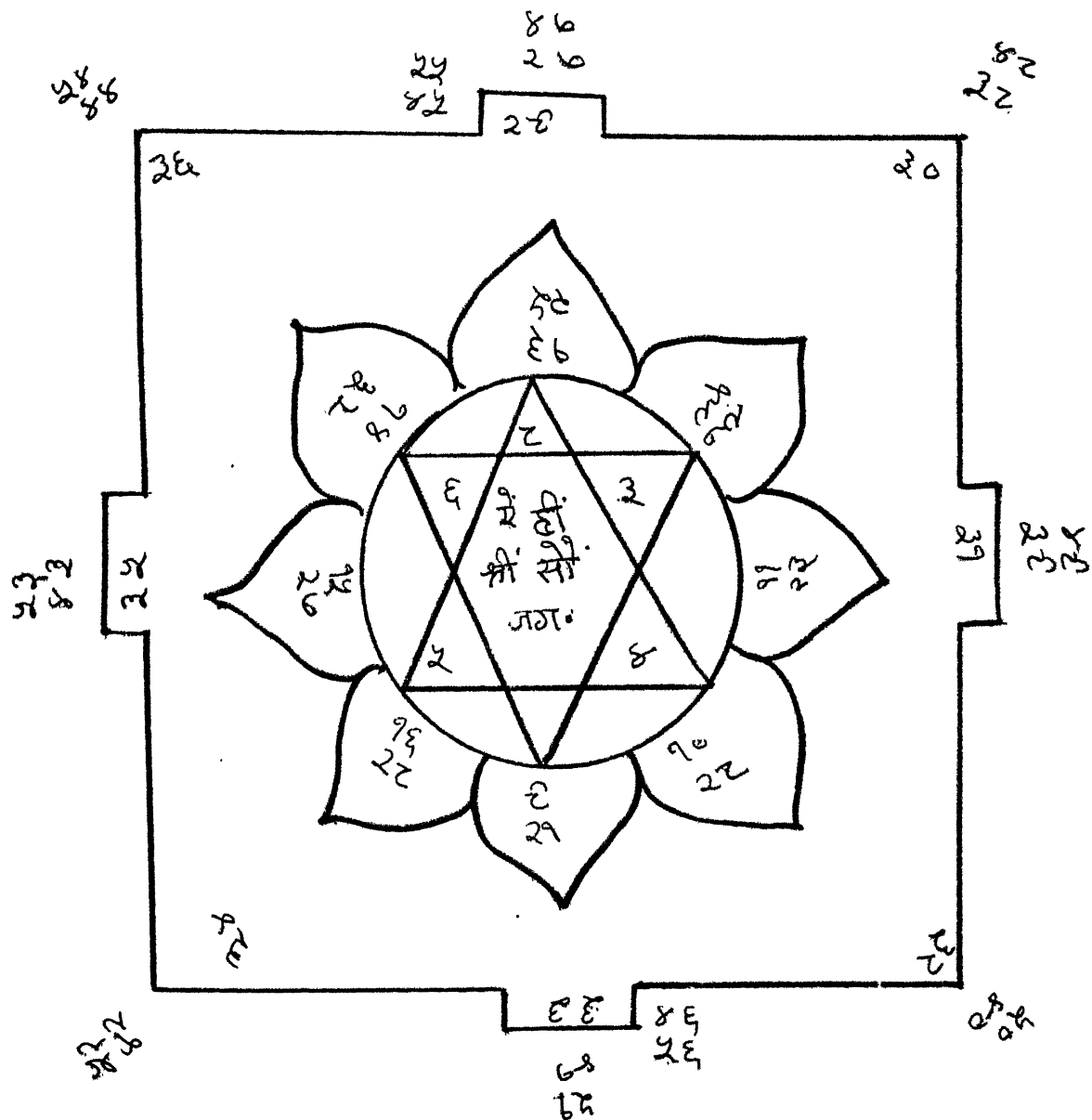
लक्ष्मीसप्तविंशत्यक्षर मन्त्रपूजनम्
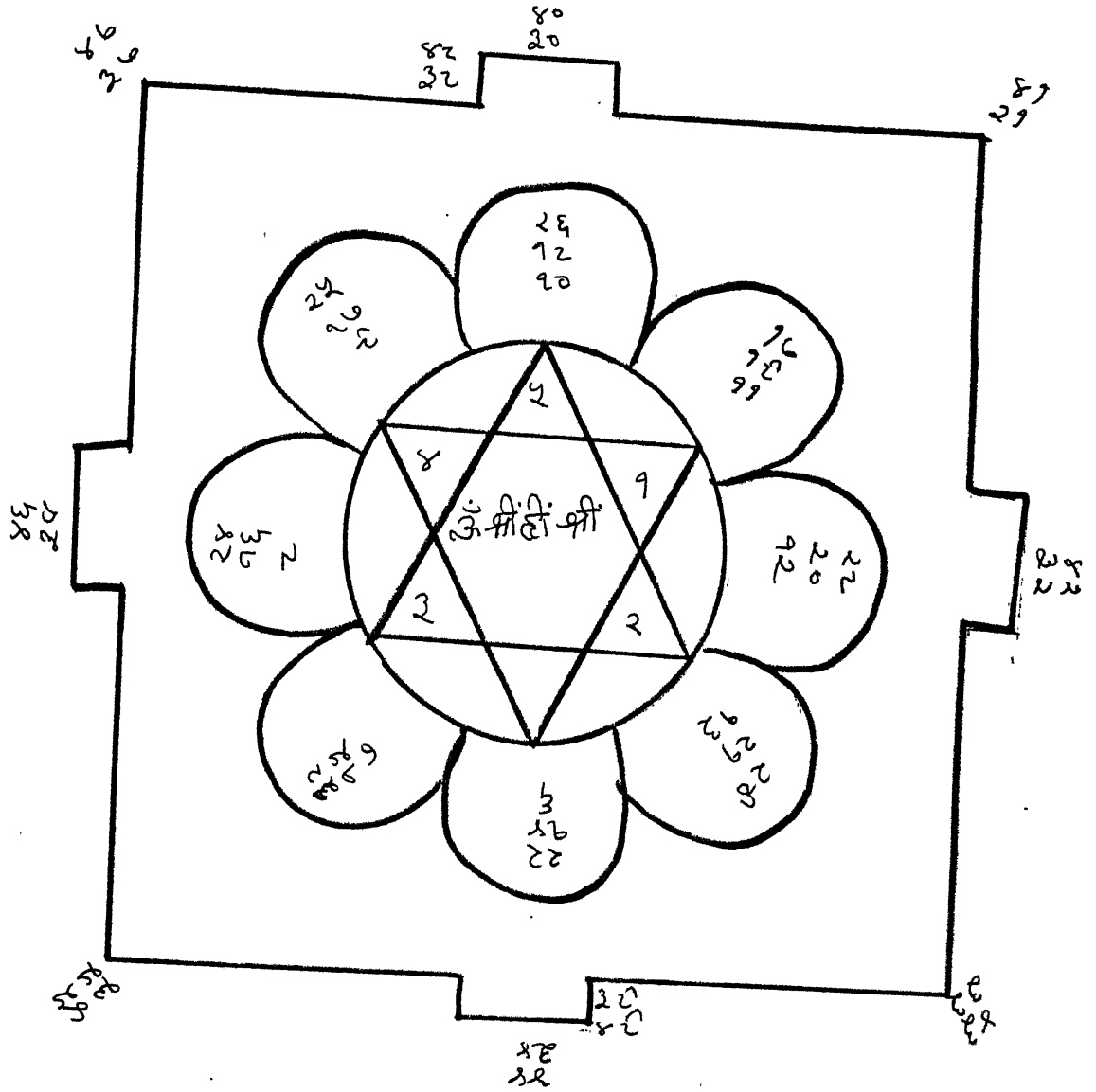
मथुरा से प्राप्त श्री लक्ष्मी ।

चित्र -3 चित्र 4

भरहुत के पाषाणखण्डों पर अंकित श्री लक्ष्मी

चित्र - 1

मातृदेवी, मथुरा ।

चित्र - 5
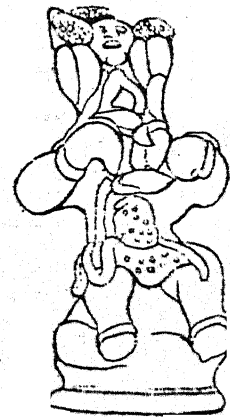
मातृदेवी मथुरा ।

चित्र - 6
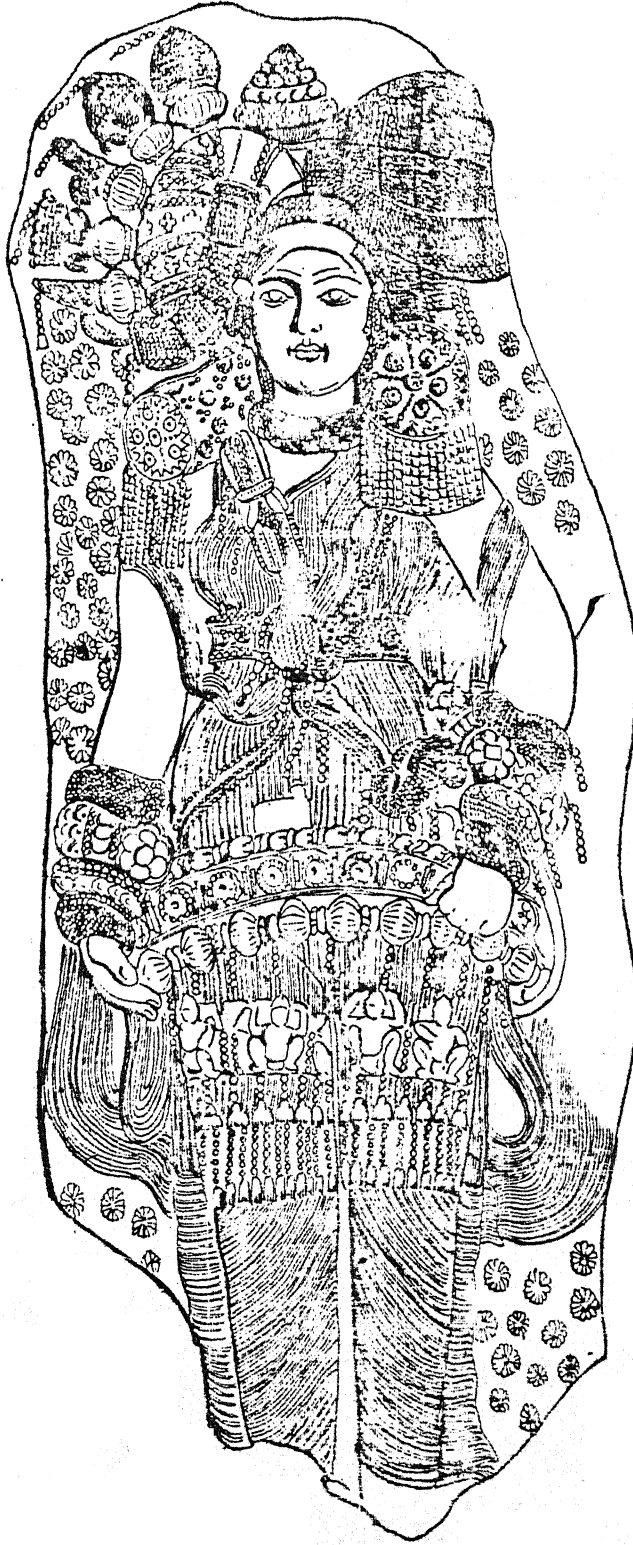
कोसम से प्राप्त सौन्दर्य की देवी श्रीलक्ष्मी

चित्र - 2

सहायक ग्रन्थ-सूची

1- अग्नि पुराण - मिश्र राजेन्द्र लाल, ऐशियाटिक सोसाइटो, बंगाल, प्रेस

2- अथर्व वेद - माधवीय वेदार्थ प्रकाश संहिता §प्र§ कृष्णदास अकादमो वाराणसो, सन् 1989 ।

3- अध्यात्मरामायण- व्यास, §मु0प्र0§ मोतोलाल जालान, गोताप्रेस, गोरखपुर पञ्चदश सं0 10,000

4- अहिर्बुध्न्य संहिता- देवशिखामणिना रामानुजार्येण, अडियार लाइब्रेरो, अडियार मद्रास §साउथ§ 1916

5- ऋग्वेद संहिता - सायण§प्र0§ भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, 1972

6- कम्ब रामायण - ऋषि कम्बन, अनु0सरस्वती रामनाथ, §प्र0§ कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर, प्र0सं0 1977

7- काव्य माला - द्वितीय गुच्छक -पं0दुर्गा प्रसाद, चोखम्भा भारतो अकादमी प्र0सं0 वि0सं0 2044

8- छान्दोग्य उपनिषद- 28 उपनिषदों में प्रमुख, स्वामो द्वारिकादास §प्र0§ वाराणसो, प्राच्य भारतो प्रकाशन, 1965 ई0

9- ~~छान्दोग्य ब्राह्मण~~ तन्त्र दर्शन - शास्त्री गोविन्द§प्र§ सर्वार्थ सिद्धि प्रकाशन प्रथम सं01980

10-तन्त्र सिद्धान्त और साधना- 2 संस्करण, शास्त्री पं0 देवदत्त§प्र0§ स्मृतिप्रकाशन, इला0 1982 ई0

11- तान्त्रिक वाङ्गमय- में शाक्त दृष्टि- महामहोपाध्याय कविराज डा0गोपोनाथ बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद पटना- 4

12- तैत्तिरीय ब्राह्मण- सायणाचार्य, आनन्दाश्रममुद्रणालये आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा
प्रकाशितम्, ख्रिस्ताब्दा-1934 द्वितीयेयमङ्•कजावृत्ति ।

13- तैतिरीय संहिता - भट्ट भास्कर- सायणाचार्य संशोधन-मण्डलेन प्रकाशिता,
शाके 1892 ।

14- दुर्गासप्तशती - जालान, घनश्यामदास, गीताप्रेस गोरखपुर

15- देवी भागवत पुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर, प्रेस बम्बई

16- धर्मशास्त्र का इतिहास- काणे डॉ0पाण्डुरङ्ग वामन(प्र0) हिन्दी समिति
उत्तर प्रदेश शासन लखनऊ ।

17- नित्याषोडशकार्णव- द्विवेदी व्रज वल्लभ-(प्र0)वाराणसी, वाराणसेय संस्कृत
विश्वविद्यालय-1968

18- निरुक्त - यास्क (प्र0)मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास 2736 कूंचाचेला,
दरियागंज, नयी दिल्ली-6

19- पदम पुराण - क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर, प्रेस, बम्बई,

20- पौराणिक कोश- शर्मा राणा प्रसाद, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी ।

21- प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग- विद्यालंकार डा0सत्यकेतु श्री
सरस्वती सदन ।

22- प्राचीन भारतीय प्रतिभा-विज्ञान एवं मूर्तिकला-
प्रवक्ता श्रीवास्तव ब्रजभूषण, प्रथम सं0 1981
शिक्षा प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी ।

23-प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था एवं मूर्ति शिल्प-
मिश्र विवेक मिश्र नीरजा मु0लखेडाप्रिंटिंगप्रेस भोजपुर
दिल्ली- 110053 ।

24- प्राचीन भारतीय सिक्कों और मोहरों पर ब्राह्मण देवी-देवता और उनके प्रतीक
अग्रवाल श्रीमती माधुरी {प्र0} रामानन्द विद्याभवन,
कालकाजी, दिल्ली, 1988 ।

25- प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश-
डॉ0बाहरी हरदेव
{प्र0} विद्या प्रकाशन मन्दिर, नई दिल्ली-2 1988

26- प्राचीन चरित्रकोष - महामहोपाध्याय विद्यानिधि शास्त्री सिद्धेश्वर चित्राव
{प्र0} विनायक सिद्धेश्वर शास्त्री, 1964 ई0स0

27- बाल संस्कृत कोश- द्वितीय खण्ड वर्णेकर डा0श्रीधर भास्कर

28- ब्रह्म पुराण - झा तारणीश, शास्त्रीप्रभात, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग, 1976 {प्र0} व्यास, । संस्करण शास्त्री जगदीश,
मोती लाल बनारसीदास, वाराणसी 1972

29- ब्रह्माण्ड पुराण - व्यास, । संस्करण, शास्त्री जगदीश, मोतीलाल बनारसीदास
वाराणसी, 1972, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

30- ब्रह्मवैवर्तपुराण - " " "

31- भारतीय कला- अग्रवाल वासुदेव शरण, पृथिवी प्रकाशन वाराणसी-221005

32- भारतीय वाङ्मय में राधा- उपाध्याय पं0बलदेव बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद,
पटना-4

33- भारतीय संस्कृति और साधना- कविराज डा0गोपीनाथ, बिहार-राष्ट्रभाषा -
परिषद-पटना-4

34- मार्कण्डेय पुराण - क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई ।

35- मत्स्य पुराण - {1} आनन्द आश्रम प्र0

{2} हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्र0

36- मनुस्मृति- प्रो0सुरेन्द्र कुमार, सं0शास्त्री श्री राजीव
{प्र0} आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

37- मन्त्रमहार्णव- क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

38- मन्त्रमहोदधि-{महीधर विरचित} सं0चतुर्वेदी शुकदेव, प्राच्य भारती प्रकाशन
वाराणसी-1981 ई0

39- महाभारत - वेद व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0सातवलेकर दामोदर,
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल भारत ।गीता
प्रेस

40- महाभारत में नारी- मवालंकर डा0 वनमाला,
अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर {म0प्र0}

41- मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य- अवस्थी एस.एस. वाराणसी, चौखम्बा
विद्याभवन, 1966 ई0

42- यजुर्वेद संहिता - सरस्वती स्वामी दयानन्द, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि
सभा, दयानन्दभवन, रामलीला मैदान, नयी दिल्ली,

43- ललिता सहस्रनाम - स0त्रिपाठी डा0 ब्रह्मानन्द{प्र0} चौखम्बा संस्कृत
प्रतिष्ठान -दिल्ली ।

44- लक्ष्मी तन्त्र- कृष्ण आचार्य
थिओसोफिकल सोसाइटी, मद्रास, 1975

45- लक्ष्मी तन्त्र धर्म और दर्शन- डा0कालिया अशोक कुमार ।
{प्र0}अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् प्र0संस्करण 1977

46- लिङ्गपुराण - क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

47- बृहदारण्यकोपनिषद् - रायबहादुर श्री चन्द्रवसु
{प्र0} पाणिनी ऑफिस बहु वंसबारी आश्रम
बहादुरगंज इला0 1916 ।

48- वाचस्पत्यम् - बृहत् संस्कृताभिधानम्, श्री तारानाथ, तर्कवाचस्पति-
भट्टाचार्येण {षष्ठो भागः} {प्र0} चौखम्बा संस्कृत सीरीज
ऑफिस, वाराणसी-।

49- वाजसनेयिसंहिता- सं0सातवलेकर पं0श्रीपाद दामोदर
{प्र0} स्वाध्याय-मण्डल, पारडी {जि0बालसाड ।

50- वामन पुराण - क्षेमराज श्री कृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

51- वाल्मीकि रामायण- वाल्मीकि, {मु0-प्र0} मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर-
1969 ई0

52- वायु पुराण - क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

53- विष्णुधर्मोत्तरपुराण- क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

54- वेदार्थ परिजात -खण्ड-2- अनन्त श्रीस्वामि करपात्रमहराज
{प्र0} श्रीराधा कृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान, कलकत्ता

55- वेदों का यथार्थ स्वरूप- विद्या मार्तण्ड पं0धर्मदेव {प्र0 जन ज्ञान प्रकाशन,
नई दिल्ली, श्री सं0 - 2030

56- वैदिक कोश - सङ्ग्रहीता {सं0} शास्त्री राजवीर
{प्र0} आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

57- वैदिक माइथोलोजी- मैक्डोनेल ए0ए0 अनु0 राय राम कुमार
{प्र0} चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी ।

58- वैदिक धर्म और दर्शन- कीथ, अनु0सूर्यकान्त {प्र0}

{प्र0} मोतीलाल बनारसी दास, पटना, दिल्ली ।

59- वैदिक विश्व सूक्त एक अध्ययन- पाण्डेय डा0ओम प्रकाश

{प्र0- ग्रन्थम् रामबाग कानपुर 209 12संस्करण-1979

60- वैदिक देवता का उद्‌भव और विकास- त्रिपाठी डा0 गया चरणत्रिपाठी, प्राचार्य

भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी भारत ।

प्रथम संस्करण- 1982

61- वैदिक देवता दर्शन- अवस्थी प्रो0 प्रभुदयाल {प्र0} ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली,

प्र0संस्करण- 1989

62- वैदिक देवशास्त्र- मैक्डानल ए0ए0, सूर्यकान्त, रायराम कुमार, मेहरचन्द्र

लक्ष्मनदास, नई दिल्ली, 1982 ।

63- शतपथ ब्राह्मण - {प्र0}शर्मा रामस्वरूप, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसन्धान

संस्थान 26, 139-140 वेस्ट पटेल नगर, नया दिल्ली8,

1969ई0

64- शारदा-तिलक - स0महामहोपाध्याय श्रीमुकुन्द सा0वक्शी

{प्र0}चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी तृतीय सं0स02043

65- शाक्तप्रमोद- सिंह बहादुर श्रीराजदेवनन्दन{मुद्रक, प्र0} खेमराज श्रीकृष्णदास

श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई-4 सन् 1973

66- स्कन्द पुराण - खेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई

67- संस्कृत-हिन्दी-कोष- आप्टेवामन शिवराम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,

पटना, वाराणसी, 1966

68- संस्कृत वाङ्•मय कोश- द्वितीय खण्ड,

वर्णेकर डा० श्रीधर भास्कर ।

69- हलायुध कोश - (स०) जयशङ्•कर जोशी

हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ।

70- श्रीभागवत चरित- खं०-2 प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, (प्र०) संकीर्तन भवन,

प्रतिष्ठानपुर, झूँसी प्रयाग, जनवरी 1965

अंग्रेजी के ग्रंथ -

1- गाडेस लक्ष्मी ऑरिजिन एंड डेवलपमेन्ट- धल डा०उपेन्द्र

ओरियन्टल पब्लिशर डिस्ट्रीब्यूटर, दिल्ली 1978 ।

2- ऐलीमेन्टस ऑफ हिन्दू इकोनोग्राफी- राव टी०ए०गोपीनाथन खण्ड-2 1971

पब्लिशर- श्री भगवान सिंह इन्डोलोजिकल बुक हाउस,

वाराणसी-इंडिया ।